स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 13 ISSUE-04 (APRIL 2021) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

अतिथि सम्पादक :
नरेन्द्र सोनी
शोधार्थी, पी–एच.डी. पत्रकारिता,
गुरु जम्भेश्वर वि.वि., हिसार

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सह आचार्य एवं शोध निर्देशक (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES
RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
कमरा नं. 175, लघु सचिवालय,
भिवानी–127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

उपकार्यालय :
सहदेव शास्त्री
शिवपुरी, नरवाना रोड़,
जीन्द (हरियाणा)
मो. 09416253826

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

—: मानद संरक्षक :—

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर

—: विषय विशेषज्ञ, परामर्शदात्री / शोधपत्र निरीक्षण समिति :—

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिं प्रचार सभा धारवाड़

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्व–
विद्यालय गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली, उ.प्र.

डॉ.रामप्रवेश रजक
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्रीशंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञजूषा परिवार अवैतनिक है।

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रित इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

☐ शोध पत्र 2000 शब्दों (4–5 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

☐ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

☐ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी, हरियाणा होगा।

☐ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट : सहयोग/सदस्यता राशि के ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ सम्पादकीय कार्यालय को भेजकर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	**नरेन्द्र सोनी**	7
2.	'सेवासदन' : तवायफ़-स्त्री के अन्तर्द्वन्द्व की मनोकथा	डॉ. अंगदकुमार सिंह	9
3.	भक्ति काव्यधारा और राष्ट्रवाद	बन्टी	13
4.	देवदासियों का पौराणिक तथा ऐतिहासिक स्वरूप का यथार्थ दर्शन	डॉ. सविता पुंडलिक चौधरी	16
5.	देवदासियों का जीवन	राजीव कुमार यादव	22
6.	इक्कीसवीं शती के उपन्यासों में रूपजीवावृत्ति की अंतहीन गुफा का दर्द	डॉ. किरण ग्रोवर	24
7.	'जनानी डयोढ़ी' उपन्यास में रूपजीवा चित्रण	प्रा.डॉ. गजानन चव्हाण	28
8.	साहित्यिक रचनाओं में रूपजीवाएँ ('आज बाजार बंद हैं' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	डॉ0 महक	31
9.	मुजरा परम्परा : एक अध्ययन	अनुपूर्णा श्रीवास्तव	34
10.	'गणिका' का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	डॉ. डी. उमादेवी	36
11.	जयशंकर प्रसाद का राष्ट्रीय चिन्तन एवं स्त्री दृष्टि	डॉ0 शोभारानी श्रीवास्तव / मीरा	39
12.	हिंदी कहानियों में चित्रित 'रूप-जीवा' समस्या एवं मानसिकता	प्रो. संजय एल.मादार	43
13.	जीवा : विविध रूप	मंजू रानी	46
14.	मृच्छकटिकम् प्रकरण में वर्णित रूपजीवा जीवन-शैली	डॉ॰ विशाल भारद्वाज	49
15.	रूप-जीवा : जीवन विमर्श (नगर वधु, गणिका, वेश्याओं के संदर्भ में)	संजय परिहार	54
16.	न्याय-वैशेषिक दर्शन में शिवादित्य मिश्र कृत सप्तपदार्थी का महत्त्व	डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर	56
17.	रूपाजीवा ऐतिहासिक परिचय	सर्वजीत सिंह यादव	61
18.	शिक्षा की मनोवैज्ञानिकता एवं साहित्य	निधि	64
19.	ऐतिहासिक - साहित्यिक सन्दर्भ में रूपजीवाएँ	उर्मिला शर्मा	68
20.	किन्नर जीवन : एक दर्द भरी दास्तान	पूजा सचिन धारगलकर	71
21.	कॉलगर्ल्स समस्या और मानसिकता	डॉ. कुमार पुष्कर सिंह	77
22.	दक्षिणी राजस्थान की जनजातीय लोक संस्कृति : एक अध्ययन	शांति लाल खराडी	81
23.	हिन्दी उपन्यासों में वेश्या जीवन : समस्या और समाधान	डॉ. प्रभा शर्मा	87
24.	'ये कोठेवालियाँ' में चित्रित समाज	डॉ. यशोदा मेहरा	93
25.	Household Air Pollution in a Cohort of Pregnant Women from Kanpur city U.P.	Bhuwan Diwakai Dixit Kuwar	97
26.	The Courtesans of Lucknow	Tabassum khan	105

सम्पादकीय–

महिलाओं की देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका हैं। आज पूरा देश महिलाओं के अधिकार, सशक्तिकरण, समानता, ट्रिपल तलाक, बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ विषयों पर बात कर रहा है। वर्तमान में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ महिला कार्यरत नहीं है। आकाश से लेकर धरती तक प्रगति के पथ पर नारी उड़ान भर रही है। भारतीय संविधान ने समानता के अधिकार के अंतर्गत महिला व पुरुष को समान माना है।

ब्रिघम यंग द्वारा एक प्रसिद्ध कहावत है, "अगर आप एक आदमी को शिक्षित कर रहे हैं तो आप सिर्फ एक आदमी को शिक्षित कर रहे हैं पर अगर आप एक महिला को शिक्षित कर रहे है तो आप आने वाली पूरी पीढ़ी को शिक्षित कर रहे है।"

भारतीय संस्कृति में नारी को सम्मानजनक स्थान देने की परंपरा प्राचीन काल से चली आई है। मनुस्मृति में कहा गया है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमयंते तत्र देवता'। गार्गी, सावित्री, सीता जैसी अनेक विदुषी नारियों के व्यक्तित्व, त्याग और साहस की कथाएं आज भी हमारे समाज में प्रचलित है। भारतीय समाज के विभिन्न कालखंडो पर यदि नजर डालें तो आते हैं कि वैदिक काल में महिलाओं को कुटुम्ब समाज में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। तत्कालीन समाज में यह धारणा विद्यमान थी कि नारी के बगैर पुरूष को धर्म, कर्म, अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

महिलाएं दुनिया की आधी आबादी है जिसका मतलब है दुनिया की आधी ताकत। कुल आबादी का 50 प्रतिशत हिस्सा होने के कारण महिलाएं समाज में अहम स्थान रखती है। अगर किसी भी देश की महिलाओं को सशक्त नहीं किया जाता है तो इसका मतलब है कि देश में आधी शक्ति का अभाव है। स्वभाव से, महिलाएं अपनी सभी भूमिकाएं बड़ी जिम्मेदारियों के साथ निभाती है और एक स्वस्थ, ठोस तथा शक्तिशाली देश बनाने की क्षमता रखती है।

मीडिया और संचार माध्यमों की भी महिला विकास में बड़ी भूमिका है जिसे महिलाओं के सशक्तिकरण के संबंध में कारगर माना जाता है। समाचार पत्रों और टीवी के माध्यम से प्रसारित खबरों और योजनाओं की जानकारी का भी व्यापक प्रभाव महिला वर्ग पर पड़ा है।

प्राचीन काल से ही भारत देश की राष्ट्रीय चेतना का इतिहास नारी के अस्तित्व पर आधारित है। प्राचीन भारतीय संस्कृति ज्ञान व दर्शन से परिपूर्ण रही है। विश्व की सभी संस्कृतियों में रूप जीवाओं का इतिहास विद्यमान है।

गीना देवी शोध संस्थान भिवानी हरियाणा एवं इंडो यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स यूक्रेन द्वारा रूप–जीवा रू जीवन–विमर्श विषय पर 29 जुलाई 2020 को अंतर्राष्ट्रीय वेबीनार आयोजित किया गया। आज आईएसएसएन नम्बर के साथ पीडीएफ रूप में यह शोध पत्रिका प्रकाशित की जा रही है। पाठकों की निष्पक्ष प्रतिक्रिया का स्वागत रहेगा।

डॉ. नरेश सिहाग, प्रो. नरेन्द्र सोनी

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 9-12

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'सेवासदन' : तवायफ़-स्त्री के अन्तर्द्वन्द्व की मनोकथा

डॉ. अंगदकुमार सिंह
असिस्टेण्ट प्रोफेसरः हिन्दी
जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, बाँसगाँव
गोरखपुर (उ.प्र.), भारत – 273403
email : anagadkumarsingh01@gmail.com, Mob. : 7460856206

प्रेमचन्द को 'कथासम्राट' बनाने वाली उनकी तीन औपन्यासिक कृतियाँ हैं– 'गोदान', 'कर्मभूमि' और 'सेवासदन'। इनमें उनके 'कथासम्राट' जैसे ख़िताब को सुरक्षा–कवच प्रदान करने वाली अमोघ कथाकृति है– 'सेवासदन'। 'तवायफ़ स्त्री–विमर्श' की न तो यह प्रथम कथा है और न ही अन्तिम कथा। स्त्री की यह विमर्श कथा न तो कोई निष्कर्ष कथा है अथवा न ही समाहार कथा यानि उपसंहार कथा। इसे रूपजीवा स्त्री पर केन्द्रित एक बहस–कथा या स्त्री–सौन्दर्य पर केन्द्रित विमर्श–कथा कहना कथालेखक प्रेमचन्द के लेखकीय प्रतिपाद्य के निकट पहुँचना माना जा सकता है।

'सेवासदन' प्रेमचन्द–प्रणित एक अनोखा उपन्यास है जिसमें तवायफ़ बन गयी स्त्रियों का चित्रण करीने से किया गया है। इसमें प्रेमचन्द ने 'सुमन' से 'सुमन बाई' बन जाने वाली स्त्री की कथा लिखी है। आदर्श स्त्री की जो अवधारणा प्रेमचन्द को अपने समाज से मिली थी वह त्यागमयी, एकनिष्ठ, पतिपरायणा–स्त्री की थी। स्त्री–सम्बन्धी मुद्दों पर वे न तो संकीर्ण हैं न प्रतिगामी। ऐतिहासिक सन्दर्भ में प्रेमचन्द के स्त्री–पात्र परम्परागत स्त्री की भूमिका से कहीं आगे नेतृत्त्वकारी भूमिका अदा करते हैं चाहे वह 'सेवासदन' की सुमन हो या 'गोदान' की मालती। भारतीय आदर्श स्त्री की छवि मातृत्व से संपृक्त है। स्त्री का अमर्यादित आचरण उसकी आदर्श छवि को समाप्त कर सकता है। प्रेमचन्द का कहना है कि–" ''स्त्री में स्त्रीत्व ही नहीं, बल्कि मातृत्व भी होना चाहिए। जब तक वह भाव न हो, तब तक किसी से प्यार, पालन कुछ भी सम्भव नहीं।''[1]

प्रेमचन्द यहाँ के मध्यवर्ग या शहरी बुर्जुआ संस्कृति पर दृष्टिपात पश्चिमी संस्कृति के हिसाब से नहीं करते बल्कि हाशिये पर पड़े किसान, मज़दूर और औरतों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे गाँधी से एक क़दम आगे जाकर क्रांतिकारी भूमिका निभाते दीखते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों से हमें यह पता चलता है कि कैसे संस्कृति का सांस्थानिकीकरण किया जा रहा है और साहित्य भी उसी संस्कृति का हिस्सा बनता जा रहा है, जिसमें बाज़ार में स्त्री की कौन सी छवि बिकनी है– यह तय होता है। वर्तमान समय ऐसा आ गया है कि संस्कृति भी बाज़ार में बिकने की वस्तु हो गयी है। प्रेमचन्द समाज की गतिविधियों को शब्द और संवाद ही नहीं देते, बल्कि उसमें हस्तक्षेप भी करते हैं। शान्ता जो अपनी सगी बहन को अपने घर में सम्मान नहीं दे सकी उसके पातिव्रत के बारे में प्रेमचन्द की सुमन सोचती है और विचार करती है कि "इसमें सुख, सन्तोष और शान्ति सबकुछ है" इसलिए सदन के गायब हो जाने पर भी शान्ता अपना पतिव्रत्य नहीं छोड़ती और अन्ततः उसे इसका पुरस्कार भी मिलता है–एक सुखी परिवार के रूप में। पर, प्रेमचन्द की सुमन परम्परागत रूढ़ियों से हटकर चलने का प्रयास करती है और वह अपने बल पर जीना चाहती है, पतिव्रत्य की महिमा को समझने का प्रयास नहीं करती, इसलिए मुँह की खाती है। प्रेमचन्द चारदीवारी के भीतर तो स्त्री स्वावलम्बन के पक्षधर हैं लेकिन स्त्री के घर के बाहर नौकरी के नहीं।

प्रेमचन्द के स्त्री–सम्बन्धी विचार 'सेवासदन' में बिलकुल नगरीय है। सुमन की इच्छाओं को पति पूरा नहीं कर पाता है। उसने खाता–पीता बचपन और कैशोर्य देखा है। दारोगा कृष्णचन्द्र की गिरफ्तारी से पूरे परिवार की आर्थिक संरचना तहस–नहस हो जाती है। कृष्णचन्द्र पत्नी की बात नहीं मानते। रिश्वत लेकर दारोगाजी फँस जाते हैं और सुमन

का अनमेल विवाह होता है वो भी गरीब घर में। अब ये हिन्दू गृहिणी की मर्यादा का तकाजा है कि वह कम खर्च में बिना कुछ कहे गृहस्थी चलाये, पर्दे और घूँघट में ढकी रहे, अपनी सभी इच्छाओं को मारकर, पर सुमन ऐसा नहीं कर सकी। उसे भोली बाई के स्वातन्त्र्य ने आकर्षित कर लिया। लेकिन बीसवीं शती के दूसरे दशक तक तवायफ़ों के हालात में महत्त्वपूर्ण बदलाव आये जिसके परिणामस्वरूप अब तवायफ़ों को नये सिरे से अपने लिए संरक्षक और दरबार ढूँढ़ने पड़े। वहीं बदले वक्त में 'सेवासदन' की तपी हुई तवायफ़ भोली बाई सुमन से कहती है कि, "यहाँ गाने को कौन पूछता है, ध्रुपद और चिल्लाने की ज़रूरत ही नहीं। बस चलती हुई गज़लों की धूम है, दो–चार ठुमरियाँ और कुछ थियेटर के गाने आ जायँ और बस फिर तुम्हीं तुम हो। यहाँ तो अच्छी सूरत और मजेदार बातें चाहिए, सो खुदा ने यह दोनों ही बातें तुममें कूट–कूट कर भर दी हैं। मैं क़सम खाकर कहती हूँ सुमन, तुम एक बार इस लोहे की जंज़ीर तोड़ दो फिर लोग कैसे दीवानों की तरह दौड़ते हैं।"

ये जंज़ीर कौन–सी थी जिसे तोड़ने का जिक्र भोली बाई कर रही है। इस जंज़ीर की गिरफ़्त को उसने निजी तौर पर महसूस किया है–''ज़िन्दगी जैसी नेमत रो–रोकर दिन काटने के लिए नहीं दी गयी है। जब ज़िन्दगी का कुछ मज़ा ही न मिला तो उससे फ़ायदा ही क्या? पहले तो मुझे भी डर लगता था कि बड़ी बदनामी मिलेगी, लोग मुझे ज़लील समझेंगे, लेकिन घर से निकलने की देर थी। फिर तो मेरा वह रंग जमा कि अच्छे–अच्छे खुशामदें करने लगे। आज यहाँ कौन रईस, कौन महाजन, कौन मौलवी, कौन पण्डित ऐसा है जो मेरे तलुए सहलाने में अपनी इज्जत न समझे।''[2] विवाह का बन्धन यदि समानता और पारस्परिक सम्मान पर टिका हो तो आम स्त्री उसमें सुख तलाश लेती है। लेकिन विवाह जब अपमान की जड़ बन जाये, शिक्षा जब साक्षरता से आगे न बढ़ पाये, स्त्री जब स्वयं को दोयम दर्ज़े की वस्तु समझने लगे तब वह 'देह श्रम' की ओर जाती है, जहाँ उसे झूठा ही सही, सम्मान तो मिलता है। पति के घर से निकलकर आत्मसम्मान की खोज में सुमन वहाँ पहुँचती है, जहाँ उसके रूप, सौन्दर्य और यौवन की कद्र तो है पर सभ्य कहे जाने वाले समाज में अब उसका चौतरफा अपमान होना तय है। इसलिए वह कोठे पर आनेवालों के साथ गम्भीर नहीं, बल्कि खिलन्दड़ा व्यवहार करती है। जो लोग उसकी निर्धन अवस्था के कारण दुरदुरा देते थे, वे अब चरण–चापन करते हैं। पद्मसिंह जिन्होंने लोकापवाद के भय से उसे आश्रय नहीं दिया, वे हिन्दू धर्म के रहनुमा हैं। वे ब्राह्मणी को पतन की गर्त में गिरते देख उसके उद्धार के लिए तत्पर हो जाते हैं। प्रेमचन्द की सुमन का उठाया एक अनुचित क़दम उसे जीवन भर के लिए दागी बना देता है। वह बदले हुए समय की औपनिवेशिक दृष्टि का वहन करती है जहाँ औपनिवेशिक दृष्टि से अपने समाज को देखने की चेतना विकसित हो रही थी, इसलिए मध्य और उच्चवर्गीय समाज तवायफ़ों को समाज के लिए अनैतिक और उनकी हरकतों को अश्लील मानता था, जो समय का तक़ाज़ा था।

यौनिकता के प्रश्न पर भी हिन्दू समाज–सुधारकों का विचार अलग था। यौन इच्छाओं का दमन करने, समलैंगिकता और तवायफ़ों के पास जाने से मना करके युवकों को चारित्रिक रूप से स्वस्थ और राष्ट्र निर्माण में भूमिका निभाने के साथ–साथ स्त्रियों को यह उपदेश दिया जाना जरूरी था कि समय रहते उनका विवाह हो, वे सतीत्व का पालन करें, ऐसे साहित्य से अपने को दूर रखें जिनसे मन में कामुकता आती है। इसके साथ ही स्त्री–यौनिकता शुरू से ही समाज–सुधारकों को चुनौती दे रही थी। सुमन पितृसत्ता के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर निकलने का प्रयास करती है। कहने को वह भोली बाई से प्रभावित है लेकिन अनमेल विवाह के खाँचे में वह खुद को अर्जेस्ट नहीं कर पाती है। लाड़–दुलार में पली सुमन बहुत कम वेतन वाले गजाधर के पल्ले बाँध दी जाती है, जो पर्दे का उतना ही हिमायती है जितना अन्य कोई ब्राह्मण, या सवर्ण। यह पर्दा हिन्दुओं और मुसलमानों के सांस्कृतिक व्यवहार से जुड़ा हुआ था। पर्दा स्त्रियों की यौनिकता पर नियन्त्रण बनाये रखने का एक औज़ार था। पर्दा हटा कि औरत बिगड़ी। औरत के बिगड़ जाने का ख़तरा ही था जिससे जातीय वर्चस्व भी कमज़ोर पड़ सकता था। इसीलिए आंशिक पर्दे की वकालत के साथ–साथ कोठे पर पेशा अपना चुकी स्त्री के शुद्धिकरण की चिन्ता से पूरा शहर चिन्तित हो उठता है। सुमन को पति के घर से प्रताड़ना मिलने पर वह सीधे भोली बाई की शरण में चली गयी हो, ऐसा नहीं है। वह पहले वकील पद्मसिंह के घर आश्रय की अपेक्षा से जाती है, लेकिन लोकापवाद के भय से पद्मसिंह उसे घर से जाने को कहलवा देते हैं, अब सुमन रास्ते पर है, मायके का आसरा नहीं, रोजी– रोटी लायक शिक्षा नहीं, पर्दे में रहती चली आयी है तो कोई सामाजिक सम्पर्क नहीं इसलिए अन्त में हार मानकर वह भोली के घर जाती है वहाँ उसे सिर्फ़ आश्रय ही नहीं मिलता, बल्कि अपनी यौनिकता, अपने स्त्रीत्व की महत्ता का पता चलता है।

वह भोली को बताती है कि उसने ईसाई लेडी से शिक्षा भी पायी है, इस पर भोली कहती है कि– ''हम कोई भेड़–बकरी तो हैं नहीं कि माँ–बाप जिसके गले मढ़ दें बस उसी की हो रहें। अगर अल्लाह को मंजूर होता कि तुम मुसीबतें झेलो तो तुम्हें परियों की सूरत क्यों देता? यह बेहूदा रिवाज़ यहीं के लोगों में है कि औरतों को इतना जलील

समझते हैं, नहीं तो और मुल्कों में औरत आज़ाद हैं, अपनी पसन्द से शादी और जब उससे रास नहीं आती तो तिलाक दे देती हैं। लेकिन हम लोग वही पुरानी लकीर पीटे चली जा रही हैं।''[3] अपने स्त्रीत्व को लेकर यह सचेतनता प्रेमचन्द का वैशिष्ट्य है, अपने गुणों की पहचान, यानि अपने जीवन का उत्तरदायित्व स्वयं उठाने को तैयार यह 'नयी स्त्री छवि' है, जो आश्रय के अभाव में मरना नहीं चाहती, जीना चाहती है, यह पितृसत्ता के बनाये नियमों से तंग आयी स्त्री है। इतनी शिक्षित नहीं कि नौकरी कर सके इसलिए अपनी देह को रोज़ी–रोटी कमाने का जरिया बना लेना चाहती है, सुमन सिलाई करके जीवन–यापन करने को तैयार है, भोली बाई पकी हुई तवायफ़ है वह सुन्दर स्त्री–देह की कीमत बाज़ार में जानती है और सुमन को समझाती है। इसके बाद सुमन उस राह पर चल निकलती है जो उसी के शब्दों में 'कलंक की कालिख' का रास्ता है, जिस पर जाना आसान है, लौटना मुश्किल। सुमन विट्ठलदास से कहती है– ''आप सोचते होंगे कि मैं भोग–विलास की लालसा से इस कुमार्ग पर आयी हूँ, पर ऐसा नहीं है। मैं ऐसी अन्धी नहीं कि भले बुरे की पहचान न कर सकूँ। मैं जानती हूँ कि मैंने अत्यन्त निकृष्ट कर्म किया है। लेकिन मैं विवश थी, इसके सिवाय मेरे लिए और कोई रास्ता न था... यद्यपि इस काजल की कोठरी में जा कर पवित्र रहना अत्यन्त कठिन है पर मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूँगी। और ईश्वर चाहेंगे तो मैं अपना प्रण पूरा करुँगी। मैं गाऊँगी, नाचूँगी, पर अपने को भ्रष्ट न होने दूँगी।''[4]

स्त्री यौनिकता पर नियन्त्रण के लिए परम्परा और संस्कृति के साथ–साथ स्वयं स्त्री द्वारा अपनी इच्छाओं को कलंक बताना हिन्दू सुधारवादी रवैये का परिणाम है, जो अपनी देह के प्रति सचेतन स्त्री को चुनौती मानता था। प्रेमचन्द स्त्री को लेकर बड़े कशमकश से गुज़रते हैं कुछ नहीं समझ आता तो वर्षों के खोये पति और अब, संन्यास ले चुके गजाधर से मिला देते हैं। अब सुमन को उस अनाथ आश्रम में पचास कन्याओं की देखभाल करनी होगी जो वेश्याओं की सन्ताने हैं–''इस अनाथालय के लिए एक पवित्र आत्मा की आवश्यकता है और तुम्हीं वह आत्मा हो। मैंने बहुत ढूँढ़ा पर ऐसी कोई महिला न मिली जो इस काम को सेवा, प्रेम भाव से करे, जो कन्याओं का माता की भाँति पालन करे और अपने प्रेम से अकेली उनकी माताओं का स्थान पूरा कर दे।''[5] ये स्त्री की आदर्श छवि थी जिसकी सिद्धि के लिए पूरा कथा–वितान रचा गया, अपने समय के कई राष्ट्रवादियों की तरह वे पश्चिम–विरोधी, पढ़ी–लिखी स्त्री को सामने लाये। सुमन या रोहिणी जैसे चरित्र राष्ट्रवादी रुझान के लिए पूरी तरह फिट बैठती हैं जो अपनी करुणा, दयालुता, सहजता, निर्धनता, की वजह से लम्बे समय तक कष्ट झेलती हैं, चाहे वे पत्नियाँ हों, विधवाएँ हों, तवायफ़े हों, वे किसी भी जाति की हों उन्हें पाठक की दया का पात्र बना दिया जाता है, जिनमें सुधार की आवश्यकता अनिवार्यतः होती है। स्त्रीत्व का आदर्श पाने के लिए चरित्रों की अपनी पहचान कहीं गुम हो जाती है। वे अक्सर सेवा, त्याग, समर्पण की प्रतिमूर्ति बन जाती हैं। सुमन भी ऐसा ही एक चरित्र है, जो सुमन भोली बाई के कोठे पर स्वयं गयी थी वही विट्ठलदास के यह कहने से ''सोचो तो थोड़े दिनों तक इन्द्रियों को सुख देने के लिए तुम अपनी आत्मा और समाज पर कितना अन्याय कर रही हो' तिलमिला जाती है। 'सुमन ने आज तक किसी से ऐसी बातें न सुनी थीं। वह इन्द्रियों के सुख को और अपने आदर को जीवन का मुख्य उद्देश्य समझती आयी थी। उसे आज मालूम हुआ कि सुख सन्तोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा से।''[6]

जहाँ तक समस्याओं के समाधान की बात है तो वह है शहर, बस्ती से दूर ऐसा सदन बनाना जहाँ, अवैध कही जाने वाली बच्चियाँ रह सकें, उन्हें पढ़ाई–लिखाई, हस्तकलाओं का ज्ञान दिया जा सके। प्रेमचन्द जब समाज सुधार पर बात करते हैं तो उनका ध्यान निरन्तर इस पर रहता है कि पाठकों के संस्कारों को कहीं चोट न पहुँचे। कोठे पर रहने के बावजूद सुमन अपना सतीत्व और स्वयंपाकी होकर जातीय शुद्धता बनाये रखती है। प्रेमचन्द उसे नाचते–गाते, हँसते, सजते–सँवरते दिखाते हैं पर शरीर बेचते हुए नहीं दिखाते। सुमन के मन में सतीत्व और यौनिकता को लेकर कोई द्वन्द्व नहीं, उसे बहुत शुरू से ही मालूम है कि उसे रिझाना है, लुभाना है पर शरीर नहीं देना है। सतीत्व, पातिव्रत्य और शरीर की पवित्रता बनाए रखने की धारणा हिन्दू राष्ट्र से सम्बद्ध है, जिसे सुमन बखूबी निभा ले जाती है, यह बात दूसरी है कि सजग पाठक कितनी दूर तक इससे सहमत होता है। वहीं सुमन के मन में सदैव पाप–पुण्य का द्वन्द्व चलता रहता है, इसके बीच का मार्ग वह निकालती है कि वह शरीर नहीं बेचेगी, सिर्फ़ नाच–गान करेगी। वह अपने जातीय संस्कारों के गर्व को नहीं भूलती। प्रेमचन्द पाठक के संस्कारों को धक्का नहीं पहुँचाना चाहते और कठिन समय में भी वह देह की शुचिता के हिमायती हैं। सुमन यदि अपना सतीत्व खो देती तो भारतीय समाज में उसकी कोई जगह नहीं रहती, सुमन को कोठे पर चढ़ने के कारण उसे जीवन भर प्रायश्चित करना पड़ता है, लेकिन वास्तविक क्षमा से वह वंचित ही रह जाती है। वहीं कोठे पर आने वाले सदन को उसके परिवार जनों द्वारा फिर से अपना लिया जाता है, वह सुखी वैवाहिक जीवन जीता है। स्त्री–पुरुष के सन्दर्भ में क्षमा और प्रायश्चित के मापदण्ड परस्पर भिन्न हैं। सुमन के तवायफ़ हो जाने

की सूचना पिता कृष्णचंद्र को जब मिलती है तो वह गजाधर से कहता है कि 'यदि तुम्हीं उसकी जान ले लेते तो परिवार की इज्जत पर कोई आँच ही नहीं आ सकती थी। ' प्रेमचन्द के लिए तवायफ़े सामाजिक स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं।

'सेवासदन' में प्रेमचन्द हिन्दू समाज–सुधारकों की भाषा में सोच और लिख रहे हैं। इसलिए पतिता, असती स्त्री को विषाक्त चरित्र कहते हैं। प्रेमचन्द समाज की गतिविधियों को शब्द और संवाद ही नहीं देते बल्कि उसमें दखल भी देते हैं। स्त्री और पुरुष का अपनी यौनेच्छाओं पर विजय पाकर समाजहित के लिए साधन बन जाना उनके युग की माँग थी आज भी है और आगे भी रहेगी। अस्तु, 'सेवासदन' को तवायफ़–स्त्री के अन्तर्द्वन्द्व की मनोकथा कहना अधिक समीचीन होगाद्य 'सेवासदन' ही नहीं, तवायफ़ स्त्री–चरित को विषय बनाकर लिखी गयी कोई भी कथाकृति अथवा काव्यकृति एवम् नाट्यकृति अथवा साहित्यकृति स्त्री–मन के अन्तर्द्वन्द्व की बहिर्मुखी आत्मकथा होती है।

सन्दर्भः

1. प्रेमचन्द घर में, शिवरानी देवी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 2012 पृष्ठ 24
2. सेवासदन – प्रेमचन्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ 39
3. वही, पृष्ठ 40
4. वही, 39
5. राधा कुमार – स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, 2006, पृष्ठ 84
6. सेवासदन, – प्रेमचन्द, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ 218

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 13-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भक्ति काव्यधारा और राष्ट्रवाद

बन्टी
शोधार्थी – एम.ए. (नेट)
हिसार (हरियाणा)

भक्ति काव्यधारा हमारे मध्यकाल के साहित्य की मुख्यधारा है। भक्ति काव्यधारा का समय डॉ0 नपेन्द्र के अनुसार 1350 ई0 से 1650 ई0 तक के समय को हम भक्तिकाल की संज्ञा दे सकते है। जिस समय भारत में भक्तिकाल की शुरुआत हुई उस समय हमारे उत्तर भारत में अनेको वंशो का शासन चल रहा था। यदि हम समय के अनुसार देखे तब पता चलता है कि उस समय हमारी परिस्थितियों सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा था। हमारा भारतवर्ष निरन्तर तुगलग, सैयद, लोदी वंश के शासन में निरन्तर युद्ध में तल्लीन था। ऐसे में लोगों के अन्दर धार्मिक भावनाओं का उद्‌य होना स्वाभाविक था।

राष्ट्रवाद की परिभाषा देखे तो पता चलता है कि राष्ट्रवाद एक ऐसी जनसामान्य समूह के रूप में की जा सकती है जो किसी भी देश की भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से एकता के सूत्र में बांध सके। राष्ट्रवाद के कारण पूरा देश एकता के सूत्र में बंधा हुआ है। हमारे समाज में कितना भी रहन–सहन खान–पान, संस्कृति, वेशभूषा, भाषा रिवाजो में भिन्नता क्यों न हो लेकिन जब राष्ट्र की भावना होती है तब सभी राष्ट्रवाद के नाम पर एकता के सूत्र में बंध जाते है।

भारत की राष्ट्रीय चेतना के अस्तित्व को देखा जाए तब हमें पता चलता है कि भारत देश की राष्ट्रीय चेतना का इतिहास प्राचीन काल से चला आ रहा है और यह निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर है।

भक्तिकाल के समय राष्ट्रवाद का अध्ययन किया जाए तो हमे उस समय की राजनीतिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का गहनता से अध्ययन करना होगा। जैसे कि हम पहले भी विचार कर चुके कि भक्तिकाल के समय हमारे भारतवर्ष पर तुगलक, सैयद, लोधी वंश का शासन स्थापित था और इन सब में सबसे महत्त्वपूर्ण लोधी वंश था। भक्तिकाल के द्वितीय चरण में मुगलो का शासन था। बाबर, हुमायु, अकबर, जहाँगीर के शासन काल तक भक्तिकाल की समय सीमा थी और उस समय धार्मिक सहिष्णुता नहीं थी। हिन्दुओ पर ज्यादा अत्याचार होते थे। हिन्दू, मुसलमान जनता में आपसी सद्‌भाव नहीं था। ऐसे में लोगों में अपने धर्म के प्रति आस्था बढ़ती गई और धर्म ही राष्ट्रवाद का रूप धारण करने लगा।

भक्तिकाल के लिए विभिन्न आचार्यो ने विभिन्न प्रकार के मत दिए हैः–

डॉ0 सत्येन्द्र :–

''भक्ति द्राविड़ी उपनी लाए रामानंद।''

आचार्य शुक्ल के अनुसार :–

''देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित होने के कारण हिन्दू जनता हताश, निराश, एवं पराजित हो गई थी। पराजित मनोवृति में ईश्वर की भक्ति की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक था।

भक्ति का स्त्रोत दक्षिण भारत में था। 7वीं शताब्दी में आलवार भक्तों ने जो भक्तिभावना प्रारम्भ की उसे उतर भारत में फैलने के लिए अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त हुई। भक्ति भावना का उतर भारत में फैलना हमारे राष्ट्रवाद का विस्तार था। इससे हमारे दक्षिण और उतर भारत में एकता की शुरूआत हो गई और लोग परस्पर धर्म के कारण अपने विचार सांझे करने लग गए।

भक्ति में राष्ट्रवाद की भावना को मजबूत बनाने में हमारे संत कवियो का महत्त्वपूर्ण योगदान है। कबीरदास जी ने हमारे समाज में धर्म एवं जाति के आधार पर लोगों को समझाया। उन्होंने अपने दोहे में किसी भी धर्म की प्रधानता न देकर हमारे समाज में फैली हुई बुराईयो का वर्णन किया। उनके द्वारा दिखाए गए मार्गदर्शन से सब हिन्दू और मुसलमानो में आपसी सद्भाव की भावना दिखाई दी। उन्होंने धर्म का आधार मानवता को बताया है। उन्होंने आपसी ईर्ष्या को भुलाकर आपसी भाईचारे की भावना का विकास किया। उन्होंने अपने साहित्य में हिन्दू न मुसलमान का समर्थन किया। बल्कि वे निर्गुण ब्रह्म को मानने लगे। जिससे कि सभी धर्मो के लोगों के अन्दर सद्भावना एवं राष्ट्रवाद का विकास हो। कबीर का मानना था कि हम धर्म के आधार पर राष्ट्र को न बाँटे बल्कि हमारे भारतवर्ष के राष्ट्रवाद को मजबूत बनाए। कबीरदास जी का इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

हिन्दी साहित्य में भक्ति आंदोलन का प्रारम्भ दक्षिण भारत के आलवार भक्तो की परम्परा में हुआ। लेकिन उस समय की उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियों ने उस आन्दोलन के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। मुस्लिम शासको की धर्मान्धता और इस्लाम के बलात् प्रचार एवं क्रुर धार्मिक नीति ने भी उत्तर भारत में हिन्दू जनता में भक्ति भाव को दृढ़ता प्रदान की।

भक्ति आन्दोलन भारतीय राष्ट्रवाद में प्राचीन भारतीय संस्कृति ज्ञान एवं दर्शन की एक अविच्छिन धारा है जो अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक है। भक्तिकाल में न केवल ब्रह्म के सगुण रूप को अवतरित किया गया बल्कि उसके साथ–साथ निर्गुण ब्रह्म की भी उपासना की गई। भक्तिकाल में किसी भी धर्म एवं सम्प्रदाय को महत्त्व न देकर प्रभु की भक्ति को महत्त्व दिया गया फिर चाहे वह भक्ति सगुण रूप में हो या फिर निर्गुण रूप में हों। भक्ति आंदोलन का प्रारम्भ दक्षिण भारत में आलवार भक्ती की परम्परा में हुआ। उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियों ने उस आन्दोलन के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भक्ति आंदोलन प्राचीन मनीषा, ज्ञान एवं दर्शन को एक अविच्छिन धारा है। जो अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक है। भक्तिकाल में न केवल प्रभु नामस्मरण पर जोर दिया गया बल्कि उसके साथ गुरू की महता को भी स्वीकार किया गया। भक्तिकाव्य को महत्त्वपूर्ण महता प्रदान करने वाले मध्वाचार्य जी ने गुजरात में द्वैतवादी सम्प्रदाय चलाया। वहीं दूसरी तरफ जयदेव ने पूर्वी भारत में कृष्ण प्रेम के गीत गाए। जयदेव जी के कृष्ण प्रेम के गीतों से प्रभावित होकर विद्यापति ने अनेक पदावलियों की रचना की। इसी प्रकार महाराष्ट्र में प्रसिद्ध भक्त नामदेव ने भक्तिमार्ग को महत्त्व दिया। इस प्रकार दक्षिण भारत में उत्पन्न होने वाली धीरे–धीरे उतरी भारत और पूर्वी भारत में फैलती गई। भक्ति भावना का इसी प्रकार के प्रसारण से देश में राष्ट्रवाद की भावना को फैलने से भला कौन रोक सकता था। भक्तिकाल में कबीरदास जैसे महान प्रतिभा के दर्शन होते है। कबीरदास जी भक्तिकाल में निर्गुण धारा के प्रतिनिधि कवि थे। कबीरदास जो प्रगतिशील चेतना से युक्त एक विद्रोही कवि थे। उनका व्यक्तित्व क्रान्तिकारी था। धर्म एवं समान के क्षेत्र में व्याप्त पाखण्ड, कुरीतियों, रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासी की उन्होंने मुखर आलोचना की और ऊँच–नीच, छुआछात जैसे सामाजिक कोढ़ की दूर करने के भरसक प्रयास किया। कबीर लीक एवं पुरानी परम्पराओं को छोड़कर चलने वाले ऐसे कवि थे जिन्होंने समाज में व्याप्त विसंगतियों, मिथ्याआडम्बरों एवं अनीतिपूर्ण आचरण पर खुलकर प्रहार किए। उन्होंने जो कहा उसे कहने में संकोच नहीं किया।

भक्तिकाल में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति ब्रजभाषा एवं अवधी के रूप में मिलती है। भक्तिकाल में भाषा के रूप में राष्ट्रवाद की स्थापना की। समूचा भारत भाषा की एकता एवं धर्म, कर्म, काण्ड को भूलकर राष्ट्रवाद की भावना में सम्मलित हो गया। कबीर आदि आलोचक ने सभी धर्मो में फैली हुई कुरीतियों पर कुठाराघात किया। परिणामस्वरूप सभी धर्मो से लोगों को एकता के सूत्र में बंधने लगे। भक्तिकाल में समन्वयता की भावना विद्यामान है जाति–पाति के भेदभाव दूर होने लगे तथा समाज में समानता स्थापित होने लगी, अंहिसा, सदाचार आदि की महता के द्वारा सम्पूर्ण समाज के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया गया। भक्ति साहित्य भाव और कला की दृष्टि से भक्तिकालीन साहित्य वैविध्यपूर्ण है। भक्तिकाल में सम्पूर्ण राष्ट्र को भक्ति के द्वारा एकता के सूत्र में बांध दिया। भक्तिकाल में साहित्य के साथ–साथ विभिन्न प्रकार की ललित कलाओं का विकास हुआ। ललित कलाओं में वास्तुकला, मूर्तिकला चित्रकला, संगीतकला का विकास हुआ। भक्तिकाल में हिन्दु–मुसलमान दोनों के संपर्क में आने से वास्तुकला को एक नया मोड़ मिला। भक्तिकाल में संगीतकला के क्षेत्र में भारतीय एवं ईरानी मेलजोल से एक नया मोड़ परिलक्षित होता है। नए वाद्य यंत्रों का अविष्कार भी इस काल में हुआ। इस प्रकार भक्तिकाल में विभिन्न प्रांतो के धर्म प्रचारकों ने समूचो राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया है।

सन्दर्भ

हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र – पृ0 सं0 88
श्वेताश्वेतर उपनिषद् – पृ0 सं0 6133
हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – पृ0 सं0 163
हिन्दी साहित्य का वैज्ञानित इतिहास – डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त लोक भारती प्रकाशन।
हिन्दी साहित्य की भूमिका – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 16-21
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

देवदासियों का पौराणिक तथा ऐतिहासिक स्वरूप का यथार्थ दर्शन

डॉ. सविता पुंडलिक चौधरी
किसान महाविद्यालय, पारोला
जिला, जलगाँव, महाराष्ट्र, 425002
Email ID: drsavitachaudhari@gmail.com Mobile: +91 9423952593

शोध सारांश – भारत में प्राचीनकाल से रूपजीवा एवं देवदासियों की प्रथा एवं परंपराएँ प्रचलित है। विश्व के सभी धर्मों में रूपजीवा एवं देवदासियों का स्वरूप भिन्न–भिन्न है। भारतीय संस्कृति वैदिक काल से आज तक रोचक रही है। इस रोचकता में कई विविधता है, कई परंपरा एवं रीतिरिवाज है, कई प्रथाएँ है और ऐसी ही एक प्रथा है देवदासी प्रथा। हॉलाकि आधुनिक समाज के परिप्रेक्ष्य में यह प्रथा बहुत गलत है, लेकिन यह सदियों से चली आ रही है। सभ्यताओं के प्रारंभ से लेकर उनके सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाने पर भी भारत सहित विश्व समाज के अंदर देवालयों में देवदासियों का बोलबाला रहा है। मंदिर में भी जहाँ देवपूजा होती है देवताओं के रंजन के लिए देवदासियों का रखना आज तक बदस्तूर चल रहा है। देवदासियों द्वारा देवताओं के रंजन में पुजारियों और भक्तों का मनोरंजन अनिवार्य था और आज इस प्रथा के कानूनी अपराध के रूप में घोषित होने पर भी धडल्ले से बालविधवाएँ धार्मिक विश्वास कन्या जन्म को अभिशाप माननेवाले लोग मंदिरों में कन्याओं को चढ़ा देते है। इसी कारण देवदासी प्रथा बढ़ी है। आज समाज में रूपजीवा एवं देवदासियों की सामाजिक नैतिकता के आधार पर निंदा की जाती है किंतु हर सभ्य समाज में यह संस्था प्राचीनकाल से ही विद्यमान है। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं जैसे यूनान, रोम, मिस्र, चीन, बेबीलोन, फारस, हडप्पा, मोहनजोदडों आदि संस्कृतियों में रूपजीवा एवं वैश्यावृत्ति तथा देवदासी को अनेकों देशों में विभिन्न देवियों की पूजा तथा धार्मिक कर्मकांडो को रूपजीवा एवं देवदासियों से जोड़ दिया गया था। इसी वजह से रूपजीवा एवं देवदासी को धर्म के एक अंग के रूप में देखा गया। इस अध्ययन में देवदासियों का पौराणिक एवं ऐतिहासिक स्वरूप का यथार्थ चित्रण रेखांकित किया गया है। समाज में प्राचीनकाल से लेकर आज तक देवदासी प्रथा का धार्मिक वेश्यावृत्ति के रूप में दर्शन होता है इसका प्रमुख कारण धर्म व्यवस्था की छत्रछाया में वेश्यावृत्ति का प्रचलन हुआ है। प्राचीनकाल में देवदासी का वेश्यावृत्ति से घनिष्ट संबंध रहा है। इस काल में उन्हें समाज में उच्चस्थान था।

ऐतिहासिक काल में रूपजीवा एवं देवदासी प्रथा का चलन – प्राचीनकाल से भारतीय संस्कृति समृद्ध एवं सम्पन्न रही है। वेदों, पुराणों, शास्त्रों, रामायण तथा महाभारत का अध्ययन करने पर वेश्याओं की उपस्थिति का आभास होता है। आम्रपाली, मदनमाला, माधवी, दिव्या, चंद्रसेन, पिंगला आदि कुछ इतिहास प्रसिद्ध वेश्याएँ है। इस संदर्भ में हरिश्चंद्र व्यास का कहना है कि ''मध्यकाल की भांति हर्षकाल में वैश्याओं एवं देवदासियों की प्रथा तथा विभिन्न प्रकार के सामाजिक दुराचार बदस्तूर ज्यों के त्यों थे। हर्षकाल में दासियाँ एवं वैश्याएँ प्रचुर मात्रा में थी। उस समय दरबार की पूर्णता के लिए वारविलासिनी एक आवश्यक अंग के रूप में समझी जाती थी। इन्हीं के द्वारा दरबार में नृत्य किया जाता था।''[1] हर्षकालिन भारत में वैश्यावृत्ति को राजदरबार का संरक्षण प्राप्त था। हर्षकालिन भारत में कामदेव की सत्ता को जाग्रत ही नहीं किया गया बल्कि ख्याति भी प्राप्त हो गई जिसमे चार स्त्रियां भी थी। इन स्त्रियों में नर्तकी हरिणी का, बौद्ध भिक्षुणी, चक्रवाकिया, सैरंध्री प्रसाधिका, कुरंगिका और संवाहिका कैरालिका के नाम हैं। हर्षकाल में वैश्याओं पर कर नहीं लगाया जाता था। हर्षकाल में भी रूपजीवा एवं देवदासी प्रथा प्रचलित थी। इस काल में भारतीय राजाओं के विदेशी देशों के साथ व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संबंध थे इसी कारण रोम, यूनान, बेबोलियन, इजिप्त संस्कृति में देवदासी प्रथा एवं रूपजीवा परंपरा के अवशेष मिलते है। इसका अर्थ यह है कि है यह परंपरा सदियों से चली आ

रही है। इस संदर्भ में अजेष्ठ त्रिपाठी ने टिप्पणी करते हुए लिखा है कि ''सैंधव सभ्यता के हडप्पा एवं मोहनजोदडों से प्राप्त कांस्य एवं मृण्य मूर्तियां , मातृ प्रधान सभ्यता की परिचायक है। मोहनजोदडों के उत्खनन से 14 सेमी ऊंची कांस्य की एक खंड़ित प्रतिमा, नर्तकी की नग्न मूर्ति के रूप में चिन्हित है। कट्यवलम्बित मुद्रा में इस मूर्ति का दाहिना हाथ चुडियों से भरा हुआ है एवं टखनों के नीचे का भाग अवशिष्ट के रूप में प्राप्य है। उसका एक हाथ जंघों को स्पर्श कर रहा है तथा दूसरा पात्र से परिपूर्ण है। दुबली–पतली गात यष्टि और क्षीण कीट एवं अभ्यानत जंघाए परवर्ति भारतीय साहित्य में वर्णित और कला में अंकित आदर्श नारी सौंदर्य की परिचायक है। ''[2]

इस प्रतिमा को लेकर कुछ लोगों का मानना है कि यह देवदासी है तो कुछ का मानना है कि यह प्रतिमा नृत्यांगना की है। देवदासियों का महत्त्व विशद करते हुए हरिश्चंद्र व्यास ने लिखा है कि ''नारी को भेट देने की परंपरा आर्य राजाओं से शुरू हुई। देवताओं को भेट स्वरूप मंदिरों और मठों में कन्याएँ देने पर उन्हें देवदासी के रूप में जीवनपर्यंत रहने को मजबूर होना पड़ता था। इस देवदासी प्रथा का प्रारंभ जापानी गेशा, बेबीलोन, मेसोपोटामिया में ताइया तथा असीरिया एंतुए आदि प्रदेशों के आधार पर भारत में भी हुआ।''[3]

भारत का प्राचीनकाल से बेबीलोन और मिस्र देशों से संबंध रहा है। इन देशों का व्यापारी केंद्र सिंधू नदी का किनारा था। मोहनजोदडों से प्राप्त एक नग्न नारी की मूर्ति से पता चलता है कि वह देवदासी है, तो कुछ लोग उसे नर्तकी मानते है। बेबीलोन में बैलमेरोडाक के मंदिर में कई हजार देवदासियाँ''थी। मंदिर में सुबह शाम नृत्य एवं गाना और सार्वजनिक उपक्रमों में सम्मिलित होना ये देवदासी का कर्तव्य था। प्राचीनकाल से रूपजीवाएँ एवं देवदासियों का ऐतिहासिक संदर्भ महाकाव्यों एवं धार्मिक ग्रंथों में मिलता है। यदि रूपजीवाओं एवं देवदासियों के बारे में सोचा जाए तो पौराणिक काल में इसके संदर्भ मिलते है। इस संदर्भ में एम. ए. अंसारी का मानाना है कि कमनीय नारी को समाज में भूखे सांमती, विलासी भेडियों से बचाने के लिए उनके माता–पिताओं ने नारी को भगवान की दासी, पुत्री, सेविका का नाम देकर भगवान के शरण में भेज दिया, जहाँ उसे 'अप्सरा', परी नाम देकर भगवान भोग्या घोषित कर दिया, ताकि वहाँ उसका यौवन रूप, लावण्य, सौंदर्य सुरक्षित रहे, उसे सम्मान मिले किंतु वहाँ पर विराजमान भगवान के ठेकेदारों ने नारी को अश्लीलता व नग्नता की वस्तु बना दिया और इसे अनुष्ठान का नाम देकर नारी की कामुकता को भोग का विषय बनाया तथा भगवान की दास बनाकर भगवान की मुर्ति के सामने नचवाया और फिर उसी पवित्रता को देह व्यापार का संयोग व संवाद बनाकर समाज के सामने पेश कर दिया। ''[4] विश्व के प्रख्यात महाकाव्य एवं कई धर्मों के ग्रंथ में रूपजीवाएँ ,वैश्याएँ ,गणिकाएँ ,अप्सरा, सौंदर्यवती आदि नामों से इन्हें संबोधित किया जाता है।

यदि हम रूपजीवाओं एवं गणिकाओं के इतिहास की चर्चा करे तो पता चलता है कि गणिकाओं का इतिहास अत्यंत प्राचीन रहा है। तीसरी शताब्दी में इस प्रथा के प्रारंभ का मूल उद्येश्य धार्मिक था। देवदासी कुप्रथा का आरंभ आर्यों के प्रवेश से पूर्व माना गया है। इतिहासकारों का यह भी मानना है कि देवदासी प्रथा छठी सदी में शुरू हुई थी। मान्यता है कि अधिकांश पुराण भी इस काल में लिखे गए। देवदासी का अर्थ होता है सर्वंट ऑफ गॉड यानी देव की दासी या पत्नी। इस प्रथा के तहत कुंवारी लडकियों को धर्म के नाम पर ईश्वर के साथ ब्याह कराकर मंदिरों को दान कर दिया जाता था। माता– पिता अपनी बेटी का विवाह देवता या मंदिर के साथ कर देते थे। परिवारों द्वारा कोई मुराद पुरी होने के बाद ऐसा किया जाता था। देवता के साथ ब्याही इन लडकियों को ही देवदासी कहाँ जाता है, उन्हें जीवनभर इसी तरह रहना पडता था। देवदासी प्रथा का महत्त्व विशद करते हुए अजेष्ठ त्रिपाठी ने कहा है कि ''मत्स्यपुराण , विष्णुपुराण तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी देवदासी का उल्लेख मिलता है। ''[5] देवदासियाँ मंदिरों की देख–रेख , पूजापाठ की तैयारी, मंदिरों में नृत्य आदि के लिए थी। कौटिल्य ने समाज के मनोरंजन के लिए देवदासियों के साथ ही नट, नर्तक व गायक को भी महत्त्वपूर्ण माना है। कोटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि ''समाज में बहुत से ऐसे लोग थे जिनका कार्य जनता का मनोरंजन करना था जैसे नट , नर्तक , गायन , वादक , चारण आदि। इनमे से कुछ में पुरुष कलाकार कार्य करते थे, कुछ में केवल महिलाएँ। ''[6] उनका मानना था कि देवदासियाँ केवल मनोरंजन के लिए नहीं थी बल्कि उनका स्थान देवता के चरणों में होने की वजह से वे पूज्य व श्रद्धेय थी। उस समय समाज में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान था।

वात्स्यायन द्वारा लिखित कामसूत्र से नगर जीवन, वैश्या जीवन , नारी के लिए आवश्यक चौसठ कलाएँ और नारियों से बेगार लेने की जानकारी मिलती है। ''[7] वात्सायन के साहित्य में कर्म सिद्धांत को कामसूत्र सिद्धांत से जोडा है इसमे गणिका, वेश्या यह समाज का अभिन्न अंग है। समाज में सामाजिक स्वास्थ्य संतुलन के लिए इस परंपरा को कामसूत्र में रेखांकित किया गया है। वेद ,उपनिषद, चरक संहिता, चार्वाक दर्शन तथा भारतीय महाकाव्य में रूपजीवा तथा देवदासी का उल्लेख मिलता है। जैन धर्म में भी गणिका का उल्लेख मिलता है।

कालिदास के 'मेघदूतम' में मंदिरों में नृत्य करनेवाली आजीवन कुंवारी कन्याओं का वर्णन मिलता है। देवदासियों का प्रचलन दक्षिण भारतीय मंदिरों में अधिक रहा है। दक्षिण राज्यों में देवदासी प्रथा का प्रारंभ 10 वी शताब्दी के आरंभ में कर्नाटक से हुआ। जब हम विश्व के प्राचीन धार्मिक इतिहास को देखते है तो देवदासी प्रथा भारत में ही नहीं अपितु यूनान ,मिस्र–बेबीलोन में भी दिखाई देती है। मंदिरों के अभिलेखों से पता चलता है कि प्राचीनकाल में देवदासी प्रथा यहाँ के मंदिरों में समर्पित युवतियों के लिए प्रारंभ हुई। शताब्दियों तक देवदासियाँ पवित्रता की प्रतिक बनी रही। देवदासी शब्द से तात्पर्य उस कन्या से था जो देवदासी बन देवताओं को अर्पित होती थी और जीवन पर्यंत मंदिर के प्रांगण में देवता की सेवा में रहती थी। धार्मिक अंधविश्वास और उसकी ओट में फायदा उठाते रहे पुजारी खुबसूरत कन्याओं को देवदासी बनाने के लिए बाध्य कर देते थे। बाद में यह प्रथा व्यभिचार का कारण बन गई और मंदिर के पुजारी इन देवदासियों का शोषण करने लगे और सिर्फ वहीं नहीं अन्य लोग भी जो मंदिर प्रशासन से जुडे होते थे वे भी इन देवदासियों का शारीरिक शोषण करते थे। प्रत्येक देवदासी को देवालय में नाचना– गाना पडता था। साथ ही मंदिरों में आनेवाले खास मेहमानों के साथ शयन करना पडता था इसके बदले में उन्हें अनाज या धनराशी दी जाती थी। चोल और पल्लव राजाओं के समय देवदासियाँ संगीत, नृत्य तथा धर्म की रक्षा करती थी। 11वी शताब्दी में तंजोर के राजेश्वर मंदिर में 400 देवदासियाँ थी। सोमनाथ मंदिर में 500 देवदासियाँ थी। 1930 तक तिरूपति, नाजागुड में देवदासी प्रथा थी। आज भी इन्हें कहीं 'वैसवी', कहीं जोगिनी, कहीं माथम्म तो कहीं वेदिनी नाम से जाना जाता है। देवदासियोँ की दो श्रेणियाँ होती है। पहली रंगभोग और दूसरी अंगभोग। दूसरी श्रेणी की देवदासियाँ मंदिर से बाहर नहीं जाती थीं। येल्लमा देवी को समर्पित करने की रस्म शादी की तरह ही थी। कन्या की उम्र जब 5–10 वर्ष की होती थी उस समय कन्या का नग्न जुलूस मंदिर तक लाया जाता था। उसको फिर देवदासी के रूप में दिक्षित किया जाता है। समर्पण के बाद ये देवदासियाँ मंदिर और पूजारियों की सम्पत्ति हो जाती है। प्राचीन वैदिक शास्त्रों के अनुसार देवदासियों को सात वर्गों में विभाजित किया गया है।

1–दत्ता– जो मंदिर में भक्ति हेतू स्वयं अर्पित हो जाती थी, इन्हें देवी का दर्जा दिया जाता था। इन्हें मंदिर के सभी मुख्य कर्म करने की अनुमति थी।

2– विक्रिता– जो खुद को सेवा के लिए मंदिर प्रशासन को बेच देता था, इन्हें सेवा के लिए लिया जाता था। अतः इनका काम साफ– सफाई आदि का होता था। ये पूजनीय नहीं होती थी, ये बस मंदिर की श्रमिक होती थी।

3– भृत्या – जो खुद के परिवार के भरण पोषण के लिए मंदिर में दासी का काम करती थी। इनका कार्य नृत्य आदि करके अपना पालन पोषण करना होता था।

4– भक्ता– जो सेवा भाव में पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए भी मंदिर में देवदासी का कार्य करती थी। ये मंदिर में समस्त कर्मों को करने के लिए होती थी।

5– 'ता– जिनका दूसरे राज्यों से हरण करके मंदिर को दान दिया जाता था। इनको मंदिर प्रशासन अपनी सुविधानुसार कर्म कराता था इनकी गणना थी तो देवदासियों में पंरतु वास्तव में ये गुलाम थे।

6 – अलंकारा – राजा और प्रभावशाली लोग जिन कन्याओं को इनके योग्य समझते थे उसे मंदिर प्रशासन को देवदासी बनाकर दे देते थे। ये उन राजाओं और प्रभावशाली व्यक्तियों का मंदिर को दिया गया उपहार होती थी।

7– नागरी – ये मुख्यतः विधवाओं, वैश्याओं के दोषी होते थे जो मंदिर की शरण में आ जाया करते थे। जिन्हें बस मंदिर से भोजन और आश्रय की जरूरत थी बदले में ये मंदिर प्रशासन का कोई भी कार्य कर लेते थे।

रूपजीवा तथा देवदासी का अर्थ एवं परिभाषा – प्राचीनकाल से देवदासी का अर्थ देव की दासी एवं ईश्वर की सेविका कहा जाता है। हिंदुस्तान में वेश्यावृत्ति के इतिहास में देवदासी व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है वह एक प्राचीन धार्मिक वेश्यावृत्ति का रूप हैं। इस संदर्भ में श्रीमती लाल के शब्द में कह सकते है कि ''भारत में वेश्यावृत्ति के इतिहास में देवदासी व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देवदासी शब्द का शाब्दिक अर्थ ईश्वर की दासी अथवा सेवक है और संभवतया मूलरूप में इसका तात्पर्य स्त्रियों के एक ऐसे वर्ग से था जो कि धार्मिक सेवा और तपस्याओं के जीवन के लिए स्वयं को अर्पित कर देती थी। वे देवदासियाँ जो कि विवाह के बंधन में नहीं बंधती थी बहुदा मंदिर की गायिकाएँ, नाचनेवालियां, रखैल और वेश्या का काम करती थी।''[8] प्राचीनकाल से देवदासी प्रथा का वेश्यावृत्ति से धार्मिक संबंध रहा है। यहाँ से वेश्यावृत्ति का उद्‌गम हुआ है। इस काल में देवदासियाँ वेश्या का जीवन व्यतीत करती थी। इस दौरान संभोग को मोक्ष का मार्ग मानती रही। हिंदू धर्म के मंदिर में स्त्री की यौन अस्मिता को आदर्श के रूप में देखा जाता है। इस विषय के संदर्भ में मन्मथनाथ गुप्त ने साफ लिखा है कि ''इसमें किसी तरह अन्य अश्लील बातें नहीं बल्कि ये कांस्य की बनी नर्तकियां सूचित करती है कि धार्मिक वेश्यावृत्ति का वह एक प्राचीन रूप है। ''[9] उस समय समाज

में बहुपत्नीत्व से एक पत्नीत्व में जी रहा था। धर्म की छत्रछाया में वेश्यावृत्ति का उद्‌भव हुआ है। वेश्यावृत्ति के बारे में यदि धर्म संस्था का अध्ययन करे तो पता चलता है कि संस्कृतनिष्ठ शब्द देवदासी से वेश्यावृत्ति का जन्म हुआ है। यहाँ से सारी दुनिया में वेश्यावृत्ति का जन्म हुआ है। प्राचीनकाल में वेश्यावृत्ति करनेवाली महिलाओं को द्वंचा स्थान था। भूमंडलीकरण के युग में वेश्यावृत्ति एवं देवदासी तथा रूपजीवा को कंलकित स्वरूप में देखा जाता है। समय के साथ इसका रूप स्वरूप बदला है।

वैश्या एक ऐसा शब्द है जिसे स्त्री के कंलकित जीवन की ध्वनि निकलती है। वास्तव में यह ऐसा कंलक है जो स्त्री को ही ढोना पडता है। इस श्रेणी में गणिका, नृत्यांगना एवं रूपजीवाएँ आती है। इस संदर्भ में गजेंद्र प्रतापसिंह कहते है कि ''वेश्या शब्द को अंग्रेजी में 'प्रोस्टीट्यूट' कहा जाता है जो लेटिन शब्द प्रोस्टीबुला अथवा प्रोसीडा से बना हुआ है। ''[10] भारत में इन्हें गणिका तथा रूपजीवाओं के नाम से जाना जाता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इसका विस्तृत वर्णन है। विभिन्न विद्वानों ने वैश्यावृत्ति एवं रूपजीवाएँ की कई परिभाषाएँ दी है जिनमे से कुछ निम्नलिखित है। रूपजीवा यह वैश्याश्रेणी में आती है। इस अर्थ के संबंध में डॉ व्ही.के. अग्निहोत्री ने कहाँ है ''रूपजीवा जिनकी दो दिन की आय कर के रूप में गणिकाध्यक्ष के माध्यम से राज्य वसूल करता था। ''[11] उन्हें रूपजीवा एवं वैश्याएँ कहाँ जाता है। रूपजीवा के माध्यम से प्राचीनकाल में राज्य को व्यवसाय के माध्यम से कर मिलता था इसीलिए इसको लोकाश्रय दिया गया था। रूपजीवा के संबंध में शैलेंद्र सेंगर कहते है कि ''स्वतंत्ररूप से वैश्यावृत्ति करनेवाली स्त्रियां रूपजीवा कहलाती थी। इनसे राज्य को आय प्राप्त होती थी। राज्य गणिकाओं के प्रशिक्षण पर खर्च करता था और इस प्रकार की गणिकाएँ राज्य के नियंत्रण में कार्य करती थी। यदि कोई वैश्या मुक्त होना चाहती थी तो उसे राज्य द्वारा खर्च की गई राशि का चौवीस गुणा चुकाना पडता था। गणिकाओं का निरिक्षण गणिकाध्यक्ष नामक अधिकारी करता था। ''[12] रूपजीवा की तरह नगरों में नाट्य संस्थाएँ भी सक्रिय थी। स्त्री एवं पुरुष दोनों कलाकार रंगोपजीवी तथा रंगोपजिवीनी कहलाते थे। रूपजीवाएँ एवं वैश्याएँ ,गणिकाएँ , देवदासियाँ इस श्रेणी में आती थी इन सभी रूप सौंदर्यवती को अपना उदरनिर्वाह करने हेतू देहविक्रय करती थी। वैश्यावृत्ति के बारे में तेजस्कर एवं संगीता पाण्डेय कहते है कि''वैश्यावृत्ति धन के बदले में की गयी वह भेदभावरहित व्यापारिक लेन–देन की क्रिया है जिसमे शरीर को काम भावना की संतुष्टि के लिए संमर्पित किया जाता है। ''[13]

यह यौन संबंध का व्यवसाय है जो धन के संबंध में किया जाता है। इन संबंधों के द्वारा धन एवं वस्तुएं प्राप्त करना भी इनका उद्येश्य होता है। कुछ धार्मिक एवं सामाजिक प्रथाओं ने भी रूपजीवा एवं वैश्यावृत्ति की परिभाषा को जन्म दिया है। इस संदर्भ में मधु कांकरियां का कथन है कि''बौद्ध युग में भी ऐसी वेश्याओं का उल्लेख मिलता है, जो प्रेम और रूप का व्यापार करती थी। इन वेश्याओं के संबंध में कहाँ गया है कि जिनसे वे प्रेम करती है, उनको भी और जिनसे घृणा करती है, उनको भी आदर सहित ग्रहण करती है। ''[14] वेश्यावृत्ति की यह प्रथा एवं परंपरा हिंदू राजाओं तथा मुगल सम्राटों के शासनकाल में पूरे जोर शोर से चलती रही। अंग्रेजों के शासनकाल में भी इसमें काफी बढोतरी हुई।

उत्तर भारत और दक्षिण भारत में देवदासी प्रथा – भारत के उत्तर में रूपजीवा एवं देवदासी प्रथा प्रचलित है। उडीसा के कई मंदिरों में देवदासी प्रथा प्रचलित थी इसके साथ कष्णदासी परंपरा भी उत्तर भारत में प्रचलित है। इसका परिणाम दक्षिण भारत पर भी हुआ। दक्षिण भारत के कई मंदिरों में नक्शीकाम में देवदासियाँ , गणिका ,रूपजीवा आदि का चित्रण दिखाई देता है। आर्य संस्कृति एवं द्रविड संस्कृति में देवदासी प्रथा प्रचलित रही है। इस काल के आर्य राजाओं एवं द्रविड राजाओं ने इस परंपरा को लोकाश्रय दिया। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो देवदासी तथा तवायफों का नृत्य गान देखने के लिए राजे, महाराजे मनोरंजन के लिए उनके यहाँ जाते थे। आज भी उत्तरभारत में तवायफों के कोठे पर नाच–गाना देखने के लिए लोग जाते है। तवायफों की परंपरा को मुगलकाल से लोकाश्रय मिला है।

यह परंपरा आज भी शुरू है। यवनराजा के काल में उत्तरभारत से संबंध थे। इस काल में मुजरा परंपरा प्रचलित हुई। मुजरा करनेवाली स्त्री के नृत्यगान से मनोरंजन किया जाता था। इस परंपरा से रूपजीवा का उदय हुआ। यह कुप्रथा भारत में आज भी महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्य में अस्तित्व में है उसमे कोल्हापुर, सोलापुर , सांगली, उस्मानाबाद, बेलगाम, बीजापुर, गुलबर्गा आदि है। कर्नाटक के बेलगाम जिले के सौदती स्थित येलम्मा देवी के मंदिर में हर वर्ष माघ पुर्णिमा को किशोरियों को देवदासी बनाया जाता है। कर्नाटक के 10 और आंध्र प्रदेश के 14 जिलों में देवदासी प्रथा आज भी जीवित है। कर्नाटक में देवदासी 'बसवी' नाम से पहचानी जाती है। बसव्या के रूप में देवदासी को अर्पण करना विशेषतः लिंगायत एवं होलेया लोगों में प्रचलित है। उन्हें वारांगना के रूप में रहना पडता है। वे बसेश्वर एवं मल्लिकार्जुन

देवताओं की पूजा करते है। देवदासियों का महत्त्वपूर्ण काम बिरादरी की बैठक में सम्मिलित होना, विवाह समारंभ में उपस्थित रहकर वर एवं वधू का औक्षण करना, धार्मिक विधियों में महिलाओं की मदद करना आदि। बेलगाम जिले के सौदती गाँव में माघ पूर्णिमा के दिन देवदासियों की यात्रा लगती है। उस यात्रा के अवसर पर येलम्मा देवी के मंदिर में लडकियों को अर्पण करने की परंपरा वर्षों से चली आ रही है। इन देवदासियों को जोगतिनी कहा जाता है। यह गाँव–गाँव घूमकर चोंडक, मृंदग,और तुनतुना बजाकर देवी की स्तुती में गाने गाती है और जोगवा मांगकर उदर निर्वाह करती है। महाराष्ट्र के कुलदेवत खंडेरायङखंडोबाञ कोङमुरळीञ अर्थात् लडकियों को अर्पण करने की प्रथा है। इसमे 'पुरुष ' वाघ्या के नाम से जाना जाता है वह तुनतुना बजाकर गाना गाता है और मुरळी ङलडकीञ नाच–गाना कर गोंधडङजागरणञका विधी करती है।

बौद्धकाल में गोवा के मंदिरों में देवदासी प्रथा प्रचलित थी। यह देवदासियाँ उपवास एवं ईश्वर की भक्ति करती थी। धीरे–धीरे यह देवदासियाँ नृत्य एवं गान करने लगी। गोवा में देवदासी अर्पण की विधी को शेंस विधी के नाम से जाना जाता है। यह विवाह की विधी है जिसमे वर या तो लडकी होती है या तलवार होती है जिसके साथ विवाह सम्पन्न किया जाता है। कालांतर में ये देवदासियाँ 'रखेल'के नाम से जानी जाने लगी इन्हें नाच–गाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। कालांतर में इनमे से कुछ आकाशवाणी गायिका, कुछ नाट्य अभिनेत्री, कुछ सिने तारिका, कुछ लोक कलावंत बनी। देवदासी प्रथा अत्यंत प्राचीन है। यह हर युग में हमें दिखाई देती है। बौद्ध युगीन समाज में इनका जीवन पालन बहुत कठिन था। दासियों का क्रय– विक्रय किया जाता था। अधिकांश दासियाँ ग्रह कार्य में समय व्यतीत करती थी। कुछ दासियाँ वीणा, मृदंग गायन आदि में पारंगत होती थी और स्वामी परिवार के आमोद– प्रमोद में के लिए विविध आयोजनों में हिस्सा लेती थी। गणिकाओं का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। बौद्ध साहित्य में अनेक सम्पन्न गणिकाओं का उल्लेख मिलता है। इनका रहन– सहन राजसी और ऐश्वर्य युक्त होता था। गणिकाओं से उत्पन्न पुत्र यदि प्रतिभावान होता तो उसे सम्मान और योग्यतानुसार उच्च पद प्राप्त करने में कोई बाधा नहीं आती थी। गणिकाओं तथा दासियों एवं रूपजीवाओं की स्थिति की जानकारी बौद्धकालिन साहित्य एवं जातक कथाओं से ज्ञात होती है। ओडिसा के जगप्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर की सबसे पुरानी देवदासी शशिमणि के निधन के साथ ही ओडिसा की देवदासी प्रथा का अंत हो गया। इस संदर्भ में हरिश्चंद्र व्यास कहते है कि''लिंगराज जगन्नाथ तथा कोणार्क के मंदिरों पर यौन इच्छा अंकित होने के तथ्यों का आज भी अवलोकन किया जा सकता है। यहीं स्थिति भुवनेश्वर के मंदिरों में है जिसमें इंसान इन उत्कर्ण नग्न नारी रूप की कभी भी सराहना नहीं कर सकता। नारी जब कोणार्क के सूर्य मंदिर पर उत्कीर्ण कामोत्पादक शक्ति का अवलोकन करती है तो मुक्त यौन क्रिया की ओर अग्रेसित होकर वैश्यावृत्ति का परोक्ष, अपरोक्ष रूप में मंडन करती है। ''[15] इस तरह के चित्र खजुराहों के चंदेले के मंदिर, ऐलोरा के कैलाश और काशी के नेपाल मंदिर में भी है। ये चित्र नारी जाति की दुर्गति और नारी–धर्म के मायाजाल में फसकर कालांतर में देवदासी एवं वैश्यावृत्ति में लिप्त होने को दर्शाते हैं। देवदासी एवं वेश्यावृत्ति के संदर्भ में डॉ तेजस्कर पांडेय का मानना है कि''पूर्व ऐतिहासिक वैदिक काल में गणिका का वर्णन मिलता है। यह वह सुंदरिया थी जो प्राचीन सम्राटों को मनोविनोद ,नृत्य और संगीत के माध्यम से एक हजार पन्ना लेकर किया करती थी इनके कुछ निर्धारित कार्य भी होते थे और इनकी प्रायः निंदा नहीं की जाती थी। वेदों से पुराणों तक, वाल्मिकी रामायण से महाभारत तक और कामसूत्रों से तांत्रिक साहित्य तक सभी रचनाओं में गणिका, रूपजीवी भोग्या, स्वेरिणी, देवदासी तथा कितने ही दूसरे नामों से वैश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों को संबोधित किया गया है। ''[16]

विष्णु संहिता में विशेष अवसरों पर वैश्याओं की उपादेयता का वर्णन मिलता है। मत्स्यपुराण में भी वैश्याओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था और उसे शुभ माना जाता था। ''हमारे यहाँ एक सुप्रतिष्ठित प्रथा है कि मांगलिक कार्यों में वैश्याओं को बुलाया जाता है। ये मंगलामुखी, शुभ समझी जाती है। ''[17] पश्चिम बंगाल में एक प्रथा चली आ रही है कि वहाँ पर सुप्रसिद्ध त्योहारों, दुर्गा पूजा, धात्री पूजा, कालीपूजा आदि अवसरों पर जब भी देवी प्रतिमा गढी जाती है तो उसके लिए जिस माटी की जरूरत पडती है वह मिट्टी सबसे पहले किसी वेश्या के घर से मांग कर लाई जाती है। भगवान राम की शोभा यात्रा में रूपजीवाएँ भी साथ–साथ चल रही थी। महाभारत में अनेक स्थलों पर अप्सराओं, किन्नरों तथा देवगणों की यौन क्रीड़ाओं का उन्मुक्त वर्णन किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में रूपजीवाओं एवं गणिकाओं का महत्त्व विशद करते हुए प्रो इन्द्र एम.ए ने कहा है कि ''कौटिल्य के अर्थशास्त्र में रूपजीवाओं और गणिकाओं का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। उन्होंने वेश्याओं पर नियंत्रण के लिए गणिकाध्यक्ष कर्मचारी की नियुक्ति का आदेश दिया है। उन्होंने वेश्याओं के कनिष्ट, मध्यम तथा उत्तम तीन प्रकार बतलाएँ है। ''[18] दक्षिण भारत में आज भी विवाह के अवसरों पर मंगलसूत्र धारण करवाने का कार्य वेश्याएँ करती है। इस तरह से उत्तरभारत और

दक्षिण भारत में रूपजीवाएँ एवं देवदासियों का प्रचलन हुआ। हमारे देश में आदिम काल से आज तक यह प्रथा जीवित है। संविधान एवं कानून के तहत इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया गया लेकिन सामाजिक एवं धार्मिक मान्यता के कारण यह प्रथा अभी भी जीवित है। यह भी चिंतन का विषय है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

निष्कर्ष – भारत में रूपजीवाएँ एवं देवदासी का उद्‌गम प्राचीनकाल में हुआ। सारी दुनिया के धर्म में देवदासी तथा वेश्यावृत्ति करनेवाली महिलाओं के विभिन्न नाम प्रचलित है– इनमे गणिका, देवदासी, नर्तकियां, वेश्या, तवायफ, कोठेवाली,रखैल, अप्सरा आदि का समावेश है। भारत के कई भागों में अनेक मंदिरों में नृत्य और गान में कुशल लडकियों को देवदासियों के रूप में धर्म को समर्पित किए जाने की प्रथा सदियों से चली आ रही है। भारत के कई भागों में संतान के इच्छुक माता–पिता यह मनौति मानते आए है कि यदि कन्या का जन्म हुआ तो उसे भगवान को समर्पित कर देंगे। अनेक माता–पिता धन के लोभ में भी मंदिरों को समर्पित करने लगे। यह प्रथा सिर्फ भारत में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी है जहाँ धर्म के नाम पर रूपजीवा, देवदासी, गणिकाओ के माध्यम से वैश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिला। भारतीय समाज में इन सभी को प्राचीनकाल में उच्चस्थान था लेकिन जैसे–जैसे समय परिवर्तित होता गया वैसे– वैसे देवदासियों की तरफ देखने का समाज का रवैलया भी बदलता गया। उस समय देवदासियों को ईश्वर की सेविका के रूप में देखा जाता था। उनका स्वरूप धार्मिक वेश्यावृत्ति का था। धर्म की छत्रछाया में देवदासी तथा वेश्यावृत्ति का विकास हुआ है किंतु कालांतर में जबसे उन्हें वेश्या रूपजीवा कहाँ जाने लगा तबसे समाज का उनकी तरफ देखने का नजरियां भी बदला है। आज वह केवल उपभोग की वस्तु मात्र बनकर रह गयी है। अश्मयुग से लेकर आज के सूचना प्राद्योगिकी के युग में भारत के कई प्रदेशों में रूपजीवा एवं देवदासी प्रथा प्रचलित है। भारतीय कानून एवं राज्य घटना के तहत इस प्रथा को खत्म करने के संवैधानिक प्रावधान किये गए लेकिन यह प्रथा खत्म नहीं हो सकी। ज्ञानवान समाज अभी भी अंधविश्वास एवं धर्म के चपेट में है इस प्रथा को खत्म करने के लिए जनजागरूकता आवश्यक है। देवदासी समाज को धर्म के चपेट से बाहर निकालने के लिए सरकार एवं समाज को ठोस कदम उठाने की जरूरत है इससे इस समुदाय को आत्मसम्मान एवं प्रतिष्ठा मिल सकती है। समाज इसे सकारात्मक सोच के आईने से देखे तो यह संभव हो सकता है।

संदर्भ सूची

1– हरिश्चंद्र व्यास : आख्यान महिला विवशता का : पृ. 101

2– अजेष्ठ त्रिपाठी : मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से– दिसंबर 2015 देवदासी प्रथा का सच , 18नवंबर 2017

3– हरिश्चंद्र व्यास : आख्यान महिला विवशता का : पृ. 103

4– एम. ए. अंसारी –नारी तुम क्या , ज्योति प्रकाशन जयपुर 2006 पृ. 81–82

5– अजेष्ठ त्रिपाठी : मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से– दिसंबर 2015 देवदासी प्रथा का सच , 18नवंबर 2017

6– डॉ शशि अवस्थी : ''प्राचीन भारतीय समाज'' पृ 339

7– राम शरण शर्मा : ''प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ 36

8 Mrs .s.Lal- Moral & Social Hygience, Encylopaedia of socil work in india Vol n`II Publication Divison , New Delhi First Edition 1968, p.p. 10-12

9– मन्मथनाथ गुप्त – स्त्री–पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2005 पृ. 93

10– गजेंद्र प्रतापसिंह : वेश्यावृत्ति और कानून, इंडियन स्टधिम्स रिसर्च जर्नल,वाल्युम–3 इश्यु 5 जून 2013 पृ. 01

11– अग्निहोत्री एवं शुक्ला : भारतीय इतिहास : ऐलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड , नई दिल्ली प्रधान संपा डॉ व्ही.के. अग्निहोत्री पृ 500 प्र सं 1996

12– शैलेन्द्र सेंगर : प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 213

13– तेजस्कर पांडेय, संगीता पांडेय : भारत में सामाजिक समस्याएँ , टाटा मेग्रा हिल पब्लिशिंग कंपनी लि. न्यू दिल्ली प्र. सं 2009 पृ. 100

14– मधु कांकरियां : सलाम आखिरी : पृ. 41

15– हरिश्चंद्र व्यास : आख्यान महिला विवशता का : पृ. 100

16– तेजस्कर पांडेय, संगीता पांडेय : भारत में सामाजिक समस्याएँ , टाटा मेग्रा हिल पब्लिशिंग कंपनी लि. न्यू दिल्ली प्र. सं 2009 पृ. 100

17– वहीं पृ. 100

18– प्रो इन्द्र एम. ए. : कौटिल्य का अर्थशास्त्र , पृ. 63

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 22-23
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

देवदासियों का जीवन

राजीव कुमार यादव
शोधार्थी, खरडीहा कालेज खरडीहा गाजीपुर
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर।
मो0–7897559201
Email Id: srajy572@gmail.com

देवदासी यानि मन्दिर में भगवान को समर्पित दासी। भारत में प्राचीन काल से ही देवदासियों की पौराणिक विचारधारा का 700–1200 ई0 तक अत्यधिक विस्तार मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सर्वप्रथम 'देवदासी' शब्द मिलता है। साहित्यिक रचनाओं में भी देवदासी शब्द का प्रयोग हुआ है। दक्षिण भारत में तमिल में देवदासी को 'देवतिपालः मलपालम में तेवादिची और कर्नाटक में बासवी एवं वेश्या कहते है। और उत्तर भारत में इसे देवदासी कहा जाता है।

देवदासियों के सम्बन्ध में मत्स्यपुराण में उल्लेख मिलता हैः–''कोई भी व्यक्ति जो अपनी कन्या को मन्दिर में दान करेगा वह विष्णु लोक में पहुँचेगा।''[1] इस धार्मिक मान्यता का निर्वहन करते हुए भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह देवभूमि हिमांचल में भी देवदासियों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। लोग स्वर्ग की प्राप्ति के लिए अपनी किशोर लड़कियों को मन्दिर में दान कर दिया करते थे। मन्दिर की सम्पत्ति बन जाने के बाद के युवती का जीवन मन्दिर के लिए हो जाता था। मन्दिर में देवपूजन के साथ–साथ वो नृत्य, भजन इत्यादि किया करती थी।

देवदासियों का उल्लेख हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों में परिचारिका सखी, ताम्बूल वाहिनी, सैरन्ध्री, प्रेक्ष्या, महानसी और धात्री के रूप में मिलता है। सैरन्ध्री बनी द्रौपदी पर विराट के साले कीचक की कुदृष्टि पड़ती है। तो, न तो महारानी सुदेषणा को बुरा लगता है। न ही कंक बने युधिष्ठिर को जिसके सामने ही कीचक सैरन्ध्री के केश खींचकर पाद प्रहार करता है, जुएँ में हारी गई द्रौपदी को तो भी सभा में दुर्योधन जंघा पर बैठने का निमंत्रण देता है। कर्ण गो (वेश्या) कहकर अपमानित करता है। और दुःशासन निर्वस्त्र करने की चेष्टा करता है। जब द्रौपदी जैसी वीर भार्या के साथ इस तरह का दुष्ट व्यवहार सम्भव था तो उस युग में सामान्य दासियों की क्या स्थिति होगी सोचा जा सकता है। हमारे ही धर्म ग्रन्थों में महाप्रतापी ययाति की कथा भी है। राक्षस कुल की दिव्यांगना कुमारी शर्मिष्ठा को शुक्राचार्य की अभिमानी बेटी देवयानी का दासत्व, स्वीकार करना पड़ा था वह भी केवल ईर्ष्यावश, दासियों से उत्पन्न संतानों को परिवार में पूरा सम्मान मिलता था। धृतराष्ट्र का पुत्र युयुत्सु दासी पुत्र ही था। बिदूर जैसा प्रकाण्ड विद्वान भी तो दासी पुत्र ही था। ''स्वामी के लिए अपत्य उत्पादन करने पर दासियाँ तथा उनके बांधव दासत्व से मुक्त हो जाते थे। जैसे विदूर की माता (बलि, भार्या) हुई थी।''[2]

राजमहलों में रहने वाली दासियों में सखिया ही सबसे अच्छी अवस्था में थी कुलीन घरानों की सुशिक्षित कन्याएँ राजपुत्रियों के मन बहलाने के लिए नियुक्त की जाती थी। इन सखियों को सारे वैभव दिये जाते थे। बस नहीं था तो केवल स्वतंत्रता का अधिकार। एक सामान्य नारी की तरह घर बसाने का स्वपन नहीं पाल सकती थी। राज्ञी होने पर भी इन्हें राजपुत्री के साथ अन्तःपुर में प्रवेश करना होता था। जहाँ राजपुरुषों की भोग्या के रूप में इनकी स्थिति वेश्या जैसी थी।

पाकशाला में सहयोग देने वाली दासी महानसी कहलाती थी, सैरन्ध्र का कार्य पुष्प आभूषण तैयार करना अनुलेपन, गंध आदि तैयार करना, और राजमहिषियों का श्रृंगार केश आदि का सज्जा करना था।

दासियों में धात्री का पद सबसे अधिक सम्मानित था। एक प्रसंग कृष्ण के सन्दर्भ में मिलता है। कृष्ण को अपना पुत्र मानकर उनका पालन–पोषण करने वाली नन्दराय की पत्नी यशोदा भी उद्धव से देवकी को सन्देश भेजते हुए कहती है कि ''हौ तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियौ''[3] सूरदास के इस पद में कवि का हृदय कितना ही भावानुकूल क्यों न रहा हो, पर 'धाय' शब्द की अंकिचनता उससे भी नहीं छूटी है। गरिमा प्रतिष्ठा और विश्वास के बाद भी अपनी संतान की उपेक्षा करके स्वामी सुत को पालने वाली इन नारी रत्नों को किस–किस राजपुत्र ने राजमाता को सम्मानित पद दिया है। साधारण घरों में तो ये और भी बुरी हालत में थी। स्वामी कुल के यौनाचार से ये बची रहती थी शायद इसीलिए कि उनकी दी हुई संतान के पालन–पोषण में बाधा न पड़े।

मध्यकाल के इतिहास में भी धाय या धात्री के सम्बन्ध में मेवाड़ के महान शासक राजपूत वंश में राणा की संतान कुँवर उदयसिंह को उसके सौतेले भाई बनवीर जो वास्तव में उदय सिंह के पिता राणा रतन सिंह का दासी पुत्र था।

राजपूत वंश को बचाने के लिये–धाय ने अपने पुत्र चंदन का बलिदान इस उद्देश्य से कर दिया कि राणा वंश के नमक की कीमत अपने पुत्र के रक्त से चुका उसने धात्री के उज्ज्वल चरित्र को गंगा–यमुना की तरह पवित्र बना दिया था।

नारी विवशता ने उसे दासी बनाया था इसीलिए इस कृत्रिम लिबास को उसने जब भी अवकाश पाया उतार फेंका। फलतः मूरा नामक दासी ने चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे सम्राट भारतीय इतिहास को दे दिया।

देवदासियाँ देवो को नृत्य, कीर्तन, भजन द्वारा रिझाने की प्रवृत्ति भी कालान्तर से रही है। हिन्दू धर्म में देव विग्रह पाषाण खण्डमापत्र नहीं रह गया है। उसकी प्रतिष्ठा किसी भी देवधारी जीव से अधिक रही है। उपासना में भोजन, शयन, आरती का स्थान, चंदन, पुष्प कुंकुम, जल क्षीर, मधु, धृत, दही आदि से स्नान करके, श्रृंगार वस्त्र–आभूषण को सज्जा संकीर्तन, भजन और नृत्य द्वारा आनन्द रंजन और मंत्र तथा योग द्वारा सुख सम्पन्नता और मोक्ष पाने की परिपाटी रही है।

''देवदासियों की बिरादरी की पंचायतें उनके आचार और व्यवहार का नियन्त्रण करती थी उन पर निगरानी रखती थी और नियम भंग की दोषी आचार–भ्रष्टाओं को दंड दे सकती थी। दंड मामूली जुरमाने से लगाकर जाति निष्कासन तक होता था।''[4] देवदासियों के सन्दर्भ में दक्षिण भारत के उस जन–समुदाय में पाये जाते है। जो अपने आपको देवदासी जाति का बताते है। उनके संस्कार इतने दृढ़ है कि वे समझाने पर भी यह मानने को तैयार नहीं है कि देवदासी वस्तुतः घृणित वेश्या व्यापार है। इतिहास में तो नहीं पर साहित्य में इसका साक्ष्य अवश्य मिलते है। मठ के महन्तों, गोसाइंयों और पण्डे पुजारियों की अवैध संतानों को भी देवदासियाँ बना दिया जाता था इन्हें देवदासी ने कहकर 'दासी' नाम से सम्बोधित किया गया है। और इन्हें देवस्थल की साज–सज्जा संवारने के लिए इनकी नियुक्ति दासी के रूप में की जाती थी, और असहाय लाचार विधवाएँ भी इसी तरह की सेवाएँ देकर मन्दिरों, मठों और देवघरों से भोजन, वस्त्र एवं आश्रय पा लेती थी। अतः इनके इसी स्वरूप को देवदासी के रूप में जाना जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. महाभारत में नारी–डॉ0 वनमाला भवाललकर, पृ0सं0–255, अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर।
2. अप्सरा–रमनलाल बसन्तलाल देसाई पृ0सं0–527, हिन्दी प्रचारक संस्था पोस्ट बॉक्स–1106 पिशाच मोहन वाराणसी।
3. महाभारत में नारी–डॉ0 वनमाला भवालकर, पृ0सं0–287, अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 24-27
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं शती के उपन्यासों में रूपजीवावृत्ति की अंतहीन गुफा का दर्द

डॉ. किरण ग्रोवर
एसो०प्रो०,स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,डी०ए०वी० कॉलेज, अबोहर।
चलभाष–94783–20028
groverkirank@gmail.com

पौराणिक काल से ही रूपजीवावृत्ति समाज को ग्रसित करने वाली बर्बर समस्या है। रूपजीवा तो विभिन्न रुप धारण करके अनेक युगों से समाज के नैतिक मूल्यों को कलंकित कर रही है। आज भी रूपजीवा जीवन के अलग अलग स्वरुप समाज में प्रतिबिम्बित होते हैं। स्त्रियों के दर्दनाक हादसे के पीछे एक सीमा तक व्यवस्था ही जिम्मेदार है। इस विषय पर गांधी जी का विचार है कि 'मुझे यह मंजूर नहीं कि भगवान की पवित्रतम सृष्टि को अपनी वासना का शिकार बना कर हम पशुओं से भी गये बीते बन गये।'[1] 'रूपजीवा ऐसा शब्द है जिससे स्त्री के कलंकित जीवन की ध्वनि निकलती है। वास्तव में यह ऐसा कलंक है जिसे स्त्री को ही ढोना पड़ता है। रूपजीवावृत्ति केवल भारतीय समाज की ही समस्या नहीं है अपितु कोई भी समाज अथवा देश इस समस्या से मुक्त नहीं है। शायद ही मानव समाज की कोई ऐसी अवस्था रही होगी जब रूपजीवावृत्ति न रही हो।

एक व्यवसाय के रूप में रूपजीवावृत्ति का प्रचलन सम्पूर्ण विश्व में प्राचीन काल से ही रहा है। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं जैसे यूनान, रोम, मिस्र, चीन, बेबीलोन, फारस आदि में देवियों की पूजा तथा धार्मिक कर्मकाण्डों को रूपजीवावृत्ति से जोड़ दिया गया। भारतीय साहित्य वेदों, पुराणों, शास्त्रों, रामायण तथा महाभारत का अध्ययन करने पर रूपजीवाओं की उपस्थिति का आभास होता है। पूर्व ऐतिहासिक वैदिक काल में गणिका का वर्णन मिलता है। विष्णु संहिता में विशेष अवसरों पर रूपजीवाओं की उपादेयता का वर्णन मिलता है। मत्स्य पुराण में भी रूपजीवा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है और उसे शुभ माना जाता था।"हमारे यहाँ यह एक सुप्रतिष्ठित प्रथा है कि मांगलिक कार्यों में रूपजीवाओं को बुलाया जाता है। ये मंगलामुखी, शुभ समझी जाती हैं।"[2] दक्षिण भारत में आज भी विवाह के अवसरों पर मंगलसूत्र धारण करवाने का कार्य रूपजीवाएँ ही करती हैं। उत्तरपूर्व भारत में दुर्गापूजा तथा विवाह के समय रूपजीवा द्वारा अपने घर के द्वार से एक मुट्ठी मिट्टी फेंका जाना आवश्यक समझा जाता है। [3]

रूपजीवावृत्ति के कारणों को जाने बिना ही समाज इन रूपजीवाओं को बुरी दृष्टि से देखता है। जबकि कहीं–न–कहीं यही समाज इस समस्या के लिए उत्तरदायी है। ये रूपजीवाएँ किसी–न–किसी विवशता के कारण ही इस कृत्य को अपनाने के लिए तैयार हो जाती हैं। विभिन्न विद्वानों ने रूपजीवावृत्ति की समस्या को अनेक आधारों पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। समाजशास्त्रियों ने इसे सामाजिक, मनोवैज्ञानिकों ने मनोवैज्ञानिक, अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक तथा इतिहासविदों ने इसे ऐतिहासिक कारण माना है। अधिकांश विद्वान इस बात से सहमत हैं कि आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारण रूपजीवावृत्ति में सर्वप्रमुख हैं। रूपजीवावृत्ति का सबसे मुख्य कारण मनुष्य में कामवासना की प्रवृत्ति है। [4] कोई व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष यह प्रवृत्ति जब अनियंत्रित तथा सीमा से अधिक हो जाती है तब रूपजीवावृत्ति जैसे आचरण को प्रोत्साहन मिलता है। रूपजीवावृत्ति के विश्लेषण का तीसरा उपागम इसे औद्योगीकरण तथा नगरीकरण की एक उपज के रूप में स्पष्ट करता है।

समाज में रूपजीवाओं की मौजूदगी एक ऐसा चिरन्तन सवाल है जिससे हर समाज, हर युग अपने–अपने ढंग से जूझता रहा है। कोई भी स्त्री मन से रूपजीवा नहीं बनना चाहती वह किसी न किसी परिस्थितिवश इस पेशे को

अपनाती है। परिवार का विघटन विवाहिता स्त्रियों तथा अविवाहित लड़कियों को अक्सर रूपजीवावृत्ति की ओर ले जाता है। मधु कांकरिया के 'सलाम आखिरी' उपन्यास की लगभग सभी रूपजीवाएँ पुरुष द्वारा शोषण का शिकार होने के फलस्वरूप ही इस पेशे को अपनाती है। उपन्यास की रमा नामक रूपजीवा का सुकीर्ति से कहना है–'आप इहाँ नहीं आया करिए, अमारा मन खराब हो जाता है। अमें अपनी नंगई सहन नहीं होती। आपकी ही जैसे अम भी इज्जतवाले थे। अम भी किसी की बहन और बेटी थे। अमें ही क्यों रंडी बनना पड़ा? आपको देखने से अमारा अपने काम में मन नहीं लगता है। देखिए, अम सभी दुःखी हो गई हैं। फिर आप अमारा कुछ भी नहीं कर सकती है। अम तो यूँ भी खराब ही हो गई हैं।"[5] यह उपन्यास रूपजीवावृत्ति के परिदृश्य के माध्यम से करुणा का उद्रेक करने की कोशिश की हैं।

कम आयु की लड़कियों का अमानवीय यातनाएँ सहन करना, पुरुष वर्ग द्वारा एक साधारण अधिकार के रूप में स्त्रियों का अपमान, तिरस्कार और उन पर अविष्वास करना आदि ऐसे कारण हैं जो विद्रोही मन की लड़कियों व स्त्रियों को रूपजीवावृत्ति के लिए प्रेरित करते हैं। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'अक्षयवट' में तारा की माँ उससे रूपजीवावृत्ति करवाती है। जहीर उनको देख कर हैरान हो जाता है।"यह तारा और उसकी माँ है जो बेटी को किसी ग्राहक के घर ले जा रही है। उसने इन दोनों के बारे में काफी सुन रखा था और आज अपनी आंखों से देख लिया। जहीर के दिल में कुछ चिटखा। तारा कुलसुम की सहेली थी।"6 नासिरा जी ने स्पष्ट करना चाहा हे कि रूपजीवाएँ घृणा की पात्रा नहीं घृणा तो उन परिस्थितियों तथा रीति–रिवाजों से करनी चाहिए जिनके कारण नारी अबला और असहाय बनकर कुत्सित कार्य में गिरती है। नासिरा शर्मा जी ने –ज़ीरो रोड' उपन्यास में रानो विदेश में अपनी बेटियों का पेट पालने के लिए देह व्यापार कर रुपया कमाती है। गुलफाम रानो की पीड़ा को समझता है कि 'अगर वह मर्द नहीं औरत होता तो शायद इसी हालात से टकराता जिससे यह ओरतें गुज़र रही हैं। पता नहीं कैसे कैसे मर्दों को पेट की खातिर इन्हें झेलना पड़ता है। '[7]

रूपजीवा प्रथा समाज की चिर–परिचित प्रथा है। समाज का यह दलित और उपेक्षित वर्ग लोगों के हृदय की सहानुभूति पाने से सदा ही वंचित रहा है। प्राचीन काल में भी ऐसी स्त्रियों को निरादर की दृष्टि से देखा जाता था। परन्तु आज यह पेशा नारी कई बार स्वेच्छा से वरण करती है। भौतिकता की अंधी दौड़ में वह काल गर्लज़ के रूप में जानी जाने लगी है। जयन्ती रंगनाथन के उपन्यास 'औरतें रोती नहीं' में श्शोभा नामक रूपजीवा को कमलनयन पाँच हजार में खरीदता है और मंदिर में शादी करता है वह उसे अपने दोस्त श्याम के घर ले जाता है। विड़म्बना देखिए जिस कमलनयन के सहारे शोभा रूपजीवावृत्ति को छोड़कर सुखमय गृहस्थ जीवन के सपने लेकर चल पड़ती है वही कमलनयन मौका पा कर भाग निकलता है। श्याम की बात सुनकर शोभा को बहुत बड़ा धक्का लगता है और व्यथित हो कर कहती है "हमारी वजह से श्शर्मिंदा मत होओ। हम आपके घर की बहू बेटियों की तरह नहीं है। हम बचपन से ही मर्दों के बीच जीते आए हैं डर नहीं लगता हमें। हमसे क्या छीन लेंगे। हमें बंधकर जीना नहीं आता। साब जी। बंधे तो लगा सांस ही रुक गई है। अब जीने के लिए कुछ तो करना पड़ेगा ... हमने इन छोकरों से दो सौ रूपये लिए हैं। आप कहें तो आधे आप को दिए देते हैं। घर तो आप ही का है न।"[8]

रूपजीवाएँ किसी–न–किसी विवशता के कारण ही इस कृत्य को अपनाने के लिए तैयार हो जाती हैं। अजय नावरिया जी ने 'उधर के लोग' उपन्यास में आयशा द्वारा रूपजीवावृत्ति को अपनाने का कारण आर्थिक ही माना है। आयशा माता पिता के गुज़र जाने के बाद पेट पालने के लिए रिसैप्शनिस्ट की नौकरी कर लेती है और वहीं पर उसका शारीरिक शोषण होता है। जब सिद्धार्थ आयशा को कहता है कि रोज़ी रोटी कमाने के लिए तुम्हें नौकरी करनी चाहिए थी तब आयशा कहती है'कहाँ कहाँ से––– आवा का आवा दहक रहा है मास्टर जी और भूख बहुत बुरी होती है,सातवें दिन का फाका,सारी इज्ज़त भुला देता है।'[9] अजय नावरिया जी ने स्पष्ट किया है कि जब समाज में नारी का शारीरिक शोषण होता है तो वह विवश होकर इस धन्धे को अपनाती है।

अनामिका का उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में तारा के माध्यम से रूपजीवावृत्ति का चित्रण किया है। तारा विदेश में रहते हुए रुपया कमाने के लिए देह व्यापार करती है। पुरुष मानसिकता और हर समय स्त्री को देह के रूप में ही देखना और भोगना वे कंटीले सत्य हैं जो स्त्री–अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं? तारा के माध्यम से अनामिका ने कालगर्ल के जीवन की पीड़ा का चित्रण किया है, "एक कालगर्ल के जीवन का सबसे बड़ा और प्रकट यथार्थ देह ही है, दीखती वही तो है और जो नहीं दीखता मन, भावनाएँ और सूक्ष्मतर विचार, उसमें किसी की दिलचस्पी भी नहीं होती।"[10] अनामिका ने कालगर्ल के जीवन सत्य की वास्तविकता का दिग्दर्शन करवाया है।

अनामिका के दूसरे उपन्यास 'दस द्वारे का पींजरा' में रूपजीवा जीवन के अन्य दर्द भरे पहलुओं का चित्रण हुआ है। ठाकुर हलवन्त सहाय जब ढेलाबाई नाम की रूपजीवा को महेन्द्र मिसिर के हाथों उठवा लेता है तो वह हलवन्त

सहाय के आगे शारीरिक समर्पण करने को तैयार हो जाती है परन्तु मानसिक रूप से उसकी होने से इंकार कर देती है। महेन्द्र मिसिर उसे समझाता हुआ कहता है कि तुम्हें उन्होंने पत्नी बनाकर रखा है तो वह रूपजीवां की स्थिति स्पष्ट करती है " ... मिसिर जी, मेरी स्थिति ज़रा भी नहीं बदली। जो मैं पहले थी, अब भी हूँ, रण्डी की बेटी जिसे कोई कुछ भी कह सकता है, कहने की कौन कहे, कर सकता है कोई कुछ भी जिसके साथ : कभी भी, किसी भी समय दरवाजा धकियाकर घुस सकता है भीतर।"[11]

अनामिका जी ने स्पष्ट किया है कि रूपजीवाएँ घृणा का पात्र नहीं हैं। वह दुर्भाग्यश इस दलदल में फंस जाती हैं जिसका कारण परिस्थितियाँ और हमारा समाज है।

धार्मिक और सामाजिक प्रथाओं से भी रूपजीवावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। आर्थिक विषमता भी कई बार नारी को इस ओर धकेलती है। कुसुम अंसल के उपन्यास 'तापसी' में गउर–दासी बताती है तीन गरीब औरतों के बीच एक ही साड़ी थी। विधवा आश्रमों में चल रही रूपजीवावृत्ति से बचकर भागी विधवा खुलासा करती है,आश्रमों में भी रूपजीवावृत्ति होती है "मथुरा के एक आश्रम में तो खुले आम रूपजीवावृत्ति चलती थी। मैं भी मजबूर कर दी गई थी। वहाँ की प्रबंधक कमेटी के लोग ठीक नहीं थे–कुत्तों जैसा व्यवहार, लूट–खसोट।"[12] कुसुम अंसल ने स्त्री की स्थिति और आश्रमों में उनकी अस्मिता पर हुए प्रहार को पाठकों के समक्ष रखा है।

मधु कांकरिया के 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में भीरूपजीवावृत्ति में धकेली गई संघमित्रा की बहन छुटकी का चित्रण किया है। छुटकी जोकि दीक्षा ले चुकी थी और साध्वी बन चुकी थी परन्तु वहीं जैन मुनि की हवस का शिकार होती है और बेकसूर होते हुए भी वह धर्म संघ से निष्कासित कर दी जाती है। रूपजीवा बनने की अपनी व्यथा बताते हुए वह कहती है, "दो–तीन दिन रखकर चाचा ने जब उसे बाहर धकेल दिया तो चाचा के दरबान से गुजारिश की उसने कि उसे कैसी भी, कोई भी नौकरी दिला दे। वह उसे इन गलियों में बेच गया।"[13] समाज के धर्म नाम की पवित्रता पर यह पंक्तियाँ प्रहार करती हैं कि कहाँ तक पवित्र और सही है यह सभ्य कहा जाने वाला समाज जो स्त्री की अस्मिता की रक्षा नहीं कर सका। छुटकी की बेटी का नाम ऋषिकन्या रखने वाली उसकी चकले की मैडम के शब्द समाज के मुँह पर तमाचा हैं, "हम इसे ऋषिकन्या कहेंगे। दुनिया भी तो देखे कि ऋषियों के शुक्राणु रूपजीवा के कोठे में पनपते हैं।"[14]

अति निर्धनता रूपजीवावृत्ति की ओर उन्मुख करने के लिए एक अन्य कारण है। श्शरद सिंह ने 'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में एक ओर सिन्दूर को कवच बना रही गायत्री है तो दूसरी ओर फूलवा जैसी नारी है जो पति और घर की जरूरतों के लिए धंधा तो करती हैं और उसका विद्रोह भी करती हैं। फुलवा घर की स्थिति सुधारने के लिए किसी का भी बिस्तर गर्म करती पर एक दिन विद्रोह कर उठती है "चरित्तर का इतना ही ख्याल था तो ब्याह कर ले चलते अपने गाँव जैसे रहने को कहते वैसी रहती। यहाँ तो पेट पालने के लिए दूसरों का बिस्तर गर्म करना ही पड़ता है ... बेड़नी के मरद बने हो तो बेड़िया जैसे रहो, ठकुराइसी न दिखाओ।"[15] अति निर्धनता के कारण पनपती रूपजीवावृत्ति की ओर शरद सिंह जी ने पाठकों का ध्यान केन्द्रित किया है।

स्त्रियों के रूपजीवा बनने के पीछे उनके परिवार की भूमिका रही है। आज बेटी अपने ही घर में सुरक्षित नहीं है,उसे शारीरिक शोषण का भय बना रहता है। मैत्रेयी पुष्पा जी ने 'गुनाह बेगुनाह' उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार की रेशमी का दर्द उकेरा है जोकि मां की गौरहाज़िरी में पिता की हवस का शिकार बनती है। वह रूपजीवा जीवन व्यतीत करती हुई कहती है–'सबकी अलग व्यथाएँ हैं,मगर भूख का कहर एक सा है–––इज्ज़त वाले किसी को इज्ज़त से रहने देना नहीं चाहते। खुद कुकर्म करते हैं, दूसरे को कीचड़ में धकेल देते हैं। '[16] रेशमी के कथन से स्पष्ट होता है कि वेष्या बनने के पीछे सगे–सम्बन्धियों का हाथ रहता है जिसकी समाज दुहाई देता है।

मानसिक दुर्बलता एवं अज्ञानता के कारण कई लड़कियाँ अच्छे–बुरे, उचित–अनुचित, पाप–पुण्य आदि के बीच अंतर को पहचानने में असमर्थ होती हैं। नासिरा शर्मा के 'अज़नबी जज़ीरा' उपन्यास में रुया को पति का इलाज करवाने व घर का खर्च चलाने के लिए रूपजीवावृत्ति को अपनाना पड़ता है। वह समीरा से उपनी स्थिति का वर्णन करती हुई कहती है–'मैं अपना बदन नुचवाती हूँ––अपने हम –'शहरियों से–और क्या करूं––अलबाकर मुझे गाली देता है और बेवफा कहता है। शहबतरानी का इल्ज़ाम देता है। '[17] नासिरा शर्मा ने यह स्पष्ट किया है कि नारी को अपने घर परिवार के लिए रूपजीवावृत्ति को अपनाना पड़ता है।

इस तरह इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों ने समाज में स्त्री की अस्मिता को दागदार बना देने वाली रूपजीवावृत्ति की समस्या का उल्लेख कड़े शब्दों में किया है और समाज के समक्ष यह चुनौती भी रखी है कि स्त्री जीवन और समाज से यह अभिशाप क्या कभी मुक्त हो सकेगी। अस्मिता के बचाव में विद्रोहिणी स्त्री जाति को अपनी अस्मिता के बचाव

के प्रति सजग होने में सदियां लगीं हैं परन्तु उसका यह कदम सार्थक हुआ है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में रूपजीवावृत्ति के दर्द को उकेरा गया है जोकि विभिन्न कारणों से औरत को रूपजीवा बनने के लिए विवश करता है। विवेच्य उपन्यासों में रूपजीवावृत्ति के परिदृश्य को देखते हुए पाठकों के भीतर असहाय स्त्रियों के प्रति करुणा का उद्रेक पैदा करने की चेष्टा की गई है। समाज से रूपजीवाओं की समस्या का समाधान तब तक असंभव प्रतीत होता है जब तक स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के सामाजिक और आर्थिक असंतुलन में उपजे शोषण का शिकार होने से नहीं बचाया जाएगा, अशिक्षा, अज्ञान और अंधविश्वासों से बाहर नहीं निकाला जाएगा, जब तक नैतिक और भावनात्मक सुरक्षा, प्रेम और स्वस्थ वातावरण नहीं दिया जाएगा, समाज की दुहरी मानसिकताओं को नहीं बदला जाएगा तब तक रूपजीवावृत्ति की अंधेरी अंतहीन गुफा में स्त्रियाँ यूँ ही दम तोड़ती रहेंगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 श्यामदास घोष, भारतीय मध्यवर्ग,बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,सम्मेलन भवन, पटना,1972।
2 निर्मम हेमराज,हिन्दी उपन्यासों में मध्य वर्ग,विभू प्रकाशन, साहिबाबाद,1987।
3 गोरखनाथ तिवाड़ी, अन्तिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर,2008।
4 विनय मोहन,साठोतरी हिन्दी उपन्यासों में नारी परिकल्पना,नगन प्रकाशन,नई दिल्ली,2007।
5 मधु कांकरिया,सलाम आखिरी, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2002,पृ 37
6 10 नासिरा शर्मा, अक्षयवट,भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली,2003 पृ. 98।
7 नासिरा श्शर्मा,ज़ीरो रोड,सामयिक प्रकाशन, दिल्ली,2005,पृ 115।
8 जयंती रंगनाथन, औरतें रोती नहीं, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2006,पृ 35।
9 अजय नावरिया,उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन प्रा लि,नई दिल्ली,2008,पृ 17।
10 अनामिका,तिनका तिनके पास,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,2008,पृ 287।
11 अनामिका,दस द्वारे का पींजरा,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2008,पृ 206।
12 कुसुम अंसल, तापसी,राजपाल प्रकाशन,नई दिल्ली,2008, पृ. 74
13 मधु कांकरिया,सेज पर संस्कृत, राजकमल प्रकाशन प्रा लि,नई दिल्ली,2008,पृ 210।
14 वही,पृ 216।
24. शरद सिंह, पिछले पन्ने की औरतें, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली,2010,पृ 33।
25 मैत्रेयी पुष्पा,गुनाह बेगुनाह, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2011,पृ 35।
26 नासिरा शर्मा,अज़नबी ज़जीरा,लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद,2012,पृ 67।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 28-30

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'जनानी डयोढ़ी' उपन्यास में रूपजीवा चित्रण

प्रो. डॉ. गजानन चव्हाण
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग प्रमुख,
श्रीमती गंगाबाई खिवराज घोडावत कन्या
महाविद्यालय, जयसिंगपुर।
Email:chavangajanan1980@gmail-com, Mob : 9890277316

प्राचीन काल से साहित्य में सभी देशों में रूपजीवा का चित्रण कम अधिक माञा में मिलता है। जिसका धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश से संबंध रहा है। 'रूपजीवा' का अर्थ है जो रूप के बल पर जीविका चलाती है अर्थात वेश्या। कुछ देशों में देवियों की पूजा एवं धार्मिक अनुष्ठानों में अत्याधिक अमर्याद वासनात्मक कृत्यों की प्रमुखता रहती आ रही है। यही बात सामाजिक परिवेश में नारी की पारिवारिक संबंध को लेकर, विवाह के आड में, जाति–पाति भेद, छुआछूत आदि का आधार लेकर उसे कुचला दिया गया है। उसी तरह आर्थिक परिस्थिति का लाभ उठाकर भी शोषण किया गया। सांस्कृतिक आधार से रूपजीवाओं (नटी–वेश्याओं) कोगीत नृत्य और कलाप्रियता के आड में कामवासना का शिकार बनाया गया। कालांतर में नृत्य कला, संगीत कला एवं सीमित यौन संबंध द्वारा जीविकापार्जन में असमर्थ वेश्याओं को बाध्य होकर अपनी जीविका हेतु लज्जा तथा संकोच को त्याग कर अश्लीलता प्रबल होती गयी।

भारत में वैदिक काल की अप्सराएँ और गणिकाएँ वही मध्ययुग में देवदासियाँ और नगरवधुएँ बनी तथा आधुनिक काल में वारांगनाएँ और वेश्याएँ बन गई। आज भी देश में राजस्थान, उत्तरप्रदेश और उड़ीसा ऐसे क्षेत्र में मध्ययुगीन सामंतवाद और देह व्यापार की प्रथा का लम्बा इतिहास है। राजस्थान के रूपजीवा तथा वेश्यावृत्ति पर यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' का 'जनानी ड्योढी' उपन्यास सन 1972 में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में स्वतंत्रतापूर्व कालीन राजस्थानी परिवेश में नारियों पर होनेवाले अत्याचार, उद्दाम सामंतों की वासनाधीनता तथा हजारों निरीह नारियों की व्यथा को चित्रित किया है।

'जनानी ड्योढी' उपन्यास में रूपजीवा की नारकीय यातना को यथार्थता से रेखांकित किया है। इसके बारे में स्वयं लेखक का कहना है–"मेरा उपन्यास 'जनानी ड्योढी' प्रकाशित हुआ तो लोगों को लगा कि यह कपोल कल्पित है....पर मेरे पास डाक्युमेंटस हैं राजा माधो सिंह से संबंधित। समकालीन लेखक से मैंने अपने यथार्थ को इसलिए अलग किया क्योंकि आदमी का कथ्य ही मौलिक होते है।"[1] प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में नायिका नैनडी के हस्ताक्षर में लिखित बातें इस सत्य का प्रमाण देती है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका 'नैनरस' या 'मिसनीना' फ्लैशबैक शैली में अपने पूर्व जीवन की नैनडी की कथा सुनाती है। उसका जन्म राजस्थान के एक गाँव में हुआ था। तब वहाँ अकाल पड़ा था। तब नैनड़ी के पिता ने अपने सात बेटे और नैनडी को लेकर बहन के पास जाते हैं। नैनडी की बुआ बहुत चालाक थी। नैनडी की सुंदरता को देखकर उसे उसने पाला–पोसा था। नैनडी कहती है–"दरअसल बुआ ने मुझे तीन हजार में बेच दिया। चट मँगनी और चट ब्याह हो गया। विवाह की होमाग्नि के पवित्र धुए के स्पर्श से मुझमें यौवनांकुर फुटने लगे।"[2]

उसकी बूढ़े व्यक्ति से शादी कर दी। नैनडी की सुंदरता को देखकर उस बूढ़े पति की लार टपकती थी। उसने पैसे भी दिए थे। बुआ ने उस बूढ़े पति को अपने यहाँ आने नहीं दिया। बुआ ने पैसे लेकर और कुटनी से मिलकर गाँव की जागीर लेने की बात समझा–बुझाकर नैनडी को जनानी ड्योढी में पहुँचाया। जनाना ड्योढियों की रानियाँ, पटरानी और अन्य महिलाओं के क्रिया–कलापों का वर्णन नैनडी के माध्यम से लेखक ने बहुत बारीकियों से किया है। वे कहते

जब अकाल पड़ जाता है तो छोटी–छोटी बालिकाएँ काफी सस्ती बिकने लगती तब जनानी ड्योढी स्त्रियों से भरता। नैनडी कहती है–"कि थे राजा, ठाकुर, उमराव, अमीर और गोरे साहब सब–के–सब एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हैं। सबको खाने को स्वादिष्ट भोजन चाहिए और भोगने को नित–नयी छोकरियाँ। इस जिस्म पर बहुत–सी नामी मोहरे लगी हुई है। बुद्धी और भाग्य के कारण आज मैं सुखी–संपन्न हूँ। वर्ना मिलता क्या? सिर्फ पीड़ाओं से भरा जीवन। एक निर्जन रेगिस्तान।"[3]

इससे रूपजीवा स्त्रियों की यातना का अंदाज लगा सकते हैं। मानवता के नामपर लज्जाजनक व्यापार चलता है। नैनडी जैसी रूपजीवा को मजबूरी से इस मार्ग पर जाना पड़ता है। अपने रूप के बल पर पैसे को इकट्ठा करती है। उसके बारे में नैनडी कहती है–"इस बीच मुझे कई राज्याधिकारियों के पास जाना पड़ा। इसमें कुछ मुझे पसंद आये और कुछ इतने सड़ियल, मरियल और खूसट थे कि मुझे उनसे घृणा–सी हुई। पर मैंने एक पेशेवर स्त्री की तरह अत्यंत कुशलता से उनसे माल ऐंठा। अब मैं काफी चालाक हो गयी थी। मैंने निश्चय किया कि मुझे शीघ्र ही अपनी 'कंचन काया' की माया फैलाकर अपना ओहदा और माली हालत ज्यादा–से–ज्यादा बढ़ा लेनी चाहिए।"[4]

उम्रभर शरीर बेचनेवाली स्त्रियों को अपनी सुरक्षा के लिए अपने लिए पैसा कमाने की जरूरत होती है क्योंकि जनानी ड्योढी में बहुत–सी स्त्रियाँ भूखी, किसी की शिकार, हत्या, बीमारी से मर जाती है। नैनडी ने इन वेश्याओं का वर्ण इसप्रकार किया है–"जनानी ड्योढी में वेश्याओं की भी भरमार थी। लगभग दो हजार तवायके थी। इन तवाय को के अलग–अलग दल थे। नारायण दल, सूरज दल, चाँद दल...देवी आखाडा और वीर आखाडा। इस तरह के अनेक आखाडे। इन दलों में बूढ़ी उस्तादनों से लेकर चंद ही दिनों पहले उठाकर लायी हुई मासूम बालियाँ भी होती थी। जो वेश्याएँ ऊँचा ओहदा पा जाती है उन्हें या तो ड्योढी में पृथक महल मिल जाता था या अलग हवेली।"[5] इसी तरह जनानी ड्योढी में वेश्याओं की भरमार होती जिसमें महारानी के अलावा परदायतन, डाबडियाँ, रखैल, स्त्रियाँ, मरजदाने, पातुरें, घाघरवालियाँ, गोपियाँ ऐसी अनेक रूपजीवा नारियाँ रहती थी।

जनानी ड्योढी हर नारी आशंका, भय, अविश्वास तथा षडयंत्र से त्रस्त है। जब नैनडी आने की बात रानी को समझ में आ गई तो उसको बुलाकर पंखा चलाने का काम लगाकर अपने पास रखवाती है। क्योंकि सुंदर नैनडी को देखकर महाराजा धतुरासिंह उसे अपना बना लेगा जिससे महारानी का को अनदेखा किया जाएगा। इसीतरह सभी नारियाँ खुद को सुरक्षित रखने का विचार करती थी। एक दिन नैनडी की मुलाकात 'बंडारन जोखी' बूढ़िया से हो गयी। उन्होंने नैनडी की मुलाकात सामंत लोगों से करा दी। इससे नैनडी को दैहिक शोषण के बदले पैसे कमाने का जरिया मिलवा दिया। साथ ही उसे उद्दाम, यौवन, साजिश स्त्री की नाटकीय चाल षडयंत्री आदि बातें सिखा कर सक्षम बनाया और महाराजा की नैनरस सबसे खास परदायातन बन गई। नैनडी ने अपनी राजनीति से रमणलाल को दीवान पद पहुँचाया जो बाद में विरोधी बन गया। इससे पूर्व दीवान केसरी सिंह महाराजा धतूरासिंह का साला विजयसिंह तथा महारानी ने षडयंत्र रचकर नैनरस को मंगाने का प्रयास किया लेकिन नैनरस ने महाराजा के मामा मानसिंह और उनके साथियों का सारा षडयंत्र विफल कर दिया। इसके बदले में बूढ़े मानसिंह के साथ रात बितायी। इसी दरमियान नैनरस दिल्ली में बैंक बैलेन्स बढ़वाया और वही एक मकान भी खरीदा। रमनलाल के बाद हनेरी को दीवान बना दिया गया। उसको नैनरस ने एक लाख रुपये देकर विजयसिंह का पतन करवाया। बाद में और कुछ पैसे देकर जनानी ड्योढी से अपनी संपत्ति लेकर दिल्ली भाग आयी। वहाँ जाकर सुखी परिवार बनाया। महाराजा के वापस बुलाने पर जनानी ड्योढी जैसी नारकीय यातना में फिर नहीं गई। लेकिन अंत में नैनडी बाकी रूपजीवा (वेश्या) के बारे में कहती है–"आज मैं नैनरस यानी मिसेज नीना, परिवार की सुखी महिला हूँ। मैं आज खुश हूँ। पता नहीं, देशी रियासतों की जनानी ड्योढियों में बंदी अनगिनत अबलाएँ आज कैसा जीवन व्यतीत कर रही होगी?"[6]

इसतरह 'जनानी ड्योढी' उपन्यास में लेखक यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' ने 'नैनडी' का आधार लेकर समस्त रूपजीवा का चित्रण पाठकों के सामने रख दिया।"यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' के इस उपन्यास में राजस्थान के सामंती जनानखानों का इतिहास पाठकों के सामने यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। नारियों के माध्यम से सामंतों की भोग लालसा का चित्रण किया है।"7 रूपजीवा पर दर्दभरी और यथार्थ रूप कथा लिखने में यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' अग्रगण्य लेखक हैं।

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'ने 'जनानी ड्योढी' उपन्यास में राजमहलों के यथार्थ जीवन पर आधारित रूपजीवा की एक हाहाकारी रोमांचक और उत्तेजकता का वर्णन किया है। रूपजीवा या वेश्या के जीवन पर लिखा गया यह चर्चित उपन्यास है। नैनडी के माध्यम राजस्थान के सामंती जीवन में किसप्रकार नारी का दैहिक शोषण होता है इसका यह एक दस्तावेज है। इस उपन्यास में रूपजीवा के विविध रूपों का वर्णन किया है। साथ ही सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों का चित्रण किया है। लेखक ने रूपजीवा के अलग–अलग पक्षों का वर्णन करते हुए पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग

किया है। रूपजीवा या वेश्या का अंत दर्दनाक या पीड़ित होता है। उसका विच्छेद करते हुए नैनरस की रूपजीवा का सुखी परिवार दिखाया है। मुझे लगता है कि ऐसे कम साहित्य होंगे जहाँ रूपजीवा का चित्रण सुखांत हुआ है।

संदर्भ

1. सं. अवध नारायण मुद्‌गल, सारिका, पाक्षिक 16–31 अगस्त, 1986, साक्षात्कार, पृ. 44
2. यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', जनानी ड्योढी, पृ. 10
3. वही, पृ. 24
4. वही, पृ. 39
5. वही, पृ. 111–112
6. वही, पृ. 154
7. डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' के उपन्यास सामंती जीवन का दस्तावेज, पृ. 75

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 31-33

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्यिक रचनाओं में रूपजीवाएँ

('आज बाजार बंद हैं' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

डॉ0 महक
सहायक प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
चौ0 बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा) पिन कोड– 127021
फोन न0– 9802323363

हमारे समाज की चिरपरिचित एवं ज्वलंत समस्या हैं, वेश्यावृतिः समाज का यह उपेक्षित वर्ग हिंदी के अनेक उपन्यासकारों के साहित्य का लक्ष्य बना हुआ हैं। वेश्या शब्द की यदि हम सबसे बात करे तो इसके बहुत सारे पर्यायवाची हैं – रंडी, कंजरी, गात्र, वेश्या, गणिका, वारांगना, कामिनी, कुंभदासी और रूपजीवा। रूपजीवा शब्द का प्रयोग सबसे पहले चाणक्य ने किया था। कौटिल्य अर्थशास्त्र में चाणक्य ने किया था। कौटिल्य अर्थशास्त्र में चाणक्य ने श्रमजीवी की तरह अर्थपूर्ण शब्द वेश्याओं के लिए 'रूपजीवी' रखा।(1)

डॉ0 आशा धावड़े जी कहती हैं कि, "सच बताया जाए तो पेट की भूख मिटाने के लिए स्त्रीत्व को बेचना तथा पौरूषत्व के अंहकार से निरपराध स्त्री के शरीर को लुटना लज्जा का विषय हैं।" (2)

शिव नारायण टंडन लिखते हैं, "जिस पाप का वर्णन के लिए बेजान लेखनी कांप उठती हैं, उस पाप को हमारा समाज आजीवन ढोता आया हैं।" (3)

'वेश्या' संस्कृत शब्द हैं, जिसका अर्थ हैं नाचगान करके जीविका चलाने वाली स्त्री।

विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी परिभाषा अपनी विचाराशक्ति के अनुसार दी हैं। इलियट और मेरिल ने लिखा हैं, "वेश्यावृति" की परिभाषा अवैध यौन संबंध के रूप में दी जा सकती हैं। जो अनेक व्यक्तियों के साथ धन प्राप्ति के लिए स्थापित किया जाता हैं। जिसमें उसके भावों व उद्वेगों का अभाव रहता हैं। (4)

वेश्यावृत्ति आज देश की नहीं, अंतर्राष्ट्रीय समस्या बन गई हैं। वेश्या का व्यवसाय सामाजिकता, नैतिकता, मानवता की हर सीमा से लांघकर आगे निकल गया हैं।

अब यदि हम बात साहित्य की करें तो हिन्दी साहित्य में वेश्या जीवन को लेकर विस्तृत साहित्य लिखा गया हैं। उपन्यास विधा की यदि हम बात करें तो इसके अन्तर्गत पाडेय शर्मा उग्र ने शराबी, निराला ने 'अलका', ऋषभचरण जैन ने 'वेश्यापुत्र', प्रेमचन्द ने सेवासदन, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाधर' कृतियों की रचना की। जहाँ शुरूआती उपन्यासों में वेश्याओं को समाज का कलंक बताते हुए किसी न किसी आदर्श को स्थापित करने का प्रयास किया गया हैं। वहीं समकालीन उपन्यासों में आदर्श की जगह यथार्य का चित्रण करते हुए समस्या का हल पाठक की समझ पर छोड़ दिया जाता हैं। मोहन दास नैमिशराय कृत '' आज बाजार बंद हैं'' वेश्या जीवन को लेकर लिखा गया महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'आज बाजार बंद हैं' उपन्यास की कथावस्तु मूलतः वेश्याओं के आचार–विचार और दैनिक चर्या को रेखांकित करती हुई उन कारकों को चिन्हित करती हैं, जो वेश्यावृति के केंद्र में हैं। उपन्यास की शुरूआत होती है रंडियों द्वारा थाने पर किए गए पथराव के बाद होने वाली प्रेस कान्फ्रेंस से। जहॉ पत्रकारों और पुलिस की अपने–अपने धंधे की नोक–झोक हैं।

वेश्या बाजार का चित्रण करते हुए लेखक लिखता हैं–

''शहर के भीतर एक अलग शहर, जहॉ बारूद पिघलाने का कार्य बखूबी किया जाता था, जितना, जितना बारूद पिघलती, उतना ही वह शहर तड़कता–भड़कता था। इस बाजार में नीचे पानी बिकता था और ऊपर आग। आग घोंसलों

में सुरक्षित थी। घोंसलें जलते न थे। वहॉ कुछ और ही जलता–पिघलता था और पिघलते हुए आस–पास बहता था।''[5]

'आज बाजार बंद हैं' मोहनदास नैमिशराय जी का नारी–जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। सदियों से भारतीय समाज और संस्कृति ने दलित एवं नारी को प्रताड़ित किया हैं। जिस तरह दलितों को गुलामी की प्रथा के लिए विवश किया जाता हैं, ठीक उसी प्रकार नारियों को जाने–अनजानें में वेश्यावृति के लिए धकेला जाता हैं। चाहे कारण सामाजिक, आर्थिक या अन्य हो सकता हैं। किन्तु नारियों का वेश्यावृति करने के लिए मजबूर होना या मजबूर करना राष्ट्र के लिए शर्मनाक बात हैं।

भारतीय लोकतंत्र का चौथा स्तंभ मीडिया को माना जाता हैं, किन्तु नारी के उत्थान के लिए मीडिया भी तटस्थ भूमिका नहीं निभा सकता। कारण स्वरूप नारी को और प्रताड़ित किया जाता हैं। जब मीडिया वाले स्वयं वेश्यागृहों (कोठे) में वेश्याओं के पास इण्टरव्यू लेने के लिए जाते हैं। वहॉ शबनम बाई, मुमताज, हसीना, पार्वती, सुमन आदि वेश्याएँ अपने देह का व्यापार करती हैं।

नारी होना एक अभिशाप माना गया हैं तथा उसमें भी दलित नारी होना दोहरा अभिशाप माना जाता हैं। उपन्यासकार ने ब्राह्मणवादी या ब्राह्मण समाज की बुरी आदतों या कुकर्मो का भी पर्दा–पाश किया हैं।

ब्राह्मण पूरे समाज में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था चाहे उसके कर्म कुकर्म थे। लेखक लिखता हैं– ''गॉव भर की औरतें शगुन–अपशगुन पूछने जाती, उसके हाथों से ताबीज बंधवाती। पुजारी मौका देख गॉव की औरतों को छेड़े बैठता, औरते, थोड़ा भी सहन करती तो उनके उरोजों को सहलाने लगता। गले में जनेऊ, माथे पर बड़ा टिका, सिर पर बीचों–बीच गांठ देकर खड़ी की गई चुटिया। इन तीनों को रखने का अधिकार दलित समाज को नहीं था। केवल ब्राह्मण को था और ब्राह्मण गॉव बस्ती की सभी औरतों के साथ संभोग का प्रथम अधिकारी था।'' [6]

हमारी संस्कृति में गंगा–जमुना नदियों का हमेशा से विशिष्ट स्थान रहा हैं और यह सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिए लोगों को अब पाप का इतना भी डर नहीं, जब उसका समाधान हैं, तो डर कैसा। इसी पाप–पुण्य को रेखांकित करते हुए लेखक लिखता हैं–

''इधर वेश्याओं के बाजार उधर नदियों के पवित्र घाट। इधर पाप करो, उधर जाकर पुण्य कमाओ।'' [7]

पाप–पुण्य की यह अवधारणा जिसके बल पर फल–फूल की यह अवधारणा जिसके बल पर फल–फूल रही हैं, उसकी जड़ में ब्राहाम्णवाद हैं, जिसके द्वारा सवर्ण जीवी लोग अपने हितों की पूर्ति करते हैं।

उपन्यासकार ने वेश्याओं के जीवन से जुड़ी एक–2 समस्या को उसके मूल कारणों सहित बहुआयामी ढंग से प्रस्तुत की हैं। जैसे कि हर नौकरी या व्यवसाय में 'काम का समय' निर्धारित होता हैं। लेकिन यहॉ आने वालों का कोई समय निश्चित नहीं हैं। यहॉ आने वाला ग्राहक देर सवेर, आधी रात या बड़े सवेरे कभी भी दनदनाता हुआ आता हैं और इन्हें जिस तरह से भी ग्राहक चाहता हैं, उसका बिस्तर बनना पड़ता हैं। इतना ही नहीं एक ग्राहक जाने के बाद उन्हें फिर से अपनी खाल नुचवाने के लिए तैयार रहना पड़ता हैं। मर्दो की हवस का शिकार बनती नारियों की पसलियों व कमर में दर्द, उल्टी के लम्बे और खाली उबके आना, इतना ही नहीं शराब के नशे में आते हुए ग्राहक का वही बिस्तर पर उल्टी कर देना आम बातें हैं। उपन्यासकार ने वेश्या जीवन के इन अनछुए पहलुओं का बड़ा मार्मिक चित्रण किया हैं।

इस उपन्यास की नायिका हैं पार्वती व नायक हैं सुमीत। सुमीत उपन्यास के अन्तरार्ध में हमारे सम्मुख आता हैं। वह एक पत्रकार हैं और एक अखबार में नौकरी के लिए आया था। शहर में अचानक भड़के सांप्रदायिक दंगों के दौरान वह अपनी जान बचाने के लिए अनजाने में शबनमबाई के कोठे पर चला जाता हैं। जहॉ उसकी मुलाकात पार्वती से होती हैं। शबनमबाई के द्वारा उपन्यासकार ने मीडिया, पुलिस, राजनेता, सरकारी–अर्धसरकारी अफसरों की पोल खोल कर रख दी हैं।

समाज में वेश्याओं का शोषण सरकारी ऑफिसरों के द्वारा भी किया जाता हैं–

शबनमबाई बताती हैं–

'' किसी को ट्रांसफर कराना हैं या प्रमोशन तब हमारी याद आती हैं। टेंडर पास कराना हो तो उन्हें हमारी जरूरत पड़ती हैं। सरकारी ऑफिसों में कभी सीधे–सीधे रिश्वत नहीं दी जाती। हमें परोसा जाता हैं, रिश्वत के रूप में हमें बिछाना ही पड़ता हैं। हम नहीं जाए, तो सौदा नहीं पटता। सौदा पटाने के लिए हमारी जरूरत पड़ती हैं। हमारे शरीर पर शतरंज की बाजियॉ खेली जाती हैं और बड़े–बड़े सौदे मंजूर हो जाते हैं। पहले हमारे शरीर पर दस्तखत किए जाते हैं, फिर कागजों पर '' [8]

जब पत्रकार उनसे ये पेशा छोड़ने को कहते हैं तो जवाब आता हैं, जो हर व्यक्ति को सोचने पर मजबूर कर देता हैं–

कौन नहीं बेच रहा अपने आपको घ हम तो केवल अपना जिस्म ही बेचते हैं। लोग तो अपने जमीर को, अपने देश को बेच रहे हैं।

शबनमबाई की ये पंक्तियां निश्चय रूप से भारतीय होते हुए अमनुण्यता दिखाने वाले लोगों पर करारा व्यंग्य करती हैं। वह आगे कहती हैं कि जब इस 'बिकाऊ संस्कृति ने हर चीज को बाजार में तब्दील कर दिया तब शरीर बेचना भी देश बेचने से बड़ा जुर्म नहीं है व पेट भरने के लिए अपने आपको बेचना, अपनी देह को बेचना इतना बड़ा अपराध नहीं हैं, जितना अपनी तिजौरी भरने के लिए देश को बेचना। मोहनदास नैमिशराय ने इस उपन्यास में देवदासी प्रथा का भी चित्रण किया हैं कि किस तरह इन्हें वेश्या बनाया गया।

शबनमबाई कहती हैं –'' यह हैं पार्वती बिना शिव की पार्वती, शिव ने पहले इसे मंदिर में बैठाकर देवदासी बनाया, फिर मंदिर से चकले मे भेज दिया। अब रात में काले चोर के रूप में देवता आते हैं और इस देवी को भोगते हैं।'' (9)

वेश्यावृत्ति के अन्य कारणों में युवावस्था में आने वाले भटकाव, अनाथालयों में होने वाले शारीरिक व मानसिक शोषण, दलालों के चुंगल में किसी लड़कियां, जबरन इस धंधें मे धकेल दी महिलाएँ होती हैं। इन सभी का मोहनदास नैमिशराय ने बखूबी चित्रण किया हैं। सुमीत जब इन वेश्याओं को इतनी करीब से देखता हैं तो उसका मन उनकी मुक्ति के लिए व्यथित हो उठता हैं। लेकिन इसके लिए जरूरी था– वेश्याओं के अन्तर्गत चेतना का विकास यह चेतना पार्वती नामक वेश्या में जागृत होती हैं। धीरे–धीरे सभी वेश्याएँ उनका अनुसरण करने लगती हैं। यहॉ कहानी का ढॉचा आदर्शवादी होने लगता हैं, लक्ष्मी नामक वेश्या से सुमीत द्वारा प्रेम–विवाह कर घर बसाने का प्रस्ताव, एक आम जिंदगी जीने का सपना आदर्शवादी विचार की ही अभिव्यक्ति हैं। सुमीत वेश्याओं के अंदर आत्म–सम्मान की लौं जगाता हैं। पर उसका आधार भावात्मक ही होता हैं। क्या यह भारतीय समाज जो धार्मिक व्याभिचारों से लिप्त, सामाजिक रूप से सड़ा हुआ और पितृसतात्मक सोच को वहन करने वाला हैं में ऐसा कर पाना संभव हैं एक सुमीत एक वेश्या से शादी कर उसका जीवन सुधार सकता हैं, पर क्या यहॉ वैसे सुमीत और हैं।

वेश्याओं की दशा और मुक्ति के लिए भारतीय समाज में व्यापक बदलाव लाना होगा। आज जब विज्ञापन की दुनिया में भी देखते हैं कि औरत के उपयोग में न आने वाली वस्तु भी उसके बगैर नहीं बिकती। उपन्यास में कुछ वेश्याऍ अपना पेशा बदलने को तैयार हो जाती हैं। और इसकी भी उन्हें बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ती हैं पहले रंडी बनने की और अब रंडी न बनने की।

सुमीत पार्वती से शादी कर लेता हैं और वेश्याओं के लिए मुक्ति का मार्ग बनाता हैं। 15 अगस्त के राष्ट्रीय त्यौहार को मनाने के लिए वेश्या अपना धंधा बंद कर देती हैं।

ग्राहक आते हैं और चले जाते हैं क्योंकि '' आज बाजार बंद हैं।'' इस प्रकार लेखक ने जागृति की लौ वेश्याओं के भीतर जगाकर समाज को भी उनके प्रति आत्मपरक व मानवीयता का रवैया अपनाने हेतु प्रेरित किया हैं। अन्ततः लेखक ने 'आज बाजार बंद हैं' उपन्यास के माध्यम से वेश्याओं की सामाजिक, राजनीतिक स्थिति का सजीव चित्रण किया हैं, तथा इनकी मनोस्थितियों का अवलोकन किया हैं और इनके प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण देने का प्रयास किया हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) कौटिल्य अर्थशास्त्र, कौटिल्य, पृष्ठ–15
(2) डॉ0 आशा धावड़े, महिला प्रबोधिनी–43, पृष्ठ–36
(3) शिव नारायण टंडन, स्त्रियों और बच्चियों का व्यापार, पृष्ठ–11
(4) इलियट और मैरिल, नगरीय समाजशास्त्र, पृष्ठ–349
(5) आज बाजार बंद हैं, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ–18–19, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
(6) वही, पृष्ठ–170
(7) वही, पृष्ठ–119
(8) वही, पृष्ठ–130
(9) वही, पृष्ठ–132

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 34-35
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मुजरा परम्परा : एक अध्ययन

अनुपूर्णा श्रीवास्तव
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
1907 / 8, गली नवां वेहड़ा, शक्ति नगर के पीछे, कुबी बेरी, अमृतसर, पंजाब–143001
Mob no- 9517740620
anpurna96@gmail.com

भारतीय संस्कृति व परम्पराओं का इतिहास काल परिवर्तन के साथ – साथ जैसे परम्परा और संस्कृति ने नया रूप लिया उसी प्रकार संगीत की रचनाओं और शैलाओं में भी परिवर्तन हुआ। कला में पारस्पारिक समझ और एकीकरण की प्रवृतियां, धार्मिक विश्वासों और आचार–व्यवहार, स्थापत्य व संस्कृति के क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि ललित कलाओं में खासकर संगीत के क्षेत्र में भी दिखाई देती हैं।"साहित्य , संगीत और मेला समाज और जीवनरूपी वृक्ष के तने से निकली तीन शाखाएँ हैं। तीनों को आधार समान होने के नाते तीनों परस्पर प्रायः संयुक्त है। साहित्य अर्थ–प्रधान है, संगीत ध्वनि–प्रधान है, कला प्रतीक–प्रधान है। 'परम्परा' तीनों की अपनी– अपनी काया में, पट में सूत की तरह बुना हुआ तंतु है।" समय के परिवर्तन व संगीत में नवीन रचनाओ व शैलियों के जन्म ने भारतीय संगीत को एक ओर शैली से सरोपाही किया जिसे मुजरा के नाम से जाना जाता हैद्य भारतीय गायन व नृत्य को सर्वाधिक संरक्षण मुजरे के द्वारा ही प्राप्त हुआ। कदाचित आज जो संगीत समाज घरानों व संस्थागत शिक्षण मुजरे के माध्यम से ही सहेज कर किसी न किसी विधा से यहाँ तक पहुँचाया गया है।

समय के साथ–साथ सामाजिक स्वरूप व परिवेश तथा परम्पराओं में भी परिवर्तन हुआ। अगर हम वैदिक काल में भारतीय संगीत को ईश्वरीय अराधना, भक्ति, पाठ–पूजा, और मोक्ष का साधन देखें तो ज्ञात होता है कि परंपराओं का सजनात्मक पहलू आज की व्यवस्था को व्यवस्थित किए हुए है। मध्यकाल में नृत्य तथा नाटक विषयक अनेको ग्रन्थों की रचना हुई। मुगलो द्वारा भारत पर आक्रमण होने से भारतीय संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति एवं सभ्यता का प्रभाव पड़ा। इस काल में ललित कलाओं, विशेष रूप से नृत्य एवं संगीत कला, ने नया मोड़ लिया तथा मुगलों का शासन उत्तर भारत में स्थापित होने से विभिन्न कलाओं में काफी परिवर्तन हुए। नृत्यकला के संदर्भ में नई दिशा का प्रारम्भ हुआ। पूर्व में जिस नृत्य को देवालयों में देवदासियों द्वारा धार्मिक प्रसंगो एवं पर्वों के अवसर पर प्रदर्शित किया जाता था, उसे सम्मानजनक एवं प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त था, वही नृत्य परिवर्तित स्वरूप में मुगल दरबारों एवं कोठों पर प्रदर्शित होने लगा। अब राजाओं एवं रियासतों के आश्रय होने पर विद्वानों व संगीत प्रेमी शासकों के संरक्षण को प्राप्त करने उपरान्त संगीत को फलने–फूलने का भी अवसर मिला। इसी परिवर्तन के परिणाम से उदगम मुजरा एक नवीन शैली में रूप में सामने आया, जिसने विभिन्न संगीतज्ञों को आजीविका एवं प्रसिद्धि प्राप्त करवाई। मुजरा शब्द की उत्पत्ति व मुजरा नाम कब प्रदान किया गया यह कहना स्पष्ट रूप से संभव नहीं है क्योंकि इसका कोई लिखित प्रमाण नही मिलता परन्तु मुगलकाल में सर्वाधिक सांगीतिक रचनाओं में परिवर्तन देखने को मिला एवं उसमें मुस्लिम प्रभाव भी आए तो संभवतः मुजरा भी इसी काल में कहा होगा। मुगलकालिन हस्तलिखित ग्रंथों या पुस्तकों में मुजरा शब्द का प्रयोग भी प्राप्त हुआ है। ऐसा मानना अनुचित न होगा कि इसकी उपज मंदिरों में देवदासियों के माध्यम से हुई क्योंकि दक्षिण भारत में देवदासियाँ ईश्वरीय अराधना कर मंदिर की सेवा किया करती थी। प्रायः इनके माता – पिता स्वतरू ही मंदिर की सेवा करने हेतु प्रेरित करते थे। यह नर्तकीयां, देवदासियाँ, गायिकाएँ उसी मंदिर के देवता को समर्पित व संबंधित होती थी। देवदासियों द्वारा मुजरे की उत्पत्ति मानने का कारण यह भी है कि मन्दिरों व राजदरबारों से अनात्रित होने

के पश्चात ही ये कोठों पर रहने लगी, जो मुजरे के प्रमुख केंद्र रहे हैं।

जब भारत में मुस्लमानी राज्य स्थापित हुआ तो भारत की विद्या, कला , संस्कृति को नष्ट करने की चेष्टा की गई। ईश्वर उपासना की भारतीय कला मनोरंजन हेतु प्रयोग की जाने लगी। दक्षिण के मन्दिरों में भगवान के समक्ष जो देवदासियाँ नृत्य करती थी, उन्हें बादशाह के हुजूर में पेश किया गया, बड़े–बड़े नृत्याचार्यों को उनकी शिक्षा के लिए महल में नौकरी दी गई। शराब का प्याला लेकर नर्तकी को नाचने की आज्ञा दी जाती थी, इसीलिए पैरों के द्वारा शरीर का संतुलन रखते हुए नृत्य प्रस्तुत करना पड़ता था। शराब फैलने पर कोडों की मार और उसका संतुलन रखने पर मोतियों का हार दे दिया जाता था, इसीलिए नृत्याचार्यों का पूरा ध्यान पैरों की विविध चालों पर केंद्रित हो गया द्य सम्पूर्ण अंगों के संचालन वाला नृत्य केवल पैरों का तमाशा मात्र रह गया। नृत्य से पूर्व भगवान के प्रति की जाने वाली स्तुति ने सलामी का रूप ले लिया स नृत्य व भांडों के तमाशे में कोई अंतर नही समझा जाता था। इस संबंध में 17वीं शताब्दी के अनेक चित्र प्रमाण है जिनमें नटों के तमाशे और कथक नृत्य दोनों का एक साथ आनन्द प्राप्त करते बादशाह व राजदरबारियों को दिखाया है।

अतः जब देवदासियाँ राजदरबारों में गायन व नृत्य करने लगी तो यही देवदासियों के रूप से निकलकर राजगायिका या तवायफ के रूप में सामने आई। जब इनका राजाश्रय समाप्त हुआ तो कोठों पर चली गयी और समाज के पैसे वाले लोगों का मनोरंजन करने के साथ विभिन्न उत्सवों, पर्वों पर आम जन हेतु भी प्रस्तुतियां करती। मुजरा स्त्रियों द्वारा ही किया जाने वाला शृंगारपरक नृत्य है, जो शास्त्रीय संगीत के समान ही एक विधा है। इसमें अर्धशास्त्रीय संगीत का बहुधा प्रयोग होता है, जैसे – ठुमरी ,गजल, टप्पा, दादरा, कजरी, चौती, माण्ड आदि। यह स्त्रियां स्वयं ही गायिका, नर्त्तकी, कवियित्री एवम् वादिका भी होती थीं। इनको इन सभी विद्याओं में परांगत करने वाले गुरू स्वयं विषयक विद्वान होते थे। अपने गुरुओं को अपने घर में ही रखकर उनका सेवा भाव करती तथा उनका खर्च भी इन्हीं द्वारा उठाया जाता था। वे गायिकाओं एवं नृत्यांगणाओं को व्यवहारिक शिक्षा भी देते थे जैसे– सलीके से उठना–बैठना, तहजीब के साथ भोजन ग्रहण करना आदि। अनेक गायिकाओ का भाषा ज्ञान बहुत अच्छा था। वे स्वयं फारसी एवं उर्दू भाषा की शायरा होती तथा महफिल इन भाषाओं की गजलें गाकर समां बांध लेती। मुजरा प्रस्तुति के समय कभी स्वयं गाकर नृत्य करती तो कभी केवल नृत्य की ही प्रस्तुति देती थीं। इनकी गायन रचनाएँ समयानुसार एवम् विभिन्न अवसरों या पर्वों अनुसार होती थीं। मुजरे के साथ संगति के लिए तानपुरा, तबला, सारंगी का प्रयोग किया जाता था। तत्पश्चात हारमोनियम का चलन बढ़ने से इसे भी संगति हेतु प्रयोग किया जाने लगा। अतएव संगत वाद्यों का प्रयोग व चयन समयानुसार एवं कलाकार की इच्छा अनुसार बदलता रहा, परन्तु ताल वाद्य के रूप में तबला वाद्य ही रहा। अपना सम्पूर्ण जीवन अपनी कला को समर्पित करती थीं। कुछ विख्यात एवं प्रसिद्ध तवाइयों के नाम रू जोहरा बाई (आगरे वाली), गौहर जान, बड़ी मोती बाई, जद्दन बाई, दलिया बाई, मलका जान, मलका बेगम, असगरी बाई, ठेला बाई , जानकी बाई, मुराद बानो, राजेश्वरी बाई, रोशन आरा बैगन सिद्धेश्वरी देवी है स इन परम्परागत कलाकारों ने अपनी पम्परा को चलचित्रों, विभिन्न रिकॉर्डिंग्स में गा–बजाकर सुरक्षित व नई पीढ़ी को आशीर्वाद के रूप में प्रदान किया। आज संगीत की इस श्रृंखला को अकादमियों, मंच प्रदर्शन, संस्थागत संस्थानों में प्रदर्शित किया जाता है और संगीत का संरक्षण व उसका उत्कृष्ट पहलू सिखने सिखाने का आधार बन गया जिसमें शिक्षकों को पुरातनता के साथ जुड़ने का व परम्परागत शैलियों को सिखाने का अवसर प्रदान हुआ। 'वर्तमान समय में संगीत महाविद्यालय, संगीत सम्मेलन, आकाशवाणी एवं संगीत नाटक आकादमी– ये चारों की भारतीय संगीत के शास्त्रीय सिद्धांत और वादन–गायन के प्रायोगिक रूपों के उत्थान के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उससे इस देश के संगीत के उज्जवल भविष्य की आशा होती है।'

संदर्भ

पांडे, आशा (2002), मध्यकालिन संगीत शैलियों का उदगम और विकास, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

गर्ग, लक्ष्मी नारायण (1978), निबंध संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ० प्र०।

देसाई, रमणलाल वसंतलाल (1989), अप्सरा, प्रचारक ग्रंथवाली परियोजना, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी।

गोवर्धन, शांति (2002), संगीत शास्त्र दर्पण, रत्नाकर पाठक, इलाहाबाद।

मित्तल, अंजलि, भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं संगीत, कनिष्क पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली।

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 36-38
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'गणिका' का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. डी. उमादेवी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गांधी कांलेज आफ आर्ट्स एण्ड साइन्स, पुदुच्चेरी–9
मोबाइल नं. 9486267358
email id: danireddy99@gmail.com

वैश्विक स्तर पर वेश्यावृत्ति आज एक व्यवसाय के रूप में प्रचलित है। लेकिन भारत में इसका इतिहास बहुत पुराना और रोचक भी है। दुनिया में महान संस्कृतियाँ कहलानेवाले हिन्दू, बौद्ध, रोमन और ग्रीक सभ्यता में सेक्स को लेकर भिन्न भिन्न मान्यताएँ थी। लेकिन यह विषय उतना वर्जित नहीं था, जितना कि मध्यकाल में माना जाने लगा। हालांकि उस काल के लोग इसे आम सामाजिक जीवन से दूर रखकर वैधानिक दर्जा देकर इसे समाज में फैलने से रोकने की युक्ति भी जरूर मानते थे।

प्राचीन काल में वेश्या को उतना बुरा नहीं माना जाता था जितना कि आज। उक्त काल में ये महिलाएँ ऐसे लोगों की कामेच्छा दूर करती थी जो किसी सैन्य अभियान पर है या जिसने धर्म और संस्कृति आदि के महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए गृहस्थ जीवन त्याग दिया है। इसके अलावा तंत्र मार्ग हेतु भी इस तरह की महिलाएँ बहुत सहयोग करती थी। इसके अलावा ऐसी महिलाएँ धनवान और राज परिवार के लोगों को संतुष्ट करने और उनके लिए जासूसी का कार्य करने का काम भी करती थी।

प्राचीन काल में वेश्यावृत्ति में समानता होने पर भी उनके नाम अलग–अलग थे, कार्य अलग–अलग थे, सम्मान में अंतर था। नगर वधू, गणिका, रूपाजीवा, देवदासी आदि वेश्याओं के नाम थे। इनमें नगर वधू श्रेष्ठ मानी जाती थी। कहा जाता हैं कि उस जमाने में शहर की सभी खूबसूरत लडकियों को एक प्रतियोगिता में भाग लेने को कहा जाता था, जो लडकी इस प्रतियोगिता को जीतती थी उसे नगरवधू बना दिया जाता था। इसके बाद उसे फूलों से भरा बहुत बडा बगीचा और सभी तरह की सुविधाओं से युक्त महल मिलता था। इस नगरवधू के पास उसकी कई दासियाँ, कर्मचारी और सुरक्षाकर्मी होते थे। दूसरी रूपाजीवा के अंतर्गत नटी वेश्याएँ थी, जो गीत नृत्य से अपना जीवन यापन करती थी। तीसरी गणिकाओं को उच्चवर्गीय शिक्षित तथा गुणी वेश्याओं के तौर पर समझा जाता था। लेकिन 'घर–बाहर' के दायरे में वे बाहर की प्रतिनिधि थीं, जो स्त्रियों के लिए सम्मानजनक नहीं माना जाता था। चौथी देवदासियाँ कहलानेवाली महिलाएँ किसी धर्म के कार्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर देती थी।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में गणिका

ऋग्वेद भारत का प्राचीनतम साहित्य है। इसमें हमको गणिका के कई पर्यायवाची शब्द प्राप्त होते हैं, यथाकृहस्रा, अग्रू तथा साधारणी, वैसे ही अथर्ववेद में पुश्चली, शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में साधारणी और सामान्या, पाली के विनयपिटक में मुहुत्तिया अर्थात् जो क्षण भर की संगिनी हो, जातक में रूपदासी, मामिनी, नगरशोभिनी और जनपद कल्याणी आदि शब्द प्राप्त होते हैं। कालांतर में गणिका के प्रतिशब्दों की संख्या बढती गयी। महाकाव्य, पुराण और साहित्य में अनेक नामों का उल्लेख प्राप्त होता है–कुलटा, स्वैरिणी, वारांगना, वार–स्त्री, वार–वनिता, स्वतंत्रता और स्वाधीन यौवना। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी गणिका और रूपजीवा के नाम मिलते है।

गणिका नाम के इन सभी पर्यायवाची शब्दों की उत्पत्ति एक समय में तो नहीं हुआ होगा और न ही एक स्थान

पर। धीरे–धीरे विभिन्न समयों तथा विभिन्न प्रदेशों में इन नामों की रचना हुई। इससे पता चलता है कि भारत वर्ष में गणिकावृत्ती और गणिकाएँ कितनी प्राचीन है। ध्यान देने योग्य है कि ऋग्वेद के जार या जारिणी, उपपति या उपपत्नी या फिर अवेद्य प्रणयी या प्रणयिनी के बीच सांकृत्यायन द्वारा किये गये दीर्घ निकाय के हिन्दी अनुवाद (वारणासी 1936 पृ.13,15) मज्झिमनिकाय (वही 1994, पृ.20–25), संयुक्त निकाय, अर्थशास्त्र, कामसूत्र एवं अन्यान्य ग्रन्थों से जो तथ्य प्राप्त होते है, उनसे स्पष्ट है कि गणिका का स्थान सर्वोपरि था। रूप, यौवन, शिक्षा–दीक्षा–सबमें वहीं श्रेष्ठ थी। (कामसूत्र–13:20)

आगम साहित्य में भी गणिका के बारे में वर्णन मिलता है। वहाँ पर बताया गया हैं कि साधारण अर्थ में गणिका और वेश्या दोनों संज्ञाएँ परस्पर पर्याय है। संस्कृत और प्राकृत के सभी कोशों में गणिका को वेश्या का ही पर्यायवाची शब्द माना गया है। किन्तु पाली और अंग्रेजी शब्द कोशों में गणिका एवं वेश्या शब्द का भिन्न भिन्न अर्थ मिलता है। गणिका शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि गणमान्य व्यक्तियों द्वारा भोगी जाने वाली नारी गणिका है तथा सामान्य वर्ग द्वारा भोगी जानेवाली नारी वेश्या कहलाती है। बौद्ध और जन साहित्य में भी गणिका को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। गणिका विशेष गुणों से समन्वित होती थी। जैन ग्रन्थ बृहत्कल्प (पुण्यविजय जी भावनगर विरचित, सन् 1933–38) के अनुसार भी गणीकाओं के लिए लिखना, गणित, नाना प्रकार के शिल्प–संगीत, वाद्ययंत्र (वीणा, पटह, वंशी आदि) द्यूतक्रीडा, अक्षक्रीडा, काव्यरचना (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश), गंधयुक्ति (इत्र तैयार करना) अलंकार बनाना, श्रृंगार, अलंकरण, सुलक्षण और कुलक्षण पुरुष और नारी का विचार, अश्वविद्या, हस्तिविद्या, रंधनविद्या, रत्नपरीक्षा, विषनिर्णय और उसका प्रतिविधान, स्थापत्य, शिविर निर्माण, सेना–सन्निवेश, युद्धविद्या, धनुर्विद्या, निमित्तनिदान आदि कुल बहत्तर विद्याओं की शिक्षा आवश्यक होती थी। मनुसंहिता (2:67) में भी इस संबन्ध में कुछ निर्देश दिये गये हैं। उदाहरण के लिए देवदत्ता गणिका के संदर्भ में कहा गया है कि "वह धन संपन्न थी तथा कोई भी उसको तिरस्कृत करने का साहस नहीं कर सकता था। वह चौसठ कलाओं की ज्ञाता थी, चौसठ गुणों से परिपूर्ण थी। कामशास्त्र के पच्चीस विशेषणों की जानकार तथा इक्कीस प्रकार के रति गुणों से समन्वित थी। साथ कामशास्त्र में प्रवीण बत्तीस उपचारों में कुशल थी। अट्ठारह देशों की भाषा की विशारदा थी। वह स्वयं अत्यंत रूपवती थी। संगीत, गीत और नृत्य आदि में निपुण थी। एक हजार रुपये शुल्क स्वरूप लेती थी। राजा ने इसे छत्र, चामर आदि प्रदान किये थे। अत्यंत तामझाम के साथ वह चलती थी, वह एक हजार गणिकाओं की अधिपति थी।

"गणिका वेश्या और वारांगना की अपेक्षा श्रेष्ठ समझी जाती थी। वस्तुतरू कलावती (कला–रूप–गुणाविन्ता) स्त्री को गणिका कहते थे वह प्राचीन काल में राज दरबार में नृत्य गायन करती थीं और उसे इस कार्य के लिये हजार पण वेतन प्राप्त होता था। वह राजा के सिंहासनासीन पर रहने अथवा पालकी में बैठने के समय उस पर पंखा झलती थी। इस प्रकार से गणिका राजसेविका थी।" (मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से) उसे राज दरबार में सम्मान प्राप्त था, ऐसा नाट्यशास्त्र के प्रचुर उल्लेखों से प्रकट होता है। भरत ने उसके गुणों का इस प्रकार उल्लेख किया है–

प्रियवादी प्रियकथा स्फुटा दक्षा जिनश्रमा।
एभिर्गुर्णस्तु संयुक्ता गणिका परिकीर्तिता।।

गणिकाओं की उत्पत्ति का कारण एक जैन परंपरा मिलती है। यह कहा जाता है कि एक बार सामंत शासकों ने सम्प्रभु शासक भरत को कुछ लडकियों को उपहार में दिया। उनको महल में प्रवेश करते देख रानी को संदेह हो गया और उसने आत्महत्या करने की धमकी दी। इसीलिए राजा ने उनके प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया और उन्हें विभिन्न राजाओं के संगठनों (गणों) में बाँट दिया।

गणिकाओं की आय का प्रमुख साधन उनका शुल्क था। वे अपने वाले व्यक्ति से निर्धारित शुल्क लिया करती थी। जैनागमों में प्राप्त गणिकाओं के अन्य विशेषणों के साथ एक विशेष सहस्सलंभा अर्थात् हजार पण मिलता है। "देवदत्ताएँ गणिकाएँ, विउल जीवियाहिरहं पीइदाणं दलर्यात" अर्थात् देवदत्त गणिका ने अपनी एक ही दिन की सेवा के बदले में सार्थवाह पुत्रों से जीविकास के योग्य प्रभूत धनराशि प्राप्त की थी। यद्यपि गणिका का शुल्क प्रति रात्रि की हिसाब से अवश्य निर्धारित था तथापि यह जरुरी नहीं था कि गणिका के साथ दृष्टांत उपलब्ध होते हैं। इसका प्रमुख कारण यह था कि गणिका के साथ सम्पर्क स्थापित करना घृणात्मक नहीं माना जाता था। अतः उस समय गणिका के साथ चोरी–छिपे सम्पार्क स्थापित करने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती थी।

गणिका सदैव वैभव संपन्न रहती थी। आगमों में ऐसी एक भी गणिका का उल्लेख नहीं मिलता जो आर्थिक दृष्टि से दुरूखी रही हो। यद्यपि गणिका के रथों को उत्तम यान कि संज्ञा की जाती थी तथापि प्राप्त साक्ष्यों से यह ज्ञात नहीं होता कि इस प्रकार के यान का क्या रूप था तथा उसमें किस प्रकार की विशेषता थी। जैनागमों में इधर–उधर

जाने के लिए कर्णीरथ के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। यद्यपि इस यान को रथ अवश्य कहा जाता था किन्तु वस्तुतरू यह रथ नहीं होता था। इसे मनुष्य अपने कन्धे पर रखकर ले जाते थे। यह वस्त्र से आच्छादित रहता था तथा उसका उपयोग प्रमुख राजकीय स्त्रीयों को भेजने में होता था। अर्थात् इस पर राजा की रानी या विशिष्ट स्त्री ही सवार होती थी। आजकल की भाषा में इसे पालकी या डोली या इससे मिलता–जुलता यान विशेष कहते हैं। गणिका के कर्णीरथ की यह विशेषता होती थी कि उस पर ध्वजा फहराया करती थी। ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि राजा की ओर से छत्र, चामर भी दिये जाने लगे थे। ये छत्र चामर गणिका की वैभव संपन्नता के सर्वश्रेष्ठ प्रमाण होते थे।

समाज में गणिका की स्थिति सम्मानजनक थी। राजा की समृद्धि की व्याख्या के संदर्भ में धन, बल, शौर्य, पराक्रम आदि के साथ गणिका का भी उल्लेख किया जाता है। किसी भव्य समारोह के अवसर पर गणिकाएँ नृत्य आदि का प्रदर्शन करती थी। ऐसे अवसरों पर संगीत के प्रति लगाव रखनेवाले रसिक प्रवृत्ति के लोग गणिकाओं के निवास स्थान पर भी जाते थे। गणिकाओं के साथ रथ पर आसीन होकर नगर भ्रमण के लिए जाना भी अपने लिए सम्मानजनक मानते थे। उदाहरण के लिए जिनदत्त तथा सागरदत्त दोनों ही चम्पा नगरी के मध्य से देवदत्ता गणिका के साथ रथ पर बैठकर मुख्य पथ से निकलते थे। बौद्ध साहित्य में इस प्रकार प्रसिद्ध और सम्मानित वेश्याओं के अनेक उदाहरण मिलते हैं जैसे सालवती, सुलसा आदि।

तत्कालीन साहित्य से विदित होता है कि गणिका के संतान को हीन दृष्टि से नही देखा जाता था तथा उसे सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त थी। उदाहरण के लिए जीवक गणिका सालवती का बेटा था, जो उस समय प्रसिद्ध राजवैद्य था। गणिकाएँ और वेश्याएँ उस समय समाज में फैलनेवाले अनाचारों को बचाती थी। पहले राजा का ही गणिका पर अधिकार होता था। राजा जिस गणिका के साथ गमन करता था, उसके साथ किसी अन्य पुरुष के संसर्ग करने पर वह दण्ड का भागी होता था। राजा के उपरांत अमात्य क अधिकार होता था।

बौद्ध साहित्य से यह जानकारी मिलती हैं कि गणिकाएँ बौद्ध भिक्षुणी संघ में भी प्रवेश कर सकती है। तथापि जैन साहित्य में इस प्रकार का विवरण नहीं मिलता है। कुछ भी हो बौद्ध तथा जैन साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि गणिकाएँ तद्युगीन समाज का अभिन्न अंग थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से
2. धम्मपद टीका, पाली टेक्स्ट सोसाइअटी, लन्दन 1906–14
3. मध्यकालीय भारत की सामाजिक अवस्था, हिन्दुस्थानी एकेडेमी व्याख्यान माला–।
4. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति– रायबहादूर महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीरानंद ओझा
5. भारत में देवी–देवद्त्त पटनायक

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 39-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जयशंकर प्रसाद का राष्ट्रीय चिन्तन एवं स्त्री दृष्टि

डॉ0 शोभारानी श्रीवास्तव
एसोसिऐट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
बद्री विशाल पी॰जी॰कॉलेज फर्रूखाबाद, सी॰एस॰जे॰एम॰ वि॰वि॰, कानपुर
मीरा
शोध छात्रा (आर0जे0एन0एफ0 जे0आर0एफ0) हिन्दी,
बद्री विशाल पी॰जी॰कॉलेज फर्रूखाबाद, सी॰एस॰जे॰एम॰ वि॰वि॰, कानपुर,
Mob : 8859155818, Email: akhilesh.gautam136@gmail.com

'प्रसाद जी' के सम्पूर्ण साहित्य में राष्ट्रभक्ति एवं स्त्री के प्रति सम्मान झलकता है। उनके साहित्यकाल में स्त्रियों की दशा सोचनीय थी।

बहुविवाह, बालविवाह एवं अनमेल विवाह जैसी कुरीतियों ने नारी जीवन के सामाजिक पक्ष को पूर्णतः ध्वस्त कर दिया था। इन परिस्थितियों में प्रसाद के मन में स्त्रियों के प्रति सम्मान एवं श्रृद्धा होना स्वाभाविक था जिस प्रकार छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा एवं सुमित्रानन्दन पन्त ने नारी को पूज्या, प्रेरणाप्रद, शक्ति एवं कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत किया, ठीक उसी प्रकार प्रसाद ने भी स्त्री में पवित्र, स्नेहमयी, सहृदया, सहचरी स्वरूप का दर्शन किया जो उनके साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। 'ऑसू' में 'प्रसाद' की उदार दृष्टि स्पष्ट झलकती है।

'ऑसू' में स्त्री वासना की प्रतीक नहीं है अपितु वह पुरुष के अंधकारमय जीवन की पथ प्रदर्शक है। उसका सौन्दर्य पावन आलोक से मण्डित है।

चंचल स्नान कर आवे, चन्द्रिका पर्व में जैसी।
उस पावन तन की शोभा, आलोक मधुरी थी ऐसी।।

'तितली' उपन्यास में प्रसाद की स्त्रीवादी दृष्टि उभरकर सामने आती है। इस उपन्यास में मूर्तिमान नारीत्व, आदर्श भारतीय पत्नीत्व जागृत हुआ है। तितली प्रसाद की वह नारी पात्र है जिसमें स्वाभिमान का तीव्र भाव है। उसके पति मधुबन को सजा हो जाने पर एवं उसके पूर्वजों का शेरकोट वेदखल हो जाने पर तथा बनजरिया पर लगान लग जाने पर, इतनी दुरावस्था में भी वह किसी से सहायता की भीख नहीं मांगती बल्कि वह खुद मेहनत करके लडकियों की पाठशाला चलाती है और अपने पुत्र को पालती है। अपनी दुःखद स्थिति में अपने ही अविलम्ब पर वह स्वाभिमानपूर्वक जीना चाहती है। वह अपने अस्तित्व को बनाये रखने में समर्थ होती है। वह शैला से कहती है– ''मुझे दूसरों के महत्त्व–प्रदर्शन के सामने अपनी लघुता नहीं दिखानी चाहिए। मैं भाग्य के विधान से पीसी जा रही हूँ। फिर उसमें तुमको, तुम्हारे सुख से घसीट कर, क्यों अपने दुःख का दृश्य देखने के लिए बाध्य करूँ? मुझे अपनी शक्तियों पर अवलम्ब करके भयानक संसार से लड़ना अच्छा लगा। जितनी सुविधा उसने दी है, उसी की सीमा में मैं लडूँगी, अपने अस्तित्व के लिए''। अपनी विषम परिस्थितियों में उसका स्वाभिमान और क्षोभ और भी शक्तिशाली हो जाता है वह कहती है– ''नहीं, मुझे अपना दुख–सुख अकेली भोग लेने दो। मैं द्वार–द्वार पर सहायता के लिए और दरिद्रता का सुख लेने दो।'' उसमें स्वाभिमान इतना है कि वह दूसरों के उपकार को नहीं लेना चाहती, वह कहती है– ''मुझे पहले ही जब लोगों ने यह समाचार नहीं मिलने दिया कि उनका मुकद्दमा चल रहा है, तो अब मैं दूसरों के उपकार का बोझ क्यों लूँ''? अंततः वह अपने पुरुषोचित्त साहस से चौदह वर्षों तक बिना किसी के सामने झुके अपने बल पर अपनी सारी गृहस्थी बनाने में सफल होती है। उसके गरिमामयी व्यक्तित्व को देखकर इन्द्रदेव भी सोचते हैं– ''मैं तो समझता हूँ कि उसके जन्म

लेने का उद्देश्य सफल हो गया है। तितली वास्तव में महीयसी है, गरिमामयी है।

प्रसाद का मानना है कि स्त्री पुरुष के पतझड़ सदृश सूखे जीवन में हरियाली बनकर आती है।

पतझड़ था झाड़ खडे थे, सूखी सी फुलवारी में।
नवकिसलय का कुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी में।।

उनकी नारी पुरुष के जीवन में कल्याणकारी बनकर आती है–

तू सत्य रहे चिर सुन्दर
मेरे इस मिथ्या जग के।
थे केवल जीवन संगी
कल्याण कलित इस मग के।।
उनकी स्त्री आत्म समर्पण करती है।
समर्पण लो सेवा का सार
सजल संस्तति का यह पतवार
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार।।

और पुरुष के मुँह से अनायास ही निकल पडता है–

हे सर्वमंगले! तुम महती
सबका दुःख अपने पर सहती।
कल्याणमयी वाणी कहती
तुम क्षमा निलय में हो रहती।।

प्रसाद के अनुसार नारी में समर्पण का भाव निहित होता है जबकि पुरुष में अधिकारिक भोग की कामना। नारी का जीवन त्यागमय है, पुरुष का जीवन स्वार्थपूर्ण। यही त्याग एवं समर्पण का भाव प्रसाद ने श्रद्धा में दर्शाया है। वे निःस्वार्थ त्याग को नारी का व्यक्तित्व मानते हैं। श्रद्धा अपने जीवनोत्सर्ग के बदले मनु से प्रतिदान में कोई कामना नहीं करती।

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग हलकता है।
मैं दे दूँ और न फिर लूँ कुछ,
इतना ही सरल झलकता है।

माँ बनने की सूचना श्रद्धा से पाकर मनु उसका परित्याग करता है, जिस मनु पर श्रद्धा अपना सर्वस्व समर्पित करती है, वही मनु अपने प्रेम का विभाजन होते देख, उसको छोड़कर चला जाता है। पुरुष अपने स्वार्थ से एक कदम पीछे हटना नहीं चाहता जबकि श्रद्धा सदैव उसकी मंगल–कामना में लीन रहती है।

उपन्यास 'इरावती' की नारी पात्र इरावती एक अज्ञातकुल शीला बालिका है जिससे महादण्ड नायक पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र प्रेम करता है। परन्तु गुरूजनों के विरोध के कारण एक बार अग्निमित्र उसे छोड़कर चला जाता है तब से इरावती, महाकाल मन्दिर की देवदासी का जीवन व्यतीत करती है। कई बार वह कामुक बृहस्पति मित्र की कुदृष्टि का शिकार बनती है। वह अपनी जीवनव्यापी कष्टों को अपने हृदय पर दबाकर रखना चाहती है तथा उसे किसी के सम्मुख प्रकट नहीं करना चाहती और न ही किसी की सहानुभूति का पात्र बनना चाहती है। अग्निमित्र से कहे इन शब्दों में उसका स्वाभिमान व्यक्त होता है– ''स्त्री के लिए, जब देखा कि स्वावलम्बन का उपाय कला के अतिरिक्त दूसरा नहीं, तब उसी का आश्रय लेकर जी रही हूँ। मुझे अपने में जीने दो।

स्कन्दगुप्त नाटक में एक ओर तो अनन्तदेवी तथा विजया जैसे कुटिल स्त्री पात्र हैं वहीं दूसरी ओर सर्वगुण सम्पन्न स्त्री पात्र भी हैं। देवसेना, कमला, जयमाला एवं देवकी आदि का चरित्र करुणा, दया, क्षमा, त्याग, सेवा आदि गुणों से परिपूर्ण है। देवसेना राष्ट्र कल्याण के लिए विषम परिस्थितियों में भी उपस्थित होती है। जयमाला भी दुर्गरक्षा का भार उसके साथ स्वीकार करती है। वह अपने पति बंधु वर्मा को भी शत्रुओं से लड़ने को प्रेरित करती है।

देवसेना अपने व्यक्तिगत प्रेम को देश हित पर उत्सर्ग कर देती है। देवकी अपने हत्यारों को क्षमा कर देती है। उसकी क्षमामयी प्रतिक्रिया के समक्ष अनन्तदेवी का हृदय भी परिवर्तित हो जाता है। कमला अपने पुत्र को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है तो रामा अपने पति शर्वनाग को उचित पथ पर चलने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार

स्कन्दगुप्त के स्त्री पात्र विश्व–कल्याण की भावना से ओत–प्रोत हैं। प्रसाद ने स्त्रियों के रूप को प्रकट करते हुए लिखा है, ''कठोरता का उदाहरण है पुरुष एवं कोमलता का विश्लेषण है स्त्री, पुरुष क्रूर है और स्त्री करुणा।''

''ममता'' की कहानी में ममता एक ब्राह्मण–विधवा है उसका वृद्ध पिता पुत्री के स्नेह में विहवल है। पिता स्वर्ण में उसके मन को उलझाकर उसकी वेदना को धीरे–धीरे विस्मृत करना चाहता है, इसलिए वह शेरशाह से उत्कोच स्वीकार कर लेता है, किन्तु स्वाभिमानिनी ममता को वह 'अर्थ' नहीं 'अनर्थ' प्रतीत होता है। वह उस धन को भविष्य के लिए एवं विपत्ति के लिए भी नहीं संचय करना चाहती। वह कहती है– ''क्या भीख न मिलेगी ? क्या कोई हिन्दू भूपृष्ठ पर न बचा रह जाएगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके।'' यह उसके त्याग एवं सात्विकता का परिचय है।

प्रसाद के स्त्रीपात्रों में गम्भीरता, भाव–प्रवणता, साहस आदि भाव उपस्थित हैं। इसके अतिरिक्त देश, समाज एवं परिवार के प्रति कर्तव्य बोध भी हैं। ये स्त्रियॉ नेतृत्व की क्षमता भी रखती हैं। वे राजनीति में पूर्णतः सक्रिय दिखायी देती हैं। ये स्त्रियॉ उदात्त आदर्शों को स्थापित करती हैं। प्रसाद के स्त्री पात्र पुरुष की प्रेरक शक्ति भी हैं। उन्होंने स्त्री को ही वह आलोक माना है जो पुरुष के शुष्क, संतप्त एवं व्यथित जीवन में हरियाली बनकर आशा का संचार करती हैं।

प्रसाद की स्त्रियॉ जिस बुलन्द आवाज एवं हौंसले के साथ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती हैं उतनी अन्य छायावादी कवियों की नारी पात्र ऐसा नहीं कर पाती। प्रसाद की स्त्री पात्र पुरुषों के बराबर अधिकारों की मॉग करती हैं तथा अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष संघर्ष करती हैं। वे समस्त बन्धनों को तोड़कर समाज को चुनौती भी देती हैं।

'सालवती' कहानी की सालवती अत्यन्त दरिद्र है परन्तु दरिद्रता उसके स्वाभिमानी मन को मिटा नहीं सकती। जब वैशाली का उपराजा अभय कुमार उसे उपहार स्वरूप अपने कंठ की मुक्ता की एकावली देता है तो वह उसके दान को ग्रहण करने के स्थान पर अस्वीकार करती है।

प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व प्रसाद ने 'पुरस्कार' कहानी की मधूलिका में तथा 'आकाशदीप कहानी' की चम्पा में दिखाया है। मधूलिका के मानसिक द्वन्द्व को प्रेम नामक एक ही मूल भाव के दो रूपों के बीच उन्होंने दिखाया है। वे दो रूप हैं– अरुण से व्यक्तिगत प्रेम और पितृ–पितामहों की भूमि से प्रेम। अंततः प्रबल व्यक्तिगत प्रेम पर स्वदेश प्रेम की विजय होती है और अन्त में मधूलिका अपने प्रेमी के प्रति नारी सुलभ उत्तरदायित्व का भी निर्वाह करती है।

'आकाशदीप' की चम्पा भी मानसिक द्वन्द्व को झेलती है। वह कभी जलदस्यु बुद्धगुप्त से प्रेम करती है तो कभी उसे अपने पिता का हत्यारा समझकर घृणा भी करती है। अंततः वह बुद्धगुप्त को स्वदेश लौटने की प्रेरणा देती है और स्वयं द्वीप के भोले–भाले प्राणियों की सेवा करने का संकल्प लेती है एवं मातृ–पितृ भक्ति की याद में उस द्वीप–स्तम्भ में आलोक जलाती है।

प्रसाद के साहित्य में श्रद्धा, मल्लिका, तितली, देवसेना, देवकी, वासवी आदि ऐसे स्त्री पात्र भी हैं जिनकी करुणा, दया, ममता, सेवा, त्याग, कर्तव्यपरायणता एवं बलिदान की शक्ति के समक्ष पुरुष भी नतमस्तक होते हैं। प्रसाद स्त्रियों से ऐसे ही कोमल स्वभाव की आकांक्षा रखते हैं जिसका समर्थन करते हुए वे कहते हैं कि, ''स्त्रियों के संगठन में उनके शारीरिक एवं प्राकृतिक विकास में ही एक परिवर्तन है जो बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं किन्तु अपने हृदय पर, वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया है।''

यदि पुरुष स्त्रियों के कोमल गुण यथा करुणा, ममता, दया आदि का अनुचित लाभ उठाता है तो उससे हरसंभव विद्रोह होने की संभावना अवश्य बनती है। स्त्रियॉ करुणा, कोमलता, सहृदयता, सहिष्णुता आदि सद्वृत्तियों के कारण ही समस्त अधिकारों की अधिकारिणी हैं।

प्रसाद के नाटकों में नारी–पात्र जहॉ एक ओर भावुक, त्यागशील, कर्तव्यपरायण, सेवा–परायण, कोमल, उदार इत्यादि हैं वहीं दूसरी ओर उनमें आत्मसम्मान का भाव प्रबल है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' की सरमा एक स्वाभिमानी स्त्री है। मनसा द्वारा किये जातिगत अपमान को वह सह नहीं पाती। इसलिए नागकुल के अपमानपूर्ण राजसिंहासन को वह ठुकरा देती है परन्तु इतने पर भी वह नागों का अनिष्ट नहीं चाहती, यह उसकी उदारता का ही परिचय है।

'राज्यश्री' नाटक की राज्यश्री भी स्वभाव से क्षमाशीला, उदार एवं कोमल है परन्तु उसे अपने कुल की मर्यादा का पूरा–पूरा ध्यान है। इसलिए वह तलवार लेकर देवगुप्त पर निर्भयता से चलती है। उसे अपने राज्य का छीना जाना अपमानजनक लगता है।

'विशाख' की इरावती निर्धन सुश्रवा नाग की कन्या है। उसके सामने अनेक बाधाऍ आती हैं, परन्तु उसे निर्भीकता एवं दृढ़ता से पार करती है।

उसकी दरिद्रता उसके आत्म सम्मान को नष्ट नहीं करती। राजा नरदेव द्वारा दिये गये महारानी बनने का प्रलोभन भी उसे मार्ग से विचलित नहीं करता बल्कि वह राजा को मुँह तोड जबाव देती है कि झोपडी में ही राममन्दिर से अधिक सुख है। नरदेव की रानी भी चन्द्रलेखा पर हो रहे अन्याय के विरूद्व आवाज उठाती है और राजा को भयंकर परिणाम की चेतावनी भी देती है।

प्रसाद स्त्रियों से कोमल स्वभाव की ही अपेक्षा रखते हैं। साथ ही साथ आत्मसम्मान रक्षा के लिए उनसे हर संभव विद्रोह की भी कामना करते हैं। वस्तुतः प्रसाद के स्त्री पात्रो में गम्भीरता एवं साहस के साथ–साथ देश समाज एवं परिवार के प्रति दायित्व का बोध भी है। इन स्त्रियों में नेतृत्व क्षमता है और राजनीति में सक्रियता थी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रसाद की स्त्री पात्र ओजस्वी, शक्तिशाली, प्रतिभा सम्पन्न, साहसी, संघर्षशील, नेतृत्वकारिणी, राजनीति में सक्रिय होने वाली, रणभूमि में युद्ध के लिए तत्पर, अन्याय एवं अत्याचारों का विद्रोह करने वाली हैं। उसका हृदय विश्व कल्याण कामना, दुःख संतापों से द्रवित व करुणा से ओत–प्रोत है।

शोध सन्दर्भ

1. जयशंकर प्रसाद, इरावती, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–7 संस्करण 1993, पृष्ठ 16
2. जयशंकर प्रसाद–कामायनी, राजपाल एण्ड संस दिल्ली–2000 पृ0 21
3. प्रसाद के समग्र नाटक, लोक भारती प्रकाशन, प्रयाग 2004 पृ0 273
4. प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–प्रथम संस्करण 2004 पृ0 272
5. प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–प्रथम संस्करण 2004 पृ0 119
6. जयशंकर प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–7, संस्करण 2004 पृष्ठ 273
7. जयशंकर प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–7, संस्करण 2004 पृष्ठ 271
8. जयशंकर प्रसाद, इरावती, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–7 संस्करण 1993, पृष्ठ 16

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 43-45

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी कहानियों में चित्रित 'रूप-जीवा' समस्या एवं मानसिकता

प्रो. संजय एल.मादार
पता : उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा,
धारवाड डी. सी. कंपौंड 580001, कर्नाटक
Mobile: 9945664379, Email id: prof.sanjaymadar@gmail.com

आदिकाल में पशु की तरह भटकते हुए मनुष्य को स्थिर रूप में गृह निर्माण करके एक स्थान पर बसने की प्रेरणा नारी से ही मिली है। संसार में अनेक कलाओं का जन्म नारी के कारण ही हुआ है। संस्कृति और सभ्यता का संबंध भी नारी से ही है। हमारी परंपराएँ और रीति – रिवाज नारी के कारण ही जीवित हैं। धर्म और नैतिक नियमों के पालन का श्रेय नारी को ही जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि नारी के कारण अनेक राजपाटों का निर्माण हुआ है तो दूसरी तरफ युद्ध भी हुआ है। एक क्षमा की देवी है तो दूसरी तरफ प्रतिशोध की काया भी। डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त अपनी किताब 'नारी वरदान या अभिशाप' में नारी की महत्ता का वर्णन करते हुए कहते है कि "सुमन का सौरभ, संगीत का आनंद, सरिता की गति, सौंदर्य सरिता का आलोक, शिखर बंसत का उल्लास और कविता का यदि आप एक स्थान पर इंद्रधनुषी रंगमय व्यक्तित्व का सम्मिश्रण देखना चाहते हैं तो आपको नारी के व्यक्तित्व में ही दिखेगा। सूर्य के पास प्रखर और चंद्रमा के पास मोहक एवं आह्लाददायक व्यक्तित्व है, परंतु नारी के स्वभाव में इन दोनों का संगम है। संगीत में लय और आनंद तो है, पर चेतना नहीं है। नारी में चेतना की चटकीली चमक है।"[1]

परंतु ऐसे उच्च महत्ता को प्राप्त करने वाली नारी के पल्ले में दयनीता का भार भी कुछ कम नहीं है। नारी पुरुष के लिए माँ, बहिन, पत्नी, पुत्री और सहेली के रूप में इस संसार में साथ देती है। मगर इस साथी के साथ कई बार पुरुष ऐसा व्यवहार करता है कि उसका व्यवहार नारी को दयनीय स्थिति में पहुँचा देता है। समाज या परिवार में स्त्री–पुरुष आवश्यक अंग है। वे दोनों परिवार रूपी व्यक्तित्व की दो टाँगे हैं। उनमें से एक के अभाव में परिवार लंगडा हो जाता है। और लंगडा व्यक्ति संसार सफर तय नहीं कर पाता। अतः एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण है। समाज में स्त्री –पुरुष का अस्तित्व समान है। फिर भी बहुत सारी कठिनाईयाँ पल्ले में आयी है।

हिंदी साहित्य में रूप – जीवा पर अधिक कहानियाँ लिखी गई है। वैसे हिंदी साहित्य में इस विमर्श की शुरुआत प्रेमचंद जी ने ही की थी। इसी परंपरा को हिंदी के साहित्य कारों ने आगे बढ़ाया है। जीस प्रकार एक व्यक्ति एक बार दों नावों में पैर रख कर सफर नहीं कर सकता। उसी तरह एक व्यक्ति को एक साथ दो काम करके सफल होना कभी कभी कठिन हो जाता है। ऐसे में किसी एक काम को तो त्यागना ही पड़ता है। नहीं तो वह दोनों कार्यों में असंतुष्ट ही बना रहता है। ऐसी ही स्थिति के कारण आदमी कई बार घुटन भरी जिंदगी जीने लगता है। व्यक्ति के जीवन में कई ऐसी घटनाएँ भी घटती है, जिन्हें वह अपनों में बाँटकर जीता है। यदि सुख हो तो कहने–सुनने में अच्छा लगता है। पर दुख हो तो कहना अच्छा नहीं लगता है। कुछ बाते ऐसी भी होती है कि किसी को कहते भी नहीं बनता और कहे बिणा रहा भी नहीं जाता है। मन की ऐसी दुविधाग्रस्त स्थिति में व्यक्ति अपना दुख मन में ही रखकर घुट–घुटकर जीता है। यह घुटन भरी जिंदगी जीते जीते वह किसी के साथ घुलमिलकर नहीं रह पाता। वह गुमसुम अकेले में रहना पसंद करता है। कहानीकार सत्यशकुन ने अपनी कहानी "वह आ गई तो" में इसी तरह कुछ भावों को व्यक्त किया है।

प्रस्तुत कहानी में अर्पणा एक शिक्षित वेश्या है। वेश्यावृत्ति को वह स्वेच्छा से नहीं, बल्कि मजबूरी से अपना चुकी है। अर्पणा दो बच्चों की माँ भी है। समय के बीतते वह एड्स नामक बीमारी से ग्रसित हो जाती है। वह जानती है कि

इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है। फिर भी मनुष्य तो आशावादी प्राणी है। इसी बात के अनुसार अर्पणा भी अपनी बीमारी से बचने के लिए कोई न कोई इलाज ढुंढना चाहती है। इसी आशा के साथ अर्पणा घोष नामक डॉक्टर के पास जाती है। तब डॉक्टर ईलाज स्वरूप उसे नियमित रूप से दवाई खाने को कहते है। साथ ही डॉक्टर घोष अर्पणा को इस देह व्यापार से दूर रहने की सलाह भी देते है। इतना ही नहीं संभव हो तो इस देह व्यवसाय को पुरी तरह छोडने को ही कह देते है। प्रत्युत्तर में अर्पणा जो बात डॉक्टर घोष से कहती है, उस बात से नारी का त्यागमय रूप ही सामने आता है। अर्पणा कहती है– "मुझे इस विषय में जरा भी डर नहीं है। डर तो बस दो बातों का है। एक ग्राहक डर जायेंगे तो मेरे धंधे पर बुरा असर पडेगा। इससे मेरी रोजी –रोटी छीन जाएगी तो मेरे बच्चों का क्या होगा? अर्पणा मौत को नहीं, भविष्य को देख रही थी। जिस में उसके बच्चे भूखे मरते नजर आ रहे थे।"[2]

डॉ. घोष इस बीमारी की भयावहता के बारे में कहते हैं तब अर्पणा को अपनी सहेली उर्मिला और उसकी बच्ची की याद आती है। घर से बेदखल, पैसे पैसे को तरस कर वह भूखी मरी। कुछ ही दिनों बाद उसकी बच्ची भी लावारिस दशा में मर गई। इस बात को याद कर वह अपने बच्चों के भविष्य की सोचती है। इसलिए अर्पणा अपनी बीमारी की बात को गोपनीय रखने की विनती डॉ. घोष से करती है। तब डॉक्टर घोष समाज के प्रति अपने कर्तव्य की बात करते हुए आदर्श विचार सुनाते है। प्रत्युत्तर में अर्पणा की बात जैसे बाण से भी गहरे जख्म कर जाते है। वह कहती है–

"इलाज से भी अहम सवाल पेट का है। मैं अस्पताल में भर्ती हो जाऊंगी तो चर्चा में आ जाऊंगी। मेरे बच्चों तक से लोग डरेंगे। ऐसे में उनका पेट कौन भरेगा? सरकार और आप क्या कर पायेंगे?"[3]

आखिर जिस समाज के उत्तर दायित्व की बात आप कर रहें है उसी समाज ने मुझे इस दयनीय स्थिति में पहुँचाया है। बात स्पष्ट है कि अर्पणा की दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार यह समाज ही है। आगे वह कहती है "आपका कहना सही है। लेकिन मैंने जान–बूझकर कुछ नहीं किया है। न करने की कोशिश कर रही हूँ। रही समाज की बात, वह तो नारी देह का शोषण अपना अधिकार मानता है।"4 अर्पणा के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी बीमारी इसी समाज के पुरुष वर्ग का उपहार ही कहा जायेगा। आगे चलकर वही हुआ, जिसका अर्पणा को डर था। डॉ. घोष ने अर्पणा की बीमारी को गोपनीय रखने का वादा किया था उसका ईमान सिर्फ और सिर्फ तीस रुपये के सामने डगमगाया और इस बीमार औरत की खबर डॉ. घोष ने अपने एक वार्ताकार दोस्त को दे दी। उन्होने काफी चालाकी से माँ– बेटे की तस्वीर के साथ अखबार के प्रथम पृष्ठ पर छपवा दिया। इस घटना के कारण अर्पणा का हाल भी वही हुआ जो उसकी सहेली उर्मिला का हुआ था। यहाँ अर्पणा एक पात्र मात्र है, लेकिन वह उन सबका प्रतिनिधित्व करती है जो इस देह व्यापार की समस्या का सामना कर रहे है। साथ ही वेश्या समस्या पर प्रकाश भी डालती है।

नारी उस लता के समान होती है जिसके फलने – फूलने के लिए एल वृक्ष की आवश्यकता होती है। अतः लता रूपी नारी को वृक्ष रूपी नर की सदैव आवश्यकता होती है। नर और नारी मानव जाति के दो रूप है। मगर दोनों में काफी अंतर है। इसी अंतर के कारण दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक दूसरे पर निर्भर रहते है। नारी का कोमल शरीर नर के आकर्षण का केंद्र है और नर का बलिष्ठ शरीर नारी, के संरक्षण का केंद्र है। नर नारी के श्रंगार पर मुग्ध होता है। तथा नर के साथ युक्त कार्यों पर नारी फूले नहीं समाती। लेकिन कुछ एक अपवादों को छोडकर महानगर की चकाचौंध में चमकते रंगी बेरंगी कांच की इमारत में रहने वाली बाहरी ठाटबाट से बडे कहलानेवाली स्त्रियाँ इन घरों में सुख से जीवन –यापन करती हैं ऐसा भी नहीं है।

मनमोहन मदारिया की कहानी 'एक वासंती रात' में अपने पति के लिए पत्नी के त्याग का वर्णन है। प्रस्तुत कहानी में एक तरफ घर की गरीबी है तो दूसरी तरफ उतनी शहर की कठोर ठंडी है। उसी ठंडी से अपना संरक्षण करने के लिए उस दंपति के पास ऊनी कपड़ा तक नहीं है। खरीदना हो तो पैसे का अभाव है। ऐसे में अपनी पति की हालात पर तरस खाकर वह देह व्यापार करने के लिए प्रवृत्त होती है। तो बात स्पट है कि हिंदी कहानियों में 'रूप– जीवा' का जो वर्णन मिलता है वह परिस्थिति से हारकर अपने आप को इस रास्ते पर चलती हुई स्त्रियाँ नजर आती है। तो कही कही एक अलग जीवन शैली के रूप में यह देह व्यापार की बात सामने आई है। क्योंकि वर्तमान समय में व्यक्ति स्वार्थी होकर स्व–केंद्रित होता हुआ दिखाई देता है। अपने सपनों को पूरा करने की प्रक्रिया में उसके व्यक्तित्व का विघटन हो रहा है। वह सब पाने की होड़ में बहुत कुछ खोता जा रहा है। परंतु उसका खोना ही उसे खंडित कर रहा है। इसलिए स्त्री–पुरुष के यौन संबंध को नये रूप में देखा जा रहा है।

कहानियों में चित्रित रूप–जीवा के विचार विवेचन के बाद ऐसा लगता है कि नारी विचारों में अब पहले की अपेक्षा काफी परिवर्तन आ गया है। इस प्रक्रिया में उसे कई समस्याओं का सामना करना पड़ा है। कही बार वह सामना कर

लेती है तो कई बार लाचार मजबूर होकर हथियार डाल देती है। रूप–जीवा से जुड़ी हुई समस्याओं का यथार्थ चित्रण हिंदी कहानियों में हुआ है।

संदर्भ

1. आधुनिक परिवेश और नवलेखन– डॉ. शिवप्रसाद
2. कहानी की संवेदनशीलता और प्रयोग– डॉ. भगवानदास वर्मा
3. समकालीन साहित्य और समीक्षा– डॉ. बेचन
4. अधजल गगरी– सत्य शकुन
5. एक वासंती रात – मनमोहन मदारिया.

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 46-48
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जीवा : विविध रूप

मंजू रानी
शोद्यार्थी. एम. ए. हिंदी (द्वितीय सत्र)
राजकीय महाविद्यालय होशियारपुर, पंजाब १४६००१
मोबाइल नं. 7087656554
Email Id : kraj71421@gmail.com

प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से जुड़े ग्रंथो , लेखों , शिलालेखों , प्रतिमाओं , इत्यादि तथा वैदिक ग्रंथो में से हमें उस समय के समाज व समाज में प्रचलित प्रथाओ , कलाओं तथा अन्य तथ्यों का विस्तृत वर्णन प्राप्त हो जाता है। हमारे प्राचीन समाज में शुरू से ही स्त्री दशा दयनीय ही रही है। जिसका प्रमाण हमें उस समय की नगर – वधु , गणिका , अथवा वेश्या आदि से संबंधित ग्रंथों में उल्लेखित किस्सों व कहानिओं में मिलते हैं। जैसे कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा रचित 'वैशाली की नगर वधु' जिसमें अंबपाली अपनी सुंदरता एवं गुणवत्ता के कारण पूरे राज्य की वधु बना दी जाती है।

रूप– जीवा शब्द का संबंध उन स्त्रियों से है जो अपने जीवनयापन के लिए वेश्या वृत्ति का कार्य करती थी। यह प्रथा प्राचीन काल से ही हमारे समाज में प्रचलित है और आज तक चली आ रही है। रूप– जीवा के अन्तर्गत इसके विविध रूपों का उल्लेख न अग्रलिखित अनुसार है...

१. अप्सरा २. गणिका ३. नगर वधू ४. वेश्या ५. देवदासी आदि।

अप्सराएँ : इनका मुख्य कार्य सवर्ग के देवताओं का मनोरंजन करना तथा किसी देवता के आदेश पर मुख्यतः इंद्र के आदेश पर तपस्यालीन किसी ऋषि की तपस्या भंग करना और कभी कभार किसी पुरुष विशेष पर कामस्तक हो उससे रतिक्रिया करना। किन्तु यदि कोई पुरुष उनके कामनिवेदन को अस्वीकार कर देता था तो वह उसे श्राप भी दे देती थी . इसका एक उदाहरण है , जैसे उर्वशी के निवेदन को अर्जुन द्वारा अस्वीकार किए जाने पर उर्वशी ने उसे नपुंसक हो जाने का श्राप दे दिया था।

गणिकाएँ : समाज में परिवार के उदय के साथ ही अर्थात नारी के ऊपर पुरुष के सवत्वाधिकर की सामाजिक सविकृति के साथ ही प्रारम्भ हुई गणिकावृति . उसी समय से परिवार के बहार के किसी पुरुष को अर्थ या वस्तु के विनिमय में अपना शरीर दान करने पर नारी गणिका नाम से चिन्हित हो गई . अर्थशास्त्र कामसूत्र एवं अन्यान्य ग्रंथो से जो तथ्य प्राप्त होते है उनमे यह स्पष्ट है कि गणिका का स्थान सर्वोपरि था . रूप , यौवन , शिक्षा दीक्षा सबमे वह श्रेष्ठ थी। (कामसूत्र १३ :२०)

नगरवधू : नगरवधू का अर्थ होता है सम्पूर्ण नगरवासियों की पत्नी . नगर के प्रतिष्ठित लोगों द्वारा चुनी गई वह सुन्दर स्त्री जो नाच गाने द्वारा लोगों का मनबहलाया करती थी इसका मुख्य काम राजाओं , मंत्रिओं और बड़े – बड़े लोगों को खुश करना होता था . कहा जाता है की प्राचीनकाल में शहर की सभी खूबसूरत लड़कियों को एक प्रतियोगिता में भाग लेने को कहा जाता था , जो लड़की इस प्रतियोगिता को जीतती थिस उसे नगरवधू बना दिया जाता था . इसके बाद उसे फूलों भरा बगीचा , महल जो सभी सुख सुविधाओं से युक्त होता था दिया जाता था . नगरवधू बनने के बाद बाद ही कोई जान पता था की यह कार्य कितना कठिन व चुनौतीपूर्ण होता है। यह गणिकाओं से भी ऊपर की श्रेणी में आती थी। 'वैशाली की नगर वधू' में आम्रपाली के चरित्र से नगर वधू के बारे में बहुत से तथ्य सामने आते है।

रूपजीवा : रूपजीवाओं के तहत नटी वेश्याएँ थी , जो गीत नृत्य से अपना जीवन यापन करती थी। यह रूप यौवन , शिक्षा दीक्षा , धन सम्पदा तथा सामाजिक स्तर की दृष्टि से गणिका से निचे थी।

देवदासी : यह महिलाएँ किसी धरम के कार्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर देती थी माना जाता है की यह प्रथा छठी शताब्दी में शुरू हुई थी। इस प्रथा क के तहत कुवाँरी लड़कीयों को धर्म के नाम पर ईश्वर के साथ विवाह करवाकर मंदिरों में दान दे दिया जाता था, वह अपना सम्पूर्ण जीवन उन्हीं मंदिरों में गुजार देती थी। यह प्रथा कही न कही आज भी हमारे देश में चल रही है , धर्म के नाम पर उन लड़कीयों के साथ क्या क्या किया जाता था और जो आज भी हो रहा है उनका साक्षात् दृश्य हम वर्तमान कल की खबरों में देख सकते है। हो सकता है की जब यह प्रथा चलाई गई थी तब उन देवदासियों का कार्य केवल मंदिरो की देख रेख करना , पूजा पाठ की तैयारी करना , मंदिर में भजन कीर्तन करना और ईश्वर के सम्मुख नृत्य करना अवश्य रहा। किन्तु समाज में बढ़ती गंदगी के साथ यह प्रथा भी कही न कही कलंकित हो गई।

वेश्या : वेश्या जिसका आज नाम लेते ही लोग एक हेय तथा घृणा भरी दृष्टि से देखते है। किन्तु प्राचीनकाल में वेश्या को उतना बुरा नहीं माना जाता था जितना की आज। उस कल में यह धर्म से सम्बंधित थीद्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इन्हें राजतन्त्र का अविच्छिन अंग माना गया है। उस काल में यह ऐसे लोगों की सेक्स इच्छा दूर करती थी जो किसी सैन्य अभियान पर होते थे या जिसने धर्म संस्कृति के कार्य के लिए गृहस्थ जीवन का त्याग कर दिया था। इसके इलावा तंत्र मार्ग हेतु भी यह महिलाएँ बहुत सहयोग करती थी। यह धनवान और राज परिवार के लोगों को संतुष्ट करने तथा उनके लिए जासूसी का कार्य भी करती थी। यह ६४ कलाओं में निपुण होती थी। इनका मूल धन या वस्त्रालंकार, साज – श्रृंगार था। आज वेश्या को समाज में गंदगी और उपेक्षित माना जाता है।

शिक्षा – दीक्षा : नगरवधू को हर प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। ठीक इसी प्रकार से गणिकालय में रहने के दौरान राज्य ही गणिका की शिक्षा दीक्षा का व्यय – भार वहाँ करता था। उसे ६४ कलाओं की शिक्षा देने के लिए राष्ट्र अपनी और से विभिन शिक्षक नियुक्त करता था। रूपजीवा की शिक्षा का का दायित्व उसका सवयं का होता था या फिर उसकी माँ या ग्राहक का। इसके अतिरिक्त थी अवरुधा अर्थात रक्षिता जिसका पूरा भार उसके पृष्ठपोषक पर होता था वह उसका पूरा आर्थिक दायित्व सवयं वहन करता था और बदले में केवल वही उसके पास आ सकता था। उसका जीवन उसके ग्राहक आर्थिक स्थिति पर निर्भर था। देवदासी के लिए तरुणी , सुंदरी और नृत्य कुशल होना ही पर्याप्त था। उसी से उसका काम चल जाता था। लेकिन गणिका या रूपजीवा की पाठ्यतालिका लम्बी होती थी। जैन ग्रंथ बृहत्कल्प के अनुसार गणिकाओं को लिखना , गणित , नाना प्रकार के शिल्प , संगीत वाद्ययंत्र , (विणा , पटह , वंशी आदि), द्यूतक्रीड़ा , अक्षक्रीड़ा , काव्यरचना (संस्कृत , प्राकृत, अपभृंश) , अलंकार बनाना , गन्धयुक्ति , श्रृंगार, अलंकरण , हस्तिविद्या , धनुर्विद्या , रंधनविद्या , स्थापत्य , शिविर निर्माण , सेना सन्निवेश , युद्धविद्या , निमित्तनिदान आदि कुल ७२ विद्याओं की शिक्षा आवश्यक होती थी।

आय व अन्य सुख सुविधाएँ : नगरवधू के पास अपना महल , हजारों दासियाँ , कर्मचारी और सुरक्षा कर्मी होते थे। नगरवधू का देवी जैसा सम्मान किया जाता था , यह भी कहा जाता है की नगरवधू के साथ एक रात गुजरने की कीमत इतनी ज्यादा होती थी की शाही परिवार के इलावा कोई अन्य इसे जुटाने में असमर्थ था। इसके इलावा नृत्य और सुरापान की विशेष व्यवस्था होती थी , जहाँ कुछ कीमत चुकाकर उसका आनंद लिया जा सकता था। गणिका राष्ट्र से एक हजार पण मासिक वेतन पाती थी भिन्न भिन्न लेखों अथवा रचनाओं में गणिका के एक रात का मूल्य अलग अलग है , जैसे बौद्धसाहित्य में उल्लेख है की गणिका सालावती की माँ सिरिमा अपनी बेटी की एक रत का मूल्य एक हजार काहापंण लेती थी। इनकी भी बहुत सी दासिया होती थी , समाजातक में काशी की गणिका सामा की पांच सौ अनुचारिणीयों का उल्लेख है। रूप यौवन और यश – अर्थ की दृष्टि से प्रख्यात गणिकाओं की आय की कोई सिमा नहीं थी। विदेशी प्रार्थी को निर्धारित मूल्य से पांच पण अधिक देना पड़ता थाद्य रूपजीवा की वार्षिक आय थी ४८ पण और अभिनेता , अन्नविक्रेता , मांसविक्रेता या वैश्यों के साथ इसका सम्बन्ध होता था। देवदासी को तो सम्पूर्ण जीवन उसी मंदिर में व्यतीत करना होता था। वेश्याओं की आय एक सहस्त्र पण वार्षिक थी। पुश्चली और कुलटा की दर निर्धारित नहीं होती थी।

आय– कर : गणिका और रूपजीवा दोनों राष्ट्र को कर देती थी बदले में उन्हें कुछ सामान्य सुरक्षा व्यवस्था आर्थिक एवं शारीरिक दोनों उपलब्ध थी। बुढ़ापे में इन्हे कुछ वृति मिलती रहे इसकी व्यवस्था भी कौटिल्य कर गए थे। किन्तु किसी आपातकालीन समय में इनकी सम्पदा को जप्त कर के राज्य की सुरक्षा पर खर्च भी कर दिया जाता था।

कानून तथा नियम : गणिका की लड़की के साथ बलात्कार करने पर ५४ पण और उसकी माँ की आय का

सोलह गुणा अर्थ दण्डस्वरूप देना होता था। इसके अतिरिक्त लड़की के विवाह के समय वर को क्षतिपूर्ति के रूप में कुछ और अर्थ देना पड़ता था। रुपया लेने के बाद आपत्ति करने पर गणिका या रूपजीवा को प्राप्य का दुगुना दंड भरना पड़ता था। गणिका को क्षति पहुँचने पर नाना प्रकार के दण्डो का विधान था। अर्थ का परिणाम एक हजार से ४८ हजार पण तक हो सकता था। पुश्चली और कुलटा को उचित दर से अधिक धन वसूलने की चेष्टा पर अपने न्यायपूर्ण प्राप्य से भी वंचित होना पड़ता था।

अंततः निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है की वैदिक काल की अप्सराएँ और गणिकाएँ , मध्युग में देवदासियाँ और नगरवधुएँ तथा मुस्लिम कल में वरंगनाएँ और वेश्याएँ बन गई। हमारे समाज ने इसके रूप को अपनी आवश्यक्ताओं के अनुरूप ढाल लिया। वैदिक कल में जिस प्रथा का उद्भव हुआ उसका विकास आगे के सभी कालों में हुआ और होता ही चला आया। वर्तमान समय में इनमें से कुछ नाम लुपत भले ही हो गए हैं लेकिन इनकी छाया आज भी हमारे साहित्य और समाज में देखि जा सकती है। वेश्या और देवदासी प्रथा आज भी हमारे देश में प्रचलित है जिसका रूप पहले की अपेक्षा अति दयनीय, विशाल और निंदनीय हो गया है।

सन्दर्भ

१. 'भारतीय संस्कृति और सेक्स' रचनाकार – गीतेश शर्मा
२. 'प्राचीन भारत : समाज और नारी' रचनाकार – डॉ. सुकुमारी भटाचार्य
३. 'वैशाली की नगरवधू' रचनाकार – आचार्य चतुरसेन शास्त्री
४. 'देवांगना' रचनाकार– आचार्य चतुरसेन शास्त्री
५. 'कामसूत्र' रचयिता – वात्स्यायन
६. तंरांउंसइववो॒वतकचतमे.बवउ.
७. ीजजचेःध्ध्उ––ीपदकप–ूमइकनदपं–बवउ.बकद.ंउचचतवरमबज.वतह.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 49-53
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मृच्छकटिकम् प्रकरण में वर्णित रूपजीवा जीवन-शैली

डॉ॰ विशाल भारद्वाज
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

किसी भी घटना की पुनरावृत्ति अर्थात् उन घटनाओं का रंगमंच पर अभिनय किया जाना नाट्य कहलाता है। प्राचीन पात्रों के व्यक्तित्व का नाट्य के पात्रों पर आरोप किये जाने के कारण यह नाट्य 'रूपक' भी कहलाता है तथा दृश्य होने के कारण इसको 'रूप' भी कहते हैं –

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात्..... ।। [1]

इतिवृत्त, नायक तथा रस आदि के भेद से रूपक के दस भाग किये गये हैं – नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक तथा इहामृग–

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।। [2]

रूपक के प्रकरण नामक भेद में नायिका के तीन प्रकार वर्णित किये गये हैं – कहीं तो कुलीन कन्या नायिका होती है, कहीं वेश्या (रूपजीवा) तथा कहीं दोनों –

नायिका कुलजा क्वापि, वेश्या क्वापि, द्वयं क्वचित्।
तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः..... ।। [3]

संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि शूद्रक द्वारा रचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण में वसन्तसेना नामक रूपजीवा को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उज्जयिनी नगरी में वसन्त ऋतु की सुन्दरता जैसी रमणीय वसन्तसेना नामक एक प्रसिद्ध वेश्या ब्राह्मण व्यापारी, किन्तु बाद में दरिद्र युवक चारुदत्त के गुणों के कारण उसके प्रेमपाश में बंधकर उस पर अपना सर्वस्व लुटा देती है –

अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना।। [4]

वसन्तसेना की सुन्दरता को अभिव्यक्त करते हुये महाकवि शूद्रक का कथन है कि यह कमलरहित लक्ष्मी है, कामदेव का सुन्दर अस्त्र है, कुलीन स्त्रियों के लिये शोकस्वरूप है, कामदेव रूपी श्रेष्ठ वृक्ष का पुष्प है तथा रति के समय लज्जा से प्रेम करने वाली काम–क्षेत्र रूपी रंगभूमि में विलासपूर्वक गमन करती हुयी यह वसन्तसेना प्रिय पथिकों के समूहों से अनुगत होती है –

अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललितं
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जाप्रणयिनी
रतिक्षेत्रे रङ्गे प्रियपथिकसार्थैरनुगता।। [5]

'मृच्छकटिकम्' में कवि ने एक रूपजीवा के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला है। महाकवि शूद्रक ने रूपजीवा के लिये दस नामों का उल्लेख किया है – काम वासना की कशा अर्थात् प्रेरक, मछली खाने वाली नर्तकी, नीची नाक वाली अर्थात् अप्रतिष्ठित, कुलनाशक, स्वच्छन्द अर्थात् वश में न होने वाली, काम की पिटारी, वेश्यालय की स्त्री, सुन्दर

वेश्यालय में निवास करने वाली, वेश्यालय की कामिनी तथा वेश्या –

एषा नाणकमोषिकामकशिका मत्स्याशिका लासिका
निर्नासा कुलनाशिका अवशिका कामस्य मंजूषिका।
एषा वेषवधूः सुवेशनिलया वेशांगना वेशिका
एतान्यस्या दश नामकानि मया कृतान्यद्यापि मां नेच्छति।। [6]

वेश्या बाजार का चित्र उल्लेख करते हुये उसे दम्भसहित माया, कपट तथा असत्य का जन्म स्थान बताया गया है। धूर्तता इसकी आत्मा है, रतिक्रीड़ा ने इसके आश्रय प्रदान किया है व यहाँ रमण सुख

का संग्रह होता है –

साटोपकूटकपटानृतजन्मभूमेः
शाठ्यात्मकस्य रतिकेलि.तालयस्य
वेश्यापणस्य सुरतोत्सवसंग्रहस्य
दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रयसिद्धिरस्तु।। [7]

रूपजीवा वसन्तसेना के पास धन की बहुलता है। चारुदत्त का मित्र विदूषक उसका सन्देश लेकर वसन्तसेना के घर पर जाता है। वहाँ वसन्तसेना के घर की सुन्दरता को देखकर वह हैरान रह जाता है। उसकी दृष्टि में वसन्तसेना का घर स्वर्ग के समान है –''...यत्सत्यं स्वर्गायते इदं गेहम्''। कभी वह उसके घर की तुलना नन्दन वन से करता है –''यत्सत्यं खलु नन्दनवनमिव मे गणिकागृहं प्रतिभासते।''[8] ''...यत्सत्यं लघूकरोतीव नन्दनवनस्य सश्रीकताम्''[9] तथा कभी वसन्तसेना के घर की सुन्दरता से अभिभूत होकर उसको सन्देह होता है कि क्या वह वेश्या का घर है अथवा कुबेर के भवन का खण्ड – ''किं तावद्गणिकागृहम् अथवा कुबेरभवनपरिच्छेद इति''। [10] अन्त में तो विदूषक वसन्तसेना के घर के बारे में कहता है कि उसने सचमुच एकत्र स्थित त्रैलोक्य को देख लिया है –''एवं वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तमष्टप्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य यत्सत्यं जानामि एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम्।''[11] परन्तु इतनी धन–सम्पत्ति होते हुये भी रूपजीवा का समाज में आदरपूर्ण स्थान नहीं है। प्रकरण के प्रारम्भ में शकार, विट तथा चेट वसन्तसेना का पीछा करते हुये उसके लिये अत्यन्त भद्दे शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा गलती से रदनिका को वसन्तसेना समझकर उसको बालों से पकड़ लेते हैं –

अन्धकारे पलायमाना माल्यगन्धेन सूचिता।
केशवृन्दे परामृष्टा चाणक्येनैव द्रोपदी।।
एषासि वयसो दर्पात्कुलपुत्रानुसारिणी।
केशेषु कुसुमाढ्येषु सेवितव्येषु कर्षिता।।[12]

जहाँ गणिकाओं का समाज में आत्म–सम्मान नहीं होता, वहीं उनके पारिवारिक सदस्य भी समाज में निरादर को प्राप्त करते हैं तथा उनको हीन भावना से देखा जाता है। वसन्तसेना के भाई के सम्बन्ध में विदूषक कहता है कि यद्यपि वह रंग का उजला, चिकना–चुपड़ा तथा सुगन्धयुक्त है, फिर भी श्मशान की गली में उत्पन्न चम्पक वृक्ष के समान वह लोगों के लिये त्याज्य है –

मा तावद्यद्यप्येषः उज्जवलः स्निग्धश्च सुगन्धश्च।
तथापि श्मशानवीथ्यां जात इव चम्पकवृक्षोऽनभिगमनीयो लोकस्य।।[13]

वसन्तसेना की माता के विषय में भी उपहासपूर्वक विदूषक कहता है, '' हाय इस भद्दी डायन के पेट का विस्तार ! तो क्या महादेव के समान इसको यहाँ घर में प्रविष्ट कराकर तत्पश्चात् द्वार की शोभा को बनाया गया था ? सीधु, सुरा तथा आसव से मत्त वसन्तसेना की माता इस अवस्था को प्राप्त हो गयी है। यदि यह माता यहाँ मर जाती है तो हजारों शृगालों को तृप्त करने के लिये पर्याप्त होगी'' –

अहो अस्याः कपर्दकडाकिन्या उदरविस्तारः। तत्किमेतां प्रवेश्य महादेवमिव द्वारशोभा
इह गृहे निर्मिता ?
सीधुसुरासवमत्ता एतावदवस्थां गता हि माता।
यदि म्रियतेऽत्र माता भवति शृगाालसहस्रपर्याप्तिका।।[14]

विट के कथन के माध्यम से रूपजीवा के जीवन की व्यथा को महाकवि ने प्रस्तुत किया है। वेश्यालय का जीवन युवकों की सहायता पर आश्रित होता है। रूपजीवा मार्ग में उगी हुयी लता के समान होती है तथा धन के द्वारा ग्रहण करने योग्य क्रय वस्तु रूप शरीर को धारण करते हुये प्रिय तथा अप्रिय दोनों का समान रूप से सेवन करती है –

तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो

विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं
सममुपचर भंद्रे सुप्रियं चाप्रियं च।।[15]

कवि ने वेश्या की तुलना वापी, लता तथा नाव के साथ की है। चाहे विद्वान् ब्राह्मण हो अथवा कोई पतित मूर्ख, दोनों एक ही वापी में स्नान करते हैं। पुष्पित लता को पहले मोर के द्वारा बैठकर झुकाया जाता है तथा पुनः उसी लता का आश्रय कौआ लेता है। समस्त वर्णों के लोग एक ही नाव में नदी के पार उतरते हैं। रूपजीवा भी वापी, लता तथा नाव की भान्ति सभी जनों का सेवन करती है –

वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे
त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज।। [16]

महाकवि शूद्रक ने वेश्यालय में उत्पन्न होने वाली स्त्रियों को अपवित्र माना है। उसका कहना है कि वेश्यालय से सम्बन्ध रखने वाली स्त्रियां हृदय में दूसरे पुरुष को रखकर तत्पश्चात् संकेतों से अन्य को बुलाती हैं, मदसिक्तता को कहीं अन्यत्र प्रवाहित करती हैं तथा शरीर से किसी और को चाहती हैं। पर्वत की चोटी पर कमलिनी कभी नहीं उगती, जिस भार को घोड़े वहन कर सकते हैं, उस भार को गधे वहन नहीं कर सकते। खेत में बिखराये गये यव कभी भी धान नहीं हो सकते। इसी प्रकार वेश्यालय में उत्पन्न हुयीं स्त्रियां पवित्र नहीं होती हैं –

अन्यं मनुष्यं हृदयेन कृत्वा अन्यं ततो दृष्टिभिराह्वयन्ति।
अन्यत्र मुञ्चन्ति मदप्रसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते।।
न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति।
यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुचयस्तथांगनाः।। [17]

महाकवि शूद्रक ने तो यहाँ तक कह दिया है कि वेश्या तो जूते के अन्दर प्रविष्ट हुई कंकड़ के समान फिर दुःख से निकाली जाती है। वेश्या, हाथी, कायस्थ, भिखारी, धूर्त तंथा गधा– जहाँ ये निवास करते हैं, वहाँ सज्जन तो क्या दुष्ट भी वृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकते –

''...गणिका नाम पादुकान्तरप्रविष्टेव लेष्टुकादुःखेन पुनर्निराक्रियते। अपि च भो वयस्य,
गणिका हस्ती कायस्थो भिक्षुश्चाटो रासभश्च यत्रैते निवसन्ति तत्र दुष्टा अपि न जायन्ते। [18]

रूपजीवा के विषय में यह माना जाता है कि जिसके पास सम्पत्ति होती है, यह उसी का अनुगमन करती है। अर्थात् यह रूपजीवा धन के माध्यम से वश में करने योग्य है –

यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता धनहार्यो ह्यसौ जनः। ....[19]

कवि का तो मानना है कि न लोभ करने वाली वेश्या की सम्भावना करना कठिन है– ''...अलुब्धा गणिकेति दुष्करमेते संभाव्यन्ते।''[20] वसन्तसेना गलत गाड़ी में बैठकर शकार के पास पहुँच जाती है। वसन्तसेना से विट प्रश्न करता है कि क्या पहले मानपूर्वक उस शकार का तिरस्कार करके माता की अधीनता से धन के लिये यहाँ आयी हो ? –

...पूर्वं मानादवज्ञाय द्रव्यार्थं जननीवशात्। [21]

एक स्थल पर विदूषक का गणिकाओं के प्रति कथन है कि अहो! वेश्या का लोभ और अनुदारता–''अहो गणिकाया लोभोऽदक्षिणता च।''[22] ऐसा भी कहा गया है कि वेश्यायें धनहीन कामुकों को अपमानित करने वाली होती हैं –

आश्चर्यम् , खल्वस्माकं प्रदीपिका अपमानितनिर्धनकामुका इव गणिका निःस्नेहा इदानीं संवृत्ताः। [23]

वेश्याओं के असत्य भाषण रूपी स्वभावगत दोष का निरूपण करते हुये बताया गया है कि विभिन्न पुरुषों के संसर्ग के कारण वेश्याजन 'असत्यपटु' हो जाती हैं –

वसन्तसेना – चेटि, नानापुरुषसंगेन वेश्याजनोऽलीकदक्षिणो भवति। [24]

गणिकाओं के स्वभाव में उदारता के अभाव का भी उल्लेख किया गया है। शकार के समीप आने पर विट वसन्तसेना से पूछता है कि उदाररहित है स्वरूप जिसका, ऐसे वेश्यापन के कारण तुम यहाँ आयी हो, क्या ऐसा माना जाये ? –

...अशौण्डीर्यस्वभावेन वेशभावेन मन्यते।।[25]

गणिका संग से होने वाले दोषों को वर्णित करते हुये कहा गया है कि इस संसार में अपनी समस्त सम्पत्ति ही जिनका फल है, ऐसे कुलीन पुत्र रूपी महान् वृक्ष वेश्या रूपी पक्षियों द्वारा खाये जाकर पूर्णतः निष्फलता को प्राप्त हो

जाते हैं। रति–क्रीड़ा जिसकी ज्वाला है, प्रेम जिसका ईन्धन है, ऐसी यह कामवासना रूपी अग्नि है, जिसमें मनुष्यों के यौवन तथा धन भस्मीभूत होकर नष्ट हो जाते हैं –

इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः।
निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः।।
अयं च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः।
नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च।। [26]

एक गणिका के प्रति ऐसा नकारात्मक दृष्टिकोण प्रकट करते हुये भी महाकवि शूद्रक ने अपने प्रकरण में वसन्तसेना का अत्यन्त उदार स्वरूप प्रस्तुत किया है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में वसन्तसेना की माता उसको स्नान करके देवताओं की पूजा को निपटा लेने का आग्रह करती है –

आर्ये, मातादिशति–'स्नाता भूत्वा देवतानां पूजां निवर्तये' इति। [27]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि वसन्तसेना धार्मिक प्रवृत्तिसम्पन्न है। वसन्तसेना वेश्या होते हुये भी वेश्याभिन्न अर्थात् कुलस्त्री के समान चारुदत्त से प्रेम करने वाली नायिका के रूप में चित्रित की गयी है–''...वेश्यामवेशसदृशप्रणयोपचाराम्. ..।।''[28] चारुदत्त के गुणों से प्रभावित होकर उसके दरिद्र होते हुये भी वसन्तसेना उसके प्रति अत्यधिक आसक्त होकर उसके साथ यौवन सुख का अनुभव करती है –'' तत्र मे दारिका यौवनसुखमनुभवति।''[29] , ''..सुनिक्षिप्तं खलु दारिकया यौवनम्।''[30] चारुदत्त का पुत्र पड़ोसी के बच्चे की सोने की गाड़ी लेने की जिद्द करता है। इस बात को जानकर वसन्तसेना अपने उदार चरित्र का परिचय देते हुये अपने आभूषण उतार कर उस बच्चे की मिट्टी की गाड़ी में रख देती है तथा उससे कहती है कि वह सोने की गाड़ी बनवा ले –''जात, न रोदिष्मामि। गच्छ। क्रीड। जात, कारय सौवर्णशकटिकाम्।''[31]

वसन्तसेना के उदारचरित्र के परिणामस्वरूप ही विट कामना करता है कि वसन्तसेना दूसरे जन्म में कभी वेश्या न बने, अपितु किसी उच्च कुल में जन्म ले –

अन्यस्यामपि जातौ मा वेश्या भूस्त्वं हि सुन्दरि।
चारित्र्यगुणसम्पन्ने जायेथा विमल कुले।। [32]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज में रूपजीवा को अत्यन्त हीन दृष्टि से देखा जाता है तथा भारतीय संस्कृति अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी भी अन्य स्त्री के संसर्ग का निषेध करती है। इसीलिये महाकवि शूद्रक ने कहा है, ''ये गणिकायें धन के कारण हंसती और रोती हैं, पुरुष को विश्वास दिलाती हैं किन्तु स्वयं उसका विश्वास नहीं करतीं। इस कारण कुल तथा शीलयुक्त पुरुष को श्मशान के पुष्पों के समान वेश्याओं का परित्याग कर देना चाहिये।''–

एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेता–
विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः।।[33]

सन्दर्भ :

1. दशरूपकम् , 1.7
2. दशरूपकम् , 1.8
3. साहित्यदर्पण, 6.226
4. मृच्छकटिकम् , 1.6
5. वही, 5.12
6. वही, 1.23
7. वही, 5.36
8. वही, पृष्ठ संख्या–178
9. वही, पृष्ठ संख्या–184
10. वही, पृष्ठ संख्या–182
11. वही, पृष्ठ संख्या–182

12. वही, 1.40–41
13. वही, 5.29
14. वही, 4.30, पृष्ठ संख्या–180
15. वही, 1.31
16. वही, 1.32
17. वही, 4.16–17
18. वही, पृष्ठ संख्या–196
19. वही, 5.9
20. वही, पृष्ठ संख्या–194
21. वही, पृष्ठ संख्या–296
22. वही, पृष्ठ संख्या–194
23. वही, पृष्ठ संख्या–64
24. वही, पृष्ठ संख्या–142
25. वही, 8.17
26. वही, 4.10–11
27. वही, पृष्ठ संख्या–66
28. वही, 8.23
29. वही, पृष्ठ संख्या–348
30. वही, पृष्ठ संख्या–356
31. वही, पृष्ठ संख्या–240
32. वही, 8.43
33. वही, 4.14

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 54-55
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रूप–जीवा : जीवन विमर्श (नगर वधु, गणिका, वेश्याओं के संदर्भ में)

संजय परिहार
सहायक प्रोफेसर, अरावली पी.जी. कॉलेज, सुमेरपुर
E-mail - sanjay.parihar.abr@gmail.com, Mob - 9602501819

भारत देश एक विशाल और प्राचीन देश है, यहाँ की सभ्यता और संस्कृति पूरे विश्व में विख्यात है। यहाँ की संस्कृति के अध्ययन के लिए प्रायः उन्हीं स्त्रोतों का उपयोग किया जाता है जो इतिहास के अध्ययन के लिए उपयोगी है। यहाँ की संस्कृति का आधार ऋगवैदिक एवं वैदिक काल है।(1)

प्राचीनकाल से ही हमारे देश में नगरवधु, गणिकाएँ, वेश्याएँ, देवासी जैसे नाम सुनने को मिलते रहे हैं, अक्सर हम लोग इन महिलाओं के बारे में साहित्य एवं पत्रिकाओं में पढ़ते ही आए हैं। आखिर कौन होती हैं ये महिलाएँ और कैसा होता है इनका जीवन। आइए, हम इस आलेख में कुछ चर्चा करते हैं इन महिलाओं पर व इनके जीवन पर।

नगरवधु, जिनका इतिहास हम प्राचीन समय से ही पढते आ रहे हैं, ये वो महिलाएँ होती थीं जिन्हें सम्पूर्ण नगर की पत्नी का दर्जा दिया जाता था, नगर के प्रतिश्ठित लोगों द्वारा चुनी हुई वह महिला जिसका कार्य राजाओं, बड़े धनिक लोगों व मंत्री जैसे प्रतिश्ठित पदों वाले लोगों को खुष करना होता था हालांकि यह कार्य इन महिलाओं से जबरन नहीं करवाया जाता था, यह पेशा वह खुद चुनती थीं। इस कार्य के लिए भी लड़कियों में प्रतियोगिता होती थी, जिसके सबसे सुन्दर नाच–गान आदि में पूर्ण होने पर ही चुनी जाती थी। नगरवधु के पास कई दासियाँ, कर्मचारी और पूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था भी होती थी। ऐसा माना जाता है कि नगरवधु के साथ एक रात्रि बिताने की काफी ऊँची कीमत हुआ करती थी जो सिर्फ धनिक लोग ही अदा कर सकते थे इसलिए उनको या उनके महल आदि को नगर क्षेत्र से बाहर ही रखे जाते थे। बौद्ध संघ में भी हम 'नगरवधु' का उल्लेख पाते हैं जिसमें विशेष नाम ''आम्रपाली'' का आता है। आम्रपाली के भिक्षणी हो जाने पर वह बौद्धसंघ में सम्मिलित हो गयी थी तथा सबसे प्रतिष्ठित भिक्षुणी बन गयी थी।

''आम्रपाली'' पर एक उपन्यास आचार्य चतुरसेन ने भी लिखा है। (2) इतिहासकारों के अनुसार 11 वर्ष की उम्र में ही 'आम्रपाली' को सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी घोषित कर नगरवधु बना दिया गया था तथा वैशाली कानन के तहत उसे राजनीतिक भी बना दिया गया था। आम्रपाली की सुन्दरता की चर्चा सुदूर देशों तक फैली हुई थी। अनेकों राजकुमार उसके महल के चारों ओर डेरा डाले रखते थे। वैशाली में गौतम बुद्ध के प्रथम पदार्पण पर उनकी कीर्ति सुनकर तथा स्वागत के लिए श्रंगार करके अपनी परिचारिकाओं सहित गंकक नदी पर पहुँची, आम्रपाली की सुन्दरता को बुद्ध जानते थे इसलिए उन्होंने अपनी शिलों को अपनी आँखे बन्द रखने को कहा क्योंकि वह जानते थे कि आम्रपाली की सुन्दरता को देख शिष्य अपने पथ मार्ग से भटक सकते हैं। ऐसी कई रोचक कथाएँ नगरवधु पर साहिलाओं से भरी पड़ी हैं। वर्तमान समय में इस तरह की व्यवस्था का रूप कालानुसार वैष्यावृति के रूप में तबदील हो चली है, लेकिन इतिहास के साहित्य में 'नगरवधु' अपना वर्चस्व रखती है और इतिहास प्रेमी उसे ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में पढना आज भी पसंद करते हैं।

इसी तरह हम बात करें गणिकाओं की कहीं न कहीं नगरवधु का पर्यायवाची ही 'गणिका' को देखने को मिलता है। गणिकाओं में दो तरह की स्त्रियाँ हुआ करती थीं जो शायद कोठों पर तथा घरों में रहने वाली हुआ करती थीं, कुछ गणिकाएँ पढ़ी–लिखी भी हुआ करती थीं जिनका सामंतों, जमींदारों, उच्चवर्गीय लोगों के बीच सम्मान हुआ करता था। ये स्त्रियां पारिवारिक एवं वैवाहिक सम्बन्धों से मुक्त रहकर अपने कौशल से लोगों का मनोरंजन करती थीं। लेकिन ये महिलाएँ पारिवारिक कार्यक्रमों आदि में भाग नहीं लेती थीं लेकिन फिर भी यह समाज से बहिष्कृत नहीं हुआ करती

थीं। कामसूत्र में गणिकाओं को प्रशिक्षण दिया जाने की बात लिखी है।[3]

'अमरकोष' में गणिका, वारांगना और वेष्या को समानार्थी कहा जाता है। गणिका को वेश्या और वारांगना से श्रेष्ठ माना जाता था, अतः कलावती स्त्री को ही गणिका माना गया है। प्राचीन समय में गणिकाएँ राज दरबार में नृत्य गायन करती थीं तथा राजा के सिंहासन पर बैठने तथा पालकी में बैठने पर पंखा भी दिया करती थीं।

ललित विस्तार व मष्च्छकरिक जैसे काव्यों में गणिकाओं की कथाएँ खूब कही हैं। उल्लेखनीय है समाज से व्यभिचार, जुए और पषुवध जैसी प्रथाओं को रोकने का प्रयास किया गया लेकिन वेश्यावृति को रोकने का प्रयास नहीं, अतः स्पष्ट है कि गणिकोओं को समाज ने स्वीकार किया है।

इसी तरह हम 'वेश्या' शब्द को समझें तो इसका जुड़ाव गणिकाओं, नगरवधु से संबन्धित प्रतीत होता है। वर्तमान समय में आज 'वैश्या' एक ऐसी महिला का चरित्र बताया है जो देहव्यापार का कार्य करती है जिसे हम 'वेश्यावृति' कहते हैं। आज भारत में वैश्यावृति अभी भी अनैतिक देहव्यापार कानून के तहत आते हैं। कुछ वर्ष पूर्व महिला यौनकर्मिकों के संगठन का अधिवेशन हुआ जो ''नेशनल नेटवर्क ऑफ सेक्स वर्कर्स'' ने अपने अधिकरों की लड़ाई लड़ने का फैसला लिया लेकिन बिना कानूनी मान्यता का यह कारोबार पूरे देश में धडल्ले से चल रहा है। कुछ महिलाएँ अपनी इच्छानुसार इस कार्य को करती हैं जबकि अधिकतर महिलाओं को जबरन इस धंधे में धकेल दिया जाता है। महानगरों से लेकर छोटे–छोटे शहरों, गाँवों में आज भी यह धंधा जोर पकड़ा हुआ है। हालांकि इसके पीछे आर्थिक कारण, सामाजिक कारण व मानसिक कारणों का होना भी पाया जाता है। वर्तमान समय में महिलाओं के प्रति जागरुकता, सजगता सरकार की ओर से देखने को मिल रही है। महिलाओं को उनके आत्मसम्मान, प्रतिष्ठा व सुरक्षा की दृष्टि से कई 14गए हैं। [5]

वेश्यावृति पर सरकार के द्वारा कानून बनाये गए जिसमें महिला समाज को सुरक्षा मिल सके। महिलाओं को इस धंधे में धकेलने व अनैतिक व्यापार (निवारण अधिनियम 1956) बनाया गया है। [6]

इस आलेख से समाज को यह संदेष जाता है कि महिलाओं पर प्राचीन समय से ही वर्तमान समय तक शोषण दिया गया है जहाँ इतिहास गणिकाओं जैसी महिलाओं पर कई उपन्यास छपे हैं वहीं वर्तमान में 'वेश्यावृति' जैसे संगीन कार्य में महिलाओं को धकेल दिया जाता है हालांकि वर्तमान समय में महिलाएँ सभी क्षैत्रों में आगे रही हैं और देशा का नाम रोशन कर रही हैं लेकिन फिर भी यह वेश्या, गणिका, नगरवधु जैसे शब्द आज भी महिलाओं के साथ जुड़े हुए हैं।

संदर्भ - सूची

(1) शर्मा, रामशरण – प्रारम्भिक भारत का परिचय, प्रकाशक–ओरियंट ब्लैकस्वान, प्राइवेट लिमिटेड, 2009, हैदराबाद, संस्करण–7, पृ.सं. 119.

(2) चतुरसेन, आचार्य – 'वैशाली की नगरवधु', प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, 2013, पृ. सं. 25.

(3) श्रीवास्तव, केन्सी – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, प्रकाशक–युनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2018, पृ.सं. 426.

(4) प्रजापत, पप्पूसिंह – प्राचीन भारत, प्रकाशक–रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ.सं. 15.

(5) भारतीय दण्ड संहिता, प्रकाशक – कानुन प्रकाशक, जोधपुर, 2008 पृ.सं. 160.

(6) अवस्थी डॉ.एस.के. – विविध अपराध अधिनियम, प्रकाशक–जबलपुर लॉ हाउस, जबलपुर, तृतीय संस्करण–2004, पृ.सं. 69.

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 56-60
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

न्याय-वैशेषिक दर्शन में शिवादित्य मिश्र कृत सप्तपदार्थी का महत्त्व

डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर
(कोटा) संस्कृत–प्राध्यापक
हाडौती संस्कृत अकादमी, संस्था कोटा (राज.)
मो. 09887205809, 09461711197
E.mail: dr.bhupendrarathor@gmail.com

न्याय–वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों को निर्बाध गति से आगे बढ़ाने वाले आचार्यों में शिवादित्य मिश्र कृत सप्तपदार्थी का विशिष्ट स्थान है। सप्तपदार्थी के रचनाकार श्री शिवादित्य मिश्र के विषय में यह लिखना ही सार्थक है कि इनका समय 10वीं शताब्दी है। सप्तपदार्थी ग्रन्थ न्याय तथा वैशेषिक के सिद्धान्तों को एक पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है यह पदार्थों की व्याख्या से प्रारम्भ होता है और न्याय के तर्क को ज्ञान के गुण के रूप में पेश करता है। सप्तपदार्थी के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इनमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव का विवेचन हुआ है। यद्यपि वैशेषिकदर्शन में सप्तपदार्थों की मान्यता है, परन्तु कणाद सूत्र का अनुसरण करते हुए आचार्यों ने छः भाव पदार्थों की विवेचना की है। आचार्य शिवादित्य ने एक नूतन परम्परा का प्रणयन करते हुए लिखा है कि पदार्थ सात होते है ते च द्रव्यगुणकर्म सामान्य विशेष समवायाभावाख्याः सप्तैव। इस सत्ता के आधार पर ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ का नाम सप्तपदार्थी रखा है।

न्याय–वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों को निर्बाध गति से आगे बढ़ाने वाले आचार्यों में शिवादित्य मिश्र कृत सप्तपदार्थी का विशिष्ट स्थान है। इसी से शिवादित्य मिश्र का नाम अमर हुआ है। यद्यपि ग्रन्थकार ने न्यायमाला आदि ग्रन्थों का भी निर्माण किया है। हेतु खण्डन ग्रन्थ में उपाधिवार्तिक और अर्थापत्तिवार्तिक नामक शिवादित्य के अन्य दो ग्रन्थों की चर्चा मिलती है। शिवादित्य का लक्षण माला ग्रन्थ प्रायः लुप्त हो चुका है। शिवादित्य मिश्र का समय उदयनाचार्य 1025 से 1100 ई. के पश्चात् बादेन्द्र 1100 से 1225 ई. से पूर्व का माना गया है। पाँटर ने इनका जन्म 1100 से 1150 ई. के मध्य माना है। गंगेशोपाध्याय ने निर्विकल्पक ज्ञान के विषय में शिवादित्य मिश्र की चर्चा की है।

व्यावर्तनियमधितिष्ठति जअहि साक्षाद्
एतत् विषयसनमतौ विपरितमन्यत दण्डि।
पुमानेति विशेषणमात्र दण्डः,
पुन्सौ न जातिरनुदण्डमसौ च तस्यः।। [1]

गंगेशोपाध्याय ने उदयनाचार्य के विशेषण और उपलक्षण के सम्बन्ध में जो चर्चा की है, वहाँ शिवादित्य का भी उल्लेख है। भट्टवागीन्द्र के महाविद्या विडम्बन में शिवादित्य मिश्र की भी चर्चा है। [2] चित्सुखाचार्य ने तत्व प्रदीपिका में अनेक स्थलों पर शिवादित्य के विषय का उल्लेख किया है। [3] न्यायप्रसादिनी में प्रत्यक्ष रूप में शिवादित्य मिश्र की लक्षणमाला का उल्लेख मिलता है। चित्सुखाचार्य ने लक्षणमाला से ही अनेक सन्दर्भो को सामने रखा है। डॉ. दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य के अनुसार लक्षणमाला महाविद्या से सम्बन्धित ग्रन्थ है। वर्धमान उपाध्याय के अन्यइच्छानयतत्व बोध[4] तथा जानकीनाथ भट्टाचार्य के न्यायसिद्धान्तमञजरी में शिवादित्य मिश्र की चर्चा मिलती है। सप्तपदार्थी के आधार पर ही बाद में केशवमिश्र की तर्क भाषा, लोगाभिभास्कर की तर्ककौमुदी, जगदीशतर्कालंकार की तर्कामृत, विश्वनाथ की भाषा परिच्छेद तथा अन्नम्भट्ट की तर्कसंग्रह रचनाऐं प्राप्त हुई है।

सप्तपदार्थी के रचनाकार श्री शिवादित्य मिश्र के विषय में यह लिखना ही सार्थक है कि इनका समय 10वीं शताब्दी

है। डॉ. राधाकृष्णन ने भारतीयदर्शन भाग–2 में लिखा है कि शिवादित्य का जन्म उदयन के पश्चात हुआ तथा गंगेशोपाध्याय से पूर्व हुआ है। इन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना 12वीं शताब्दी से पहले कर दी थी क्योंकि श्री हर्ष ने खण्डनखण्डखाद्य में इनके प्रमाणलक्षण का खण्डन किया है। सप्तपदार्थी ग्रन्थ न्याय तथा वैशेषिक के सिद्धान्तों को एक पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है यह पदार्थों की व्याख्या से प्रारम्भ होता है और न्याय के तर्क को ज्ञान के गुण के रूप में पेश करता है।

सप्तपदार्थी के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इनमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव का विवेचन हुआ है। यद्यपि वैशेषिकदर्शन में सप्तपदार्थों की मान्यता है, परन्तु कणाद सूत्र का अनुसरण करते हुए आचार्यों ने छः भाव पदार्थों की विवेचना की है। आचार्य शिवादित्य ने एक नूतन परम्परा का प्रणयन करते हुए लिखा है कि पदार्थ सात होते है ते च द्रव्यगुणकर्मसामान्य विशेषसमवाया– भावाख्याः सप्तैव। [6] इस सत्ता के आधार पर ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ का नाम सप्तपदार्थी रखा है।

सप्तपदार्थी का अवदान

1 प. शिवादित्य मिश्र ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में सांस्कृतिक परम्परा का पालन करते हुए भगवान शंकर व गुरु को प्रणाम किया है–

हेतवे जगतामेवसंसारर्णवसेतवे।
प्रभवे सर्वविद्यानां शम्भवे गुरवे नमः। [7]

2 उद्देश्य खण्ड में सप्त पदार्थों का उल्लेख कर पदार्थ की परिभाषा में श्रीमिश्र ने लिखा है कि– प्रमितिविषयाः पदार्थाः8 अर्थात् 'भौतिक जगत्' की वस्तुएँ ही नहीं अपितु अनुभव में आने वाले सब प्रमेय विषय पदार्थ है।

यहाँ 'ज्ञेयत्व' के स्थान पर 'प्रमितिविषयत्व' कहे जाने से इस ऐतिहासिक तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि शिवादित्य के समय तक 'पदार्थशास्त्र' वैशेषिक और प्रमाणशास्त्र न्याय का समन्वय प्रारम्भ हो चुका था तथा वैशेषिक ने न्याय की प्रमाणमीमांसा को अपना लिया था।

3 सप्तपदार्थी में शिवादित्य मिश्र ने 1–55 सूत्रों तक उद्देश्य खण्ड माना है तथा 56 से 163वें सूत्र तक लक्षण प्रकरण माना है।

4 सप्तपदार्थी में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव इन सप्तपदार्थों का सम्यक् विवेचन मिलता है।

5 सप्तपदार्थीकार ने द्रव्य की स्वतन्त्र परिभाषा दी है उन्होंने लिखा है कि द्रव्यं तु द्रव्यत्वसामान्ययोगिगुणत्वकारणं चेति।[9] तद् द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसिनवैव। [10] अर्थात् द्रव्य द्रव्यत्वजाति और गुण से युक्त समवायिकारण है जो पृथिवी–जल–तेज–वायु–आकाश–काल–दिक्–आत्मा और मन से युक्त नौ ही है।

लक्षणप्रकरण में सर्वप्रथम स्थान पृथिवी द्रव्य का है। पृथिवी, पृथिवीत्व रूप जाति विशेष के सम्बन्ध में गन्धवती है। गन्धसमवाय सम्बन्ध से रहता है। पृथिवी नित्य और अनित्य है। नित्य पृथिवी परमाणु रूपा तथा अनित्य पृथिवी कार्य रूपा है। पुनः अनित्य पृथिवी भी शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेद से तीन प्रकार की है। शरीर ;हम लोगों काद्ध प्रत्यक्ष सि(पार्थिव शरीर है। गन्ध की ग्राहिका घ्राण इन्द्रिय पृथिवी है। विषय घटादि हैं। पृथिवी में चौदह गुण है, ये है– रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व तथा संस्कार। [11]

परमाणु – सप्तपदार्थीकार ने परमाणु का लक्षण अवयव रहित क्रियावान् बताया है। अवयव, द्रव्य का समवायिकारण है।[12]

शरीर – सप्तपदार्थीकर ने शरीर को भोग का अन्त्यावयवी कहा है, जिसमें अवच्छिन्न होकर आत्मा सुख–दुःख का भोग करती है।[13]

इन्द्रिय – सप्तपदार्थीकार ने साक्षात्कार का साधन अतीन्द्रिय किया है।[14]

विषय – सप्तपदार्थीकार ने ज्ञायमान आत्मा के भोग के साधन को विषय कहा है।

सप्तपदार्थीकार ने जल का लक्षण दिया है कि 'अप्त्वजातिमत्यः शीतस्पर्शवत्य आपः अर्थात् जलत्व जाति से युक्त शीतल स्पर्श वाला द्रव्य जल है। [16] पृथिवी सदृश जल के भेद प्राप्त होते है।

यहाँ आचार्य ने जल के लक्षण में अप्त्वजातिमत्यः लिखकर प्रशस्तपादाचार्य के अप्त्वाभिसम्बन्धादापः इस जललक्षण का अनुकरण क्रिया है। श्री शिवादित्य के उत्तरार्द्ध जल लक्षण शीतस्पर्शवत्यआपः को अन्नम्भट्ट ने[17] ग्रहण किया है।

शिवदित्य ने तेज का लक्षण तेजस्त्वजाति से युक्त उष्णस्पर्श वाला द्रव्य तेज किया है। [18] इस लक्षण में प्रशस्तपादाचार्य के तेज लक्षण का अनुकरण है। [19] वहीं मानमनोहरकार ने आचार्य मिश्र के उष्णस्पर्शवत्तेजः को ग्रहण किया है। [20] तेज के भी पूर्व द्रव्यों सदृश भेद प्राप्त होते है।

सप्तपदार्थीकार ने वायु का लक्षण वायुत्व जाति से युक्त अरूप किन्तु स्पर्शवान् किया है। [21] यहाँ आचार्य ने वायु को वायुत्व जाति से युक्त, रूपरहित तथा स्पर्शवान् द्रव्य माना है।

सप्तपदार्थीकार ने आकाश का लक्षण शब्द गुण से युक्त किया है, आकाश की सिद्धि घटकाशादि के भेद से भिन्न सर्वव्यापक स्पष्ट की है। [22]

सूर्य परिवर्तनजन्य अपरत्व को असमवायिकरण का जो आधार है तथा जो परत्व–अपरत्व का अधिकरण नहीं है, वहीं काल है। यह लक्षण देकर आचार्य ने इसकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाश तीन विशेषताएँ बतायी है। [23]

सप्तपदार्थीकार ने दिशा की शास्त्रीय परिभाषा को लक्षित करते हुए लिखा है कि परत्व, अपरत्व के असमवायिकरण का आधार, सूर्य के संयोगों से अनुत्पाद्य तथा अपरत्व का अनधिकरण जो द्रव्य है, वही दिशा है। [24]

शिवादित्य ने उपाधिभेद से दिशा के एकादश भेद बताये है। [25] इन्होंने ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋति, वारुणी, वायवी, कौबेरी, ऐशानी, नागी, बाह्मी के अतिरिक्त ग्यारहवी दिशा 'रौद्री' को माना है। जो रूद्र की है तथा ऊर्ध्व एवं अधोदिशा के मध्य स्थित है जिसे सामान्यतः अन्तरिक्ष कहा जाता है। [26] वैशेषिकदर्शनानुसार दिशा में वस्तुतः एक ही संख्या पायी जाती है किन्तु उपाधि वंश ही दिशा के दश या ग्यारह भेद मिलते है। [27]

सप्तपदार्थीकार ने आत्मा के लक्षण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि आत्मत्व जाति के समवाय सम्बन्ध वाला बुद्धि गुण से युक्त आत्मा है। [28]

सप्तपदार्थीकार ने मनस्त्वजाति से युक्त, स्पर्शशून्य, क्रिया का अधिकरण द्रव्य ही मन कहा है। [29]

वैशेषिकदर्शन सम्मत सात पदार्थों में द्वितीय पदार्थ गुण है। सप्तपदार्थीकार ने गुण का लक्षण गुणत्व जाति से युक्त, सामान्यवान होने पर समवायिकरण से रहित अचलनात्मक कहा है। [30] सप्तपदार्थी में रूप, रस आदि 24 गुणों का उल्लेख है।[31]

शिवादित्य ने चित्ररूप व चित्ररस की कल्पना की है। [32]

अनुमान प्रमाण में केवलान्वयि, केवल व्यतिरेक तथ अन्वयव्यतिरेक तीन स्वरूपों की चर्चा मिलती है। [33]

प्रतिज्ञा–हेतु–उदाहरण–उपनय–निगमन इन पञ्चावयाव वाक्यों का विवेचन सप्तपदार्थी में है जो न्यायदर्शन में पहले ही वर्णित है। [34]

उपाधि का लक्षण इस प्रकार दिया है– उपाधिश्च साध्यवयापकत्वेसतिसाध्य समवायि35 तथा किरणावली में उदयनाचार्य ने साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्व उपाधि[36] किया है।

शिवादित्य मिश्र ने प्राचीन वैशेषिकदर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाणों को माना है। अनुमान खण्ड का विवेचन संक्षेप में मिलता है। [37]

सप्तपदार्थीकार ने प्रत्यक्ष प्रमा का लक्षण देते हुए लिखा है कि अज्ञायमान साधन से उत्पन्न तत्व का अनुभव प्रत्यक्ष प्रमा है। [38] प्रत्यक्ष प्रमा के सात भेद है– ईश्वर, घ्राण, रसना, चक्षु, त्वचा, श्रोता और मन। [39]

ज्ञायमानकरण से उत्पन्न तत्व का अनुभव अनुमिति प्रम है। [40] व्याप्ति में पक्षधर्मता के आधार पर सही अनुमान होता है। स्वप्नावस्था में अन्तः इन्द्रिय उस स्थिति में रहती है जहाँ ज्ञानेन्द्रियाँ कार्य नहीं करती हैं। [41]

सप्तपदार्थी में असिद्ध–विरुद्ध–अनेकान्तिक–अनध्यावासित–कालात्यापदिष्ट–प्रकरणसम हेत्वाभासों की चर्चा हैं। [42]

दुःख के 21 प्रकार बताये है। [43]

वैशेषिकदर्शन सम्मत सप्तपदार्थों में तृतीय पदार्थ कर्म है। कर्म के लक्षण में शिवादित्य ने लिखा है कि– प्रथम आद्य संयोग व विभाग के असमवायिकारण में रहने वाली कर्मत्व जाति कर्म है। [44] कर्म के उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण तथा गमन पाँच भेद है। [45] शिवादित्य लिखते है कि उत्क्षेपणादि कर्मविहित, निषिद्ध तथ उदासीन रूप होते है। [46]

सामान्य पदार्थ के लक्षण में सप्तपदार्थीकार ने लिखा है कि नित्य एक और अनेकों में समवेत रहने वाला सामान्य पदार्थ है। [47] सामान्य पर, अपर तथा परापर के भेद से तीन प्रकार का होता है। [48] व्यापक मात्र अर्थात् अधिक देश वृत्ति में रहने वाला पर सामान्य है, जैसे–सत्ता। व्याप्यमात्र अर्थात् अल्पदेशवृत्ति में रहने वाला अपर सामान्य है, जैसे–घटत्वादि। व्याप्य–व्यापक रूप परापर सामान्य है, जैसे–द्रव्यत्वादि। सामान्य को जातिरूप और उपाधि रूप कहा

है। [49] सत्ता, द्रव्य, गुण एवं कर्म में रहने वाले सामनत्व जाति रूप है। पाचकत्व, अन्धत्व एवं अम्बत्व आदि उपाधि रूप है। [50]

शिवादित्य मिश्र ने विशेष का लक्षण सामान्य से रहित एक व्यक्ति में रहने वाली वृत्ति दिया है। [51] इस लक्षण का वैशेष्ट्यि यह है कि सामान्य रहित रहने से यहाँ द्रव्य, गुण और कर्म तीनों की व्यावृत्ति हो जाती है तथा द्वितीय वाक्यांश से यह स्पष्ट किया गया है कि नित्य द्रव्य के साथ विशेष का समवाय होता है। विशेष प्रत्येक नित्य द्रव्य पृथक्–पृथक् पाये जाने से तो अनन्त ही है। विशेष पूर्वोक्त द्रव्य–गुण–कर्म एवं सामान्य से पृथक् पदार्थ है चूँकि ये केवल नित्य द्रव्यों में ही समवेत होकर रहते है।[52]

सप्तपदार्थीकार समवाय का लक्षण नित्यसम्बन्धसमवाय देते है। [53] समवाय एक ही है, जो स्वयं असमवेत ही होता है।

शिवादित्य ने सप्तपदार्थी में अभाव का लक्षण दिया है– अभाव वह है, जिसका ज्ञान अपने प्रतियोगी के ज्ञान के अधीन होता है। [54] अभाव के चार भेद है– प्रागभव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्तभाव, अन्योन्याभाव। प्रागभाव प्रतियोगी के भेद से अनन्त ही है। [55]

सप्तपदार्थीकार ने निःश्रेयस् सिद्धि का कारण ग्रन्थ में वर्णित तत्वों का ज्ञान बताया है– एतेषां तत्वज्ञानं निःश्रेयस् हेतुः अर्थात् इन तत्वों का ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का कारण है। [56] यह शास्त्रज्ञान मोक्ष को देने वाला अर्थात् कल्याण का साधन है। [57]

शिवादित्य ने ग्रन्थ की समाप्ति पर 'कीर्तियस्य स जीवति' को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–
सप्तद्वीपाधरायावत् यावत् सप्तधराधराः। तावत्सप्तपदार्थीयमस्तु वस्तु प्रकाशिनी।। [58]

13 सप्तपदार्थी पर पाँच टिकाएँ उपलब्ध होती है–

जिनवर्धन सूरि कृत – 1415 ई.।

मितभाषिणी टीका माधुसरस्वती कृत – 1527 ई.।

शेषानन्त कृत टीका चन्द्रिका 1608 ई. से पूर्व।

कौण्डभट्ट कृत पदार्थदीपिका।

केशवभट्ट कृत पदार्थचन्द्रिका टीका। [59]

निष्कर्षतः सप्तपदार्थी वैशेषिक दर्शन के सम्पूर्ण सिद्धान्तों का पाण्डित्य पूर्ण ढंग से बोध कराने में पूर्णतया सक्षम है। यह ग्रन्थ आदर्श प्रकरण ग्रन्थ के समान भारतीय दर्शन के तत्कालीन सारगर्भित उद्देश्यों की विवेचना करता है।

सन्दर्भ संकेत -

1. तत्वचिन्तामणि प्रत्यक्षखण्ड पृ.–839–30।
2. महाविद्याविडम्बन, पृ.–74,79,109 ।
3. चित्सुखी, पृ.–183।
4. अन्यइच्छानयतत्वबोध, पृ.–66।
5. न्यायसिद्धान्तमंजरी History of Naya of Mithila P.-63)
6. सप्तपदार्थी, पृ.–3।
7. वही..... पृ.–1
8. वही.....पृ.–2।
9. सप्तपदार्थी, पृ.–3
10. वही.....पृ.–5।
11. वही.....पृ.–63,11,137
12. वही.....पृ.–88,89।
13. वही.....पृ.–91,12,92
14. वही.....पृ.–92।
15. वही..... पृ.–93
16. वही.....पृ.–63।
17. प्रशस्तपादभाष्य, पृ.–26, तर्क संग्रह पृ.–31
18. सप्तपदार्थी, पृ.–64।
19. प्रशस्तपादभाष्य, पृ.–22
20. मानमनोहर, पृ.–19।
21. सप्तपदार्थी, पृ.–64
22. वही.....पृ.–64।
23. वही..... पृ.–67,18
24. वही.....पृ.–66।
25. वही..... पृ.–18
26. वही.....पृ.–18।
27. वैशेषिक दर्शन में पदार्थ निरूपण, पृ.–174
28. सप्तपदार्थी, पृ.–70।
29. वही..... पृ.–68

30. वही.....पृ.–56।
31. वही..... पृ.–06
32. वैशेषिकदर्शन में पदार्थनिरूपण, पृ.–283।
33. प्रमाणमञ्जरी का विवेचनात्मक अध्ययन पृ.–37
34. सप्तपदार्थी पृ.–116, 117
35. प्रमाणमञ्जरी का विवेचनात्मक अध्ययन पृ.–37
36. वही.....पृ.–37
37. वही..... पृ.–37
38. सप्तपदार्थी, पृ.–103
39. सप्तपदार्थी पृ.–27
40. वही.....पृ.–104
41. प्रमाणमञ्जरी का विवेचनात्मक अध्ययन पृ.–39
42. सप्तपदार्थी, पृ.–119,122
43. वही..... पृ.–50
44. वही.....पृ.–58
45. वही.....पृ.– 7
46. वही.....पृ.–83
47. वही.....पृ.–58
48. वही.....पृ.–7
49. वही.....पृ.–84
50. वही.....पृ.–42
51. वही.....पृ.–60
52. सप्तपदार्थी, पृ.–8, वैशेषिकदर्शन में पदार्थनिरूपण, पृ.–495।
53. वही.....पृ.–61,143,9
54. वही.....पृ.–62
55. वही.....पृ.–10,43
56. वही.....पृ.–49
57. वही.....पृ.–152
58. वही.....पृ.–153
59. वैशेषिक दर्शन में पदार्थ निरूपण, पृ.–13

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 61-63

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रूपाजीवा ऐतिहासिक परिचय

सर्वजीत सिंह यादव
शोधार्थी, तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति
अध्ययन शाला, देवी अहिल्या विवि0, इन्दौर (म0 प्र0)
Mob. : 9005378367, email : sarvjeetyadav68@gmail-com

वेश्यावृत्ति सभी सभ्य देशों में आदिकाल से विद्यमान रही है। यह सदैव समाजिक यथार्थ के रुप मे स्वीकार की गई है और विधि एवं परपंरा द्वारा इसका नियमन होता रहा है। सामंतवादी समाज मे यह अभिजात वर्ग की कलात्मक अभिरुचि एवं पार्थिव गौरव प्रदर्शन का माध्यम थी। आधुनिक यांत्रिक समाज में यह हमारी विवशता, मानसिक विक्षेप,भोगैषणा एवं निरन्तर बढ़ती हुई आंतरिक कुंठा के क्षणिक उपचार का द्योतक है। वस्तुतः यह विघटनषील समाज के सहज अंग के रुप में विद्यमान रही है सामाजिक स्थिति में आरोह–अवरोह आता रहा है, किन्तु इसका अस्तित्व अक्षुण्ण अप्रभावित रहा है। प्राच्य जगत के प्राचीन देशो मे वेश्यावृत्ति धार्मिक अनुष्ठानों के साथ संवंध रही है। इसे हेय न समझकर प्रोत्साहित भी किया जाता रहा मिस्र, असीरिया, बेबी लोनिया, पर्शिया आदि देशो में देवियो की पूजा एवं धार्मिक अनुष्ठानो मे अत्यधिक अमर्यादित वासानात्मक कृत्यो की प्रमुखता रहती थी तथा देवस्थान व्यभिचार के केन्द्र बन गए थे। यहूदी अवश्य इसके अपवाद थे। उनमे मोजेज के अन्यान्य अध्या देशो का उद्देश्य स्पष्टतया धर्म एवं प्रजातीय रक्त की शुद्धता और रतिरोगो से जनस्वास्थ्य को सुरक्षित रखना था। वेश्यावृत्ति प्रवासी स्त्रियों तक ही सीमित थी। यह यहूदी स्त्रियो के लिए निशिद्ध थी। पर धर्माध्यक्षों की कन्याओं के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों ,द्वारा नियमभंग करने पर किसी प्रकार के दंड का विधान नही था। तथापि देवस्थानों और यरुसलम में ऐसी स्त्रियों का प्रवेश वर्जित था, तथापि पार्श्व पथ उनके सदैव अकीर्ण रहते थे। बाद के अभ्युदकाल में स्वेच्छारिता मे और वृद्धि हुई।

एथेस नगर में वेश्यावृत्ति के सबंध में निर्धारित नियम जनस्वास्थ एवं शिष्टाचार को दृष्टिगत कर अभिकल्पित थे। वेश्यालयो पर राज्य का अधिकार था जो क्षेत्रविशेष मे सामित थे। वेश्याओ का परिधान विशिष्ट होता था तथा सार्वजनिक स्थलो मे उनका प्रवेश निषिद्ध था। वे किसी प्रकार के धर्मिक अनुष्ठान मे भाग नही ले सकती थी। पर्शिया युद्ध के पश्चात और अधिक वाध्यकारी कानून प्रभावशील हुए लेकिन अत्यधिक गुणसम्पन्न एव प्रतिभाशालिनी गणिकाओं के सम्मुख वे टिक नही सके।

वेदो के दीर्घतमा ऋषि,पुराणो की अप्सराएं, आर्षकाव्यों, रामायण एवं महाभारत की शताधिक उपकथाए मनु,याज्ञवल्कय,नारद आदि स्मृतियों का अदिष्ट कथन, तंत्रों एवं गुहय साधनाओ की शक्ति स्थानीया रुपसी कामिनिया,उत्सवविशेष की शोभायात्रा में आगे–आगे अपना प्रदर्शन करती हुई नर्तकिया किसी न किसी रुप मे प्राचीन भारतीय समाज मे सदैव अपना सम्मानित स्थान प्राप्त करती रही है। दश कुमार चरित, कालिदास की रचनाए, समयमातृका,दामोदर गुप्त का कुट्ट नामतम् आदि ग्रंथो मे वीरांगनाओ का अतिरंजित वर्णन मिलता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र मे इन्हे राजतंत्र का अविच्छिन्न अंग माना है तथा एक सहस् पण वार्षिक शुल्क पर प्रधान गणिका की नियुक्ति का आदेश दिया है। [1] महानिर्वाणतंत्र मे तो तीर्थ स्थानो मे भी देवचक्र के समारंभ मे शक्ति स्वरुपा वेश्याओ को सिद्धि के लिए आवश्यक माना है। वे राजवेश्या,नागरी,गुप्तवेश्या तथा देववेश्या के रुप पंचवेश्या है। स्पष्ट है कि समाज कोई अंग एव इतिहास का कोई काल इनसे विहीन नही था इनके विकास का इतिहास समाज विकास का इतिहास है। त्रिवर्ग धर्म,अर्थ,काम की सिद्धि मे ये सदैव उपस्थित रही है। वैदिक काल की अप्सराएं और गणिकाएं मध्ययुग मे देवदासियां और नगरवधू तथा मुस्लिम काल में वारांगनाएं और वेश्याएं बन गई।

प्रारंभ मे ये धर्म से सम्बद्ध थी और चौसठो कलाओ मे निपुण मानी जाती थी। मध्य युग मे सामंतवाद की प्रगति के साथ इनका पृथक वर्ग बनता गया और कला प्रियता के साथ कामवासना से संवद्ध हो गई पर यौन सबंध सीमित और संयत था। कालान्तर मे नृत्यकला ,संगीतकला एवं सीमित यौन सबंध द्वारा जीविका हेतु लज्जा तथा संकोच को त्याग कर अश्लीलता के उस स्तर पर उतरना पड़ा जहा पशुता प्रबल है।

''वेश्या या गणिका का अर्थ स्पष्ट है। जन और गण की पत्नी केवल इस देश के प्रचीन इतिहास से ही नही वरन् सारी दुनिया मे मानव–सभ्यता के पितृसत्तात्मक युग मे एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण संस्था बन गई। बाइबिल मे केडोशोथ वेश्याओ का वर्णन आता है। ये लोग मन्दिरो से सम्बद्ध थी,मोआबाइट और असीरियन मन्दिरो मे भी इनका बड़ा आदर होता था अर्मीनिया देश मे पुराने समय मे यह आम प्रथा थी कि लांग अपनी वेटियो को देवदासी बना देते थे। प्राचीन बेबी लोनिया मे इन देवदासियो का बड़ा रुतबा था। प्राचीन एथेस रोम मे भी वेश्याओ को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। ये सूचनाए जार्ज रैले स्काट की प्रसिद्ध पुस्तक वेश्या जीवन को इतिहास से प्राप्त है।''[2]

हमारे देश में सालवती,मथुरा की वसंत–सेना तथा वैशाली की नगर वधू अम्बपाली के वृत्तान्त अब तक भारतीय साहित्य मे अनेक काव्य,नाटक और कहानी उपन्यासो की विषय–वस्तु बनकर लोक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है।

पितृसत्तात्मक सभ्यता के विकाश के साथ–साथ पुरुष समाज ने स्त्री–समाज को खाने और दिखाने के दातो की तरह दो वर्गो मे बाट लिया था। पितृसत्तात्मक सभ्यता के विकास मे पुरुष के उत्तराधिकार की समस्या ही प्रमुखतम थी।

अपने उत्तराधिकारी को पाने के लिए वह अपने अधीन स्त्रियों को अन्य पुरुषो का संग करने से रोकने लगा। पतिव्रत धर्म की महिमा हुई। इससे एक नई समस्या सामने आई,क्योकि तब तक स्त्रियों और पुरुषो को परस्पर इच्छामत मिलने मे किसी प्रकार की सामाजिक बाधा नही थी। स्त्रियो पर व्यक्ति पूरा अधिकार हो जाने से व्यक्ति–व्यक्ति मे फूट पड़ जाना स्वाभाविक ही था।

मोहन जोदड़ो से एक नर्तकी की नग्न मूर्ति भी प्राप्त हुई है। रामायण–महाभारत के युग मे भी नाचने गाने वालियो के प्रमाण मिलते हे। ''कौटिल्य के अर्थशास्त्र द्वारा मौर्यकाल और उसके आस–पास युग मे राजदरबार एवं सम्पन्न प्रजाजनों के लिए गणिका की अनिवार्यता का पता भी चल जाता है।''[3] आज से लगभग दो हजार दो सौ बयासी वर्ष पहले का वह जमाना और था। जहा तक मानव की वेश्या सम्बन्धी मान्यताओ की बात है, आज की दृष्टि से ठीक उलटी राह पर चल रहा था। आज वेश्या संस्था को समाप्त किया जा रहा है और उस काल मे संस्कार द्वारा ही वेश्याओं की प्रतिष्ठापना होती थी। उनके लिए एक अलग सरकारी विभाग खुला था।

ई0 थर्स्टर्न–लिखित 'कास्टस एण्ड ट्राइब्ज आफ सदर्न इण्डिया' पुस्तक के दूसरे भाग मे देव दासियो का विशद वर्णन है। उक्त पुस्तक के अनुसार दक्षिण के प्राचीन ग्रथो मे सात प्रकार की देवदासियो का उल्लेख मिलता है। 1– दत्ता वह स्त्री कहलाती जो अपने आपको मन्दिर की सेवा के लिए किसी प्रकार के मूल्य की चाहना के बिना अर्पित करती थी, 2– विक्रीता अपने आपको इसी काम के लिए वेचती, 3– भृत्या,वह स्त्री कहलाती जो अपने पारिवारिक मंगल हेतु मन्दिर की सेविका बनती, 4– भक्त देवदासी अपनी भक्ति भावना के कारण मन्दिरो मे भरती होती थी, 5– हृता उन देवदासियो को कहते थे जिन्हे कही से भगा लाकर मन्दिरो मे अर्पित किया जाता था, 6– अलंकार वर्ग की देवदासिया वे कहलाती थी जो नृत्य संगीत आदि ललित कलाओ में दक्ष होकर किसी राजा या रईस द्वारा मन्दिरो की भेट चढ़ायी जाती थी,और 7 रुद गणिका या गोपिका वर्ग की देवदासियो को अपने नृत्य संगीत की सेवा के लिए मन्दिरो से वेतन दिया जाता था। [5]

सन् 1901 ई0 की मद्रास सेन्सस रिपोर्ट मे देवदासियो के सम्बन्ध मे यथेष्ट सूचनाए दी गई है। उक्त रिपोर्ट केलेखक ने इस पेशे का भविष्य दो जातियो के अवैध सन्ताने सभ्यता के आदिम विकास मे ललित कलाओ से सम्बद्व होकर इस पेशे मे आई। उक्त सेन्सस रिपोर्ट मे लिखा है ''हिन्दू धर्म की अनेक असंगत बातो मे एक यह भी है कि यद्यपि इनका देवदासियो का पेशा उनके शास्त्रो द्वारा बार–बार हीन दृष्टि से देखा और धिक्कारा जाता रहा है तथापि दूसरी ओर उनके देव मन्दिर ने सदा इसे प्रोत्साहन दिया है। ''[6]

हुमायू बादशाह के साथी बैरमखा फरमाया करते थे कि अमीर के लिए चार बीबिया चाहिए मुसीबत और बातचीत के लिए इरानी, खाना पकाने के लिए खुरासानी, सेज के लिए हिन्दुस्तानी और चौथी तुरकानी हो जिसे हर वक्त मारते–डाटते रहे कि और बीबिया डरती रहे।

ये सर्वकला–निपुण सुन्दर गणिकाए और नर्तकिया तथा उनके धन्धे की सहगामिनी देवदासी पुत्री मेलक्करान मद्रास सेन्सस रिपोर्ट सन 1901 के लेखक के शब्दो मे उस भारतीय संगीत पद्धति की आज प्रायः एकमाप्र

कोषाधिकारिणी है,जो विश्व की प्राचीनतम पद्धतियो मे से एक है। इनके और ब्राहमणो के सिवा अन्य लोग इस विद्या का विधिवत अध्ययन प्रायःकम ही करते है।

शाही नवाबी के पतन–काल से होते चले आते विलासिता के ताण्डव के कारण गदर के बाद वाले नई चेतना के भारत ने वेश्याओ के विरुद्ध आवाज उठायी। प्रतिक्रिया मे वेश्या जीवन की करुणा भी आगे चलकर उभरी। भारतेन्दु से लेकर सरशार कौशिक और उग्र तक ने सुधारक के रुप मे वेश्या गामिता के विरुद्ध आवाज उठायी है।

इसके बाद तो पढ़ने लिखने के बहाने घरेलू लड़किया परदे के बाहर आने लगी थी, युवको का ध्यान उस ओर बटनेलगा और होते करते आज यह दिन आया कि समाज को वेश्या की आवश्यकता ही न रही।

संदर्भ ग्रथ सूची

1– विकीपीडिया

2– अमृत लाल नागर,ये कोठे वालिया,प्रकाशन–लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण–चौथा 2019,पृष्ठ–54

3– वही,पृष्ठ–55

4– वही,पृष्ठ–56

5– वही,पृष्ठ–58

6– वही,पृष्ठ–60

7– वही,पृष्ठ–62

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 64-67
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिक्षा की मनोवैज्ञानिकता एवं साहित्य

निधि

शोधछात्रा (वेद विभाग) श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
नई दिल्ली 110016
पता – सी 226 दक्षिणपुरी अम्बेडकर नगर पुष्पा भवन सैक्टर–5 नई दिल्ली 110062
email : nidhi290693@gmail.com, Mob. : 8800736086, 9999143477

प्रस्तावना

''साहित्य की देदीत्यमान विधा' 'उपन्यास'' अपनी चतुर्दिक उन्नति के कारण साहित्य मर्मज्ञों लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों का प्रमुख आकर्षक केन्द्र रही है। आज यह हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ सशक्त तथा लोकप्रिय विधा के रूप में समाहत एवं प्रतिष्ठित है। वर्तमान संत्रासयुक्त तथा संघर्षशील मानव जीवन के जितने संवेदनशील, विश्वसनीय एवं वैविध्यपूर्ण चित्र उपन्यास विधा में सहजरूप में दृष्टिगोचर होते है। अपेक्षाकृत उतने अन्य किसी विधा में नहीं।

साहित्य मानव–मन की अनुभूतियों का ही चित्र हमारे सम्मुख रखता है। जब से साहित्य का आरम्भ हुआ है तब से लेकर आज तक उसमें मानव प्रकृति के विभिन्न पहलू ही अभिव्यक्त होते आए हैं। यही कारण है कि जब मनोवैज्ञानिक–सिद्धान्तों का प्रचलन भी नहीं था तब के साहित्य में भी हमें मानव की लगभग उन्हीं प्रवृत्तियों के दर्शन होते है जिन्हें आज हम मनोवैज्ञानिक–सिद्धान्तों के आलोक में सुगमता से समझ सकते है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मनोवैज्ञानिक साहित्य में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। कुछ आसिट्रयन पंडितों ने जिनमें फ्रायड, युंग, एडिलर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मनोविज्ञान से संबंधित कुछ ऐसे तथा कथित नए सिद्धांतों की खोज की, जिन्होंने प्रचलित मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्रचण्ड क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर दी। इन नए सिद्धान्तों में सबसे प्रमुख बात थी मनुष्य के अवचेतन मन–सम्बन्धी खोज। इन तीनों मनोवैज्ञानिक आचार्यो ने अपने–अपने ढंग से साहित्य को प्रभावित किया। परन्तु सर्वाधिका प्रभाव साहित्य ने फ्रायड से ही ग्रहण किया। उसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी रहा कि उसने यौन–प्रवृत्ति को मानव–मन की मूल परिचालिका शक्ति माना है।

मानव का अवचेतन और अचेतना उसके चेतन से किसी प्रकार भी कण महत्त्वपूर्ण नहीं। क्योंकि हमारी जितनी भी वीभत्स, अप्रिय एव कुत्सिक भावनाएँ हैं वे अचेतन में चली जाती हैं और वहाँ सुप्तावस्था में विद्यमान रहती हैं। वे मरती नहीं, अज्ञात रूप से मनुष्य के बाह्य व्यवहार को देखकर उसके किसी कार्य–विशेष की प्रेरक शक्ति को समझने के लिए जिस सूक्ष्म–दृष्टि की आवश्यकता है वह हमें मनोविज्ञान द्वारा ही प्राप्त होती है।

आज का मानव तो अधिक सभ्य होने के नाते कृत्रिमता के आवरण को और भी सावधानी से लपेटे रहता है। कृत्रिमता के उस आवरण को हटाकर उसके यथार्थ–रूप को व्यक्त करना ही एक मनोवैज्ञानिक कलाकार का लक्ष्य रहता है। अतः साहित्य में मनोविज्ञान का महत्त्व दो दृष्टियों से है एक मानव के सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों की छान–बीन द्वारा उसके वास्तविक रूप का उद्‌घाटन दूसरे उनके विश्लेषण द्वारा मनोवैज्ञानिक साहित्य में दमित कामनाओं को न केवल व्यक्त होने का अवसर मिल जाता है बल्कि वे परिष्कृत होकर मूल्यवान और सामाजिक दृष्टि से भी ग्राह्य हो जाती है।

मनोविज्ञान का अर्थ, स्वरूप और परिभाषा

साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए 'मनोविज्ञान' शब्द का ज्ञान होना आवश्यक है। मनोविज्ञान से

भाव है– ''मन का विज्ञान''। वेद मन्त्रों में मन की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि मानव मन जाग्रत एवं स्वप्न दोनों ही अवस्थाओं में गतिमान रहता है। मनोविज्ञान का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द है 'साइकॉलजी' जो कि यूनानी भाषा के 'साइके' और 'लोगस' से मिलकर बना है। 'साइके' का अर्थ है– आत्मा और 'लोगस' का अर्थ है– विचार–विमर्श करना। इन दोनों शब्दों से साइकॉलजी शब्द बना है। अतः 'साइकॉलजी' यह विज्ञान है जिसमें मनुष्य की आत्मा के बारे में चर्चा हो। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य का व्यवहार उनकी मानसिक शक्ति पर निर्भर करता है। ''मेक्डुगल'' ने मनोविज्ञान की परिभाषा प्राणी की क्रियाओं और व्यवहारों के विज्ञान के रूप में की है''।

इस प्रकार समय परिवर्तन के साथ–साथ मनोविज्ञान भी अपना रंग बदलता रहा है।

1. सी. बुडवर्थ के अनुसार– ''व्यक्ति के पर्यावरण के सम्बन्ध में व्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान ही मनोविज्ञान है''।

2. स्किनर के अनुसार– ''जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति प्राणी की प्रतिक्रियाओं या व्यवहार का अध्ययन ही मनोविज्ञान है। प्रतिक्रियाओं या व्यवहारों का अर्थ प्राणी की सभी प्रकार की प्रतिक्रियाओं, समायोजन कार्य व्यापारो और अभिव्यक्तियों से है।''

3. जेम्स ड्रेवर के अनुसार– 'मनोविज्ञान' वह शुद्ध विज्ञान है, जो मानव तथा पशु के उस व्यवहार का अध्ययन करता है, जिसे हम मस्तिष्क कहते है''।

''वुडवर्थ'' व्यक्ति के कार्यों की मूल प्रेरणा केवल उसका वातावरण ही मानते हैं और इसके आधार पर किए गए विश्लेषण को मनोविज्ञान के अन्तर्गत रखते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि वातावरण ही नहीं, अन्तः प्रेरणाएँ भी व्यक्ति के व्यवहार को परिचालित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। अतः मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानव मन से है अर्थात् मानव–मन का अध्ययन करने वाला शास्त्र या विज्ञान मानव के मानसिक कार्य–व्यापारों तक ही व्याप्त रहती है।

'मनोविज्ञान साहित्य के लिए नवीन वस्तु नहीं है। यह वाल्मीकि से लेकर आधुनिक काल तक के सभी कवियों और साहित्यकारों की कृतियों में लक्षित होता है। किन्तु 'मनोविशलेषण' मस्तिष्क के चेतन, उपचेतन व अवचेतन तीन विभाग कर अवचेतन मन को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। यहीं अवचेतन मन हमारे व्यक्तित्व, समस्त कार्य व्यापारों और नैतिक आचारों का निर्माण है। 'चेतन' ही हमारे मस्तिष्क का अत्यधिक लघु भाग है। उसके द्वारा हम सामाजिक सम्बन्धों का बोध मात्र प्राप्त करते हैं।

इसके साथ ही शिक्षा की विषयवस्तु को समझने व उसका निर्धारण छात्र के विकास के अनुरुप करने में मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। मनोविज्ञान शिक्षा के साधनों को समझने में सहयोग प्रदान करता है, इसी कारण साहित्य भी मनोविज्ञान से जुड़कर छात्र के ज्ञान का विकास करता है तथा साहित्यकार का उद्देश्य मनोरंजन हो सकता है, समाज को शिक्षित करना हो सकता है, सकारात्मक दिशा देना हो सकता है, जो साहित्य केवल विकृतियों का खुला वर्णन करके छोड़ दे वह साहित्य नहीं हो सकता मनोविज्ञान विकृतियों का अध्ययन करके उसके समाधान के रास्ते खोजता है।

साहित्य में मनोविज्ञान

''मानव मन मनोविज्ञान का विशेष्य है। यही मन भावों या मनोवेगी का आश्रय मनोविकारों का स्त्रोत एवं अनुभूतियों का कोष है। साहित्य इन्हीं मनोविकारों और अनुभूतियों की कथा है। अतः मनोविज्ञान साहित्य का व्याख्याता है। उसके अध्ययन का एक दृष्टिकोण भी है''। साहित्य का विषय है मनुष्य का मन और उसकी संवेदना उसके निरोध उसकी तृप्ति, उसकी आकांक्षाएँ, संक्षेप में उसके चरित्र का सब कुछ उसकी भीतरी बाहर, उसका 'आत्मा पर' उसकी 'स्वनिष्ठा' उसकी 'परिनिष्ठा' में भी 'स्वनिष्ठा'। इस सबकी विवेचना विश्लेषण तो मनोविज्ञान का आँगन है। इस मनुष्य में क्या समाया हुआ है? इसके 'भीतर–बाहर' कितना आ जाता है, जानने का प्रयास ही मनोविज्ञान है। 'फ्रायड ने संकेत दिया है, कि महान उपन्यासों और नाटकों का मूल विषय मानव और व्यक्तित्व के मूल द्वन्दी की अभिव्यक्ति है। यह अचेतन मन से लेखक के मस्तिष्क में उभरती है। उनके अनुसार लेखक अपने कथा वस्तु के चयन में शैशव और बाल्यावस्था के दूरगामी प्रभावों या अनुभवों से प्रभावित होता है'।

''साहित्य के भावलोक और विचार लोक के साथ–साथ उसके रस बोध को भी मनोविज्ञान ने बहुत प्रभावित किया है। आज चर्वणा की भी मनोविज्ञानपरक व्याख्या की गई है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रस भाव या स्थाई भाव न होकर भाव या अनुभूति की एक ऐसी अनुभूति है, जो निर्वेयक्तिक और साधारणीकृत होती है। कवि या साहित्यकार अपनी रचना में भावों और विचारों और कल्पित रूपों को नहीं अपितु इनकी अनुभूति को प्रस्तुत करता है, जिसे पाठक

निर्वेयक्तिक या साधारण रूप में प्राप्त करता है, मनोविज्ञान साहित्यकार के जीवन दर्शन को एक दिशा दी है। प्रत्येक कृति का उससे सापेक्ष होना अनिवार्य है प्रतीकों के चयन और मनोविज्ञान को परिभाषित शब्दावली के चयन में भी साहित्य मनोविज्ञान की ऋणी है''।

''साहित्य ने जीवन से प्रेरणा ग्रहण की है जीवन का विकास मनोविकारों पर आधारित है, और मनोविकार का आधार मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान की स्थिति जीवन की अनेकानेक अभिव्यक्तियों में है।

अतः मनोविज्ञान और साहित्य में साधन और साध्य का सम्बन्ध है। यह साधना प्राचीन काल से ही मनोविकारों में व्यक्त हुई है। उसी से साहित्य जीवन का पर्याय बनकर विकासोंन्मुखी रहा है। 'डा. देवराज साहित्य की भाँति मनोविज्ञान का भी जीवन से अविच्छेद सम्बन्ध स्थापित करते है। उनके मत में मनोविज्ञान अपने अंतिम विश्लेषण में जीवन शब्द का प्रभाव हो जाता है। क्योंकि जिसे हम जीवन कहते है, वह अधिकांश रूप से हमारे मनोविज्ञान जीवन की अध्ययन सन्निकरता के कारण परस्पर समान धर्मी हो गए है'।

वास्तविक रूप में मनोविज्ञान और साहित्य दोनों मानसी सृष्टी है, दृष्टिरूप में साहित्य मनोविज्ञान से पुरातन लगता है। परन्तु अपने जीवन्त रूप में मनोविज्ञान विश्व साहित्य में सदा से स्वीकृत रहा है। वैदिक ऋचाओं, उपनिषदों, पौराणिक, आख्याओं, वाल्मीकि, कालिदास, शेक्यपीयर, दातेय तथा गेटे के साहित्य में यंत्र–तंत्र बिखरा सहज रमणीय है। मनोविज्ञान को एक विज्ञान के रूप में मान्यता बीसवीं सदी की देन है। तथा साहित्य क्षेत्र में उसकी सैद्धांतिक मान्यताओं का प्रवेश इस शतक के अनुग्रह मात्र के कारण पूर्ववर्ती सम्पूर्ण साहित्य को मनोवैज्ञानिक ठहराना अपराध होगा।

प्रेमचन्द्र पहले उपन्यासकार थे जिन्होंने मानव मन की अतल गहराईयों को नापा सर्वप्रथम उपन्यास का सम्बन्ध समाज से जोड़ा। वे साहित्य को जीवन की आलोचना मानते थे, और जब साहित्य जीवन की आलोचना है तो वे सर्जक जीवन से अलग होकर जी नहीं सकता अतः प्रेमचन्द्र ने समाज के हर पक्ष का बड़ी गहराई से अध्ययन किया और उसे साहित्य में स्थान दिया। उन्होंने अपने उपन्यासों में मावन जीवन का चित्रण किया और सर्वप्रथम उन्होंने ने ही मध्यम वर्ग को अपने उपन्यासों में स्थान दिया। मध्यम वर्ग की कमजोरियों और कठिनाइयों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक अत्याचारों एवं राजनीतिक परतन्त्रता का विरोध किया। उनके साहित्य में अपने युग का बड़ा सजीव चित्रण मिलता है। लेखक के मन ने इन सब समस्याओं को भोगा है। इसी का परिणाम है कि, उनका सारा चित्रण यथार्थ के बहुत निकट गया है।

इन सब के अतिरिक्त प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में कहीं–कहीं पात्रों का बड़ा ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक के सिद्धान्तों के साथ भारतीय मनीषियों का बहुत अधिक परिचय नहीं था। परन्तु फिर भी फ्रायड इत्यादि का नाम लोग सुनने लगे थे। इसीलिए प्रेमचन्द्र के कथा साहित्य में बहुत सी घटनाएँ ऐसी आ गई है, जिनकी व्याख्या अचेतन मनोविज्ञान के द्वारा ही ठीक तरह से हो सकती है। परन्तु समय के साथ–साथ व्यक्ति के विचारों में भी परिवर्तन आता है'। वैज्ञानिक युग में जब से मानव के सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन हुआ है, तब से उपन्याकारों के द्वारा कथानक निर्माण में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाए जाने लगा। अब सहज या परंपरानुमोदित विश्वासों के आधार पर जीवन की अभिव्यक्ति नहीं की जाती है, अब इसका यथार्थपरक आधार भी अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। यही कारण है कि आलोचक के शब्दों में पूर्वपेक्षा सामायिक उपन्यासों का विषय क्षेत्र न केवल विस्तृत हो गया है, बल्कि वह जीवन के विविध स्त्रोतों से प्राप्त सत्य का आकलन करने की चेष्टा कर रहा है। समकालीन उपन्यासों में एक ओर मध्यमवर्गीय पारिवारिक जीवन की विसंगतियाँ है, मूल्यों का विघटन और मोहभंग की स्थिति है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान में जीते हुए मनुष्य की निरर्थकता का बोध भी हैं।

एक ओर प्रगतिवाद से उत्पन्न राजनीतिक जीवन की प्रतिक्रिया है तो दूसरी ओर अस्तित्ववादी दर्शन में उत्पन्न संकट के कारण लेखक किसी भी प्रकार की प्रतिबंद्धता में मुक्त होकर सृजनात्मक क्रिया के द्वारा अपने यथार्थ को प्रभावित अभिव्यक्ति देने का प्रयास कर रहा है।

साहित्य में मनोविज्ञान का प्रभाव प्रायः रहता है क्योंकि साहित्य तथा जीवन का सम्बन्ध अभिन्न है और मनोविज्ञान जीवित प्राणी के मन का विज्ञान है। इस प्रकार साहित्य तथा मनोविज्ञान सहोदर होने के कारण अभिन्न है। भक्तिकालीन साहित्य पर मनोविज्ञान का प्रभाव कम मात्रा में ही लक्षित होता है। परन्त शिक्षा मनोविज्ञान का अधिनियम युगीन साहित्य पर इसका प्रभाव पर्याप्त रूप से विद्यमान है। आधुनिक युगीन काव्य में अग्रणीय नाम श्री जयशंकर प्रसाद का है जिन्होंने अपने काव्य ''आसूँ'' में अपनी वेदना को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया–

इस विकल वेदना को ले,
किसने सुख को ललकारा।
वह अबोध अंकिचन,
बे सुध चेतन्य हमारा।।

फ्रायड के अनुसार प्रत्येक दुःख देने वाली स्मृति अचेतन में जाकर विलीन हो जाती है तथा चेतन–मन उस कष्टकर स्मृति से बेसुध होकर चैन की बंसी बजाता है। इसी प्रकार अश्क के काव्य में भी फ्रायड–मनोविज्ञान देखने को मिलता है जब वह अपनी पत्नी के विरह व उसके प्रेम में तल्लीन हो कविता लिखते है 'प्रातः दीप' की अत्यधिक कविताओं में पत्नी के प्रति प्रेम व विरह भावना झलकती है। 'विदा' इसी प्रकार की ही कविता है।

'विदा' की निम्न पंक्तियों में अश्क की विरह वेदना झलकती है–

''चल दोगी कुटिया सूनी कर, इसी घड़ी, इस याम।
युग–युग तक जलते रहने का मुझें सौंप कर काम।।
जाओ–जाओ प्राण! बसाओ एक नया संसार।।
नया उल्लास, नया सुख, पाओ अभिनव प्यार।
मेरी याद कहीं जो आये,
गहरी घटा उठा कर लाये,
और ह्रदय में टीस जगायें,
उसे भुला देना, उस सुख में क्या इस दुख का काम!
चल देगी कुटिया सूनी कर, इसी घड़ी, इस याम! ''

उपयुक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य पर मनोविज्ञान का पूर्ण प्रभाव रहता है अन्तर केवल इतना है कि प्राचीन काल में मनोविज्ञान को दर्शन का नाम दिया जाता था परन्तु वर्तमान काल में इसे वैज्ञानिक वेश–भूषा ग्रहण करने के कारण मनोविज्ञान कहा जाने लगा।

सारांश

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते है कि शिक्षा में मनोविज्ञान साहित्य का आधार फलक तथा उसके मूल्यांकन का वैज्ञानिक निष्कर्ष है। पर कुछ जिन्हें मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर सम्पूर्ण साहित्य की व्याख्या नितांत असंगत है। यथा आज भ्रांतिवश मनोविश्लेषण को मनोविज्ञान का पर्याय समझा जा रहा है, मनोविज्ञान की दुहाई देकर आज मनोविश्लेषणवादी साहित्य को अतृप्ति, दमन, कि प्रतिरक्षा क्रिया अथवा स्नायविक–विकार का परिणाम बता रहें हैं पर उनके द्वारा प्रस्तुत साहित्य के आंशिक रूग्ण रूप की झाँकी उसका पूर्ण यथार्थ तो नहीं है। वह उदास भावनाओं का पूँजीकृत रूप भी है वह जीवन के महासागर में उठी हुई उच्चतम तरंग भी है।

वह जीवन का चरम विकास भी है। अतः साहित्य के विकृत सामान्य और अतिस्वप्न तीनों रूपों को दृष्टिपथ में रखकर उसकी व्याख्या की जानी चाहिए। सम्पूर्ण तथ्य के अनुसार हम यही कहेगें कि साहित्य व मनोविज्ञान एक दूसरे की परक है। साहित्य में मनोविज्ञान सम्पूर्णत समाया हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सामान्य मनोविज्ञान – लाला जी राम शुक्ल, पृ. 15
2. C. Wood Worth, Psychology, Page no 4
3. James Drever, The study of Mental life Page no 2
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य और मनोविज्ञान– डा. देवराज उपाध्याय, पृ. 40
5. सामान्य मनोविज्ञान – सी. पी. सिन्हा, पृ. 38
6. साइकालाजी – नार्मन एल. एन, पृ. 19
7. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, – डा. देवराज उपाध्याय
8. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, – डा. देवराज उपाध्याय
9. 'आँसू' – श्रीजयशंकर प्रसाद, पृ. 11
10. दीप जलेगा (विदा) – उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 33

www.bohalsm.blogspot.com Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 3.811 April 2021 Page No. : 68-70
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ऐतिहासिक - साहित्यिक सन्दर्भ में रूपजीवाएँ

उर्मिला शर्मा
शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय,
हजारीबाग (झारखण्ड) – 825301

हमारे समाज में प्राचीन काल से वेश्यावृत्ति एक ज्वलन्त समस्या के रूप में मौजूद रहा है। चाहे वह वैदिक काल हो, मध्यकाल हो या आधुनिक काल हो। स्त्री लगभग हर काल में व्यवहारिक रूप में भोग की वस्तु रही है। परोक्ष रूप से हम चाहे उसे कितना भी देवी का दर्जा दे दें। हमारी संस्कृति के हर कालखंड में वेश्यावृत्ति का स्थान रहा है। अब अंतर यह आया है कि पहले जहाँ वो 'काम' के अलावा रिझाने की दुकान लगाती थीं, अब केवल श्कामश की दुकान लगती हैं। समाज का स्त्री के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं रहा है। सच कहें तो पेट की भूख हेतु स्त्रीत्व का क्रय– विक्रय और पौरुष के मद में निरपराध स्त्री के शरीर को भोगना लज्जा का विषय है। अंबेडकर साहब ने भी कहा है– 'यह मानव जाति पर लगा एक कलंक है।' समाज का यह दलित वर्ग साहित्यकारों के साहित्य सृजन का लक्ष्य रहा है।

प्राचीन काल में रूप–जीवाओं का अलग ही स्वरूप देखने को मिलता है। इन्हें चौसठ कलाओं से पूर्ण माना जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस बात का प्रमाण मिलता है –'गणिका और रंगमंच पर उपजीविका चलाने वाली दासियों को गायन, वादन, नृत्य नाटक, लेखन, चित्रकला, वीणा, वेणु या मृदंग बजाना, औरों के मनोगत पहचानना, सुगन्ध बनाना, मालाएँ गूंथना, संभाषण कला, संवहन कला, वेश्याओं की कला का ज्ञान देनेवाली शिक्षकों की उपजीविका का खर्च राजकोष से करना चाहिए।' तब राजा– महाराजाओं के दरबार में और अमीरों के घरों तक ही उनकी पहुँच होती थी। उन्हें राज्याश्रय प्राप्त होने के साथ उनके लिये समुचित व्यवस्था होती थी। राज्याभिषेक या सेना के प्रयाण के अवसर पर इनका दर्शन शुभ माना जाता था। गणिकाएँ आमोद– प्रमोद की वस्तु मानी जाती थीं। इस सम्बंध में कहा गया है – ऐसी पत्नी जो गणिका की तरह सूरत व्यापार में सन्नद्ध हो और अपने पति को संतुष्ट करे तो वह अपने पति की प्राण की प्यारी होती है।

'कोपे दासी रतौ वेश्या, भोजने जननी समा
मंत्रिणी विपदः काले, सा भार्या प्राणवल्लभा। '–[1]

रूपजीवा का अर्थ ऐसी स्त्री से है जो अपने रूप से अपनी आजीविका चलती हो। अर्थशास्त्र में रूपजीवा शब्द का व्यवहार साधारण वेश्या व विशेष वेश्या के लिए किया गया है। इनके लिए हमारे समाज में कई नाम प्रसिद्ध हैं। वेश्याओं के लिए पर्यायवाची नामोल्लेख अमृतलाल नागर जी ने इस प्रकार किया है–'चतुर्भणी (श्रृंगार हाट) में तुम वेश्या के अनेक नाम देखोगे, पुंश्चली, कामिनी, बेधकी, वेशयुवती, गणिका, वारमुख्या, गणिका– परिचारिका, गणिका– दारिका, चामर ग्राहिनी, पताका, वेश्या, कुंभदासी, रूपजीवा, मदनदूती, नटी, शिल्पकारिका– ये सब वेश्या के पर्याय हैं। ' –[2]

इस प्रथा या वृत्ति को शाश्वत बनाये रखने के लिए धार्मिक, सामाजिक ,सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैसर्गिक आपत्ति, भोग– विलास वृत्ति तथा वंश परम्परा आदि निर्धारित कारण हैं।

आधुनिककाल में वेश्याएँ श्कॉलगर्लश के रूप में उभरकर आयी हैं जो सभ्यजनों के पास टेलीफोन के द्वारा बुलाये जाने पर बड़े– बड़े होटलों में जाती हैं। ये पढ़ी– लिखी सम्भ्रान्त घरों की स्त्री भी हो सकती हैं। वर्तमान में बढ़ते दायित्व तथा शैक्षिक दशा के कारण जीवन के विभिन्न सन्दर्भों में नवीन प्रश्नों का सामना स्त्री को करना पड़ रहा है। फलस्वरूप विवशतावश उसे पुरानी परम्पराओं का उल्लंघन करना पड़ रहा है। कभी सामाजिक– आर्थिक तो कभी पुरुष की स्वार्थी वृत्ति के कारण उसे निराश्रित होना पड़ता है। इस सामाजिक– आर्थिक समस्या ने एक नवीन नारी– वर्ग को उत्पन्न

किया है जिसे देह– व्यापार के दलदल में धकेला जा सके। साथ ही उसे उसमे बने रहने के लिए भी मजबूर किया जाता है।

वेश्यावृत्ति सामंती व पूंजीवादी तंत्र की उपज है। जो कार्य पुरुष के लिए क्षम्य है वही स्त्री के लिए वर्जित माना जाता है। पुरुष कितना भी लम्पट, लोभी, कायर, पाखंडी या स्वार्थी क्यों न हो, स्त्री को अपने अधीन रखता है और उसके चरित्र पर जब चाहे तब उंगली उठा सकता है। समाज में लोग वेश्या को समाज का अंग मानने से इंकार करते हैं।

वेश्यावृत्ति के मूल में आर्थिक संघर्ष है। नए कथाकारों की कहानियों में आर्थिक विषमता स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। दीप्ति खंडेलवाल की कहानी 'भूख' में नायिका बीमार पति व बच्चों के लिए खाने का इंतजाम न कर सकने की स्थिति में स्वयं को दस रूपये में ट्रक ड्राइवर से सौदा कर लेती है। उसका मानसिक द्वंद इस प्रकार परिलक्षित होता है– 'दस रुपये... खिचड़ी सबके लिए खिचड़ी, दस रुपये में पन्द्रह दिन कट जाएँगे। बिरजू अच्छा हो जाएगा। रामू– शामू जी जाएँगे, कटोरी किलकने लगेगी और स्वयं...? हे देवी क्षिमा करना। ' –[3]

यशपाल की भी कहानी 'आबरू' में घर छोड़कर गयी नारी जब रोजी– रोटी का जुगाड़ न कर पाती है तो देह बेचने पर मजबूर हो जाती है। 'हमलोग क्या करें ? इस बदन के सिवाय हमारे पास है क्या ?'–[4] वहीं कमलेश्वर की कहानी श्मांस का दरियाश और श्रीकांत वर्मा की श्शवयात्राश में वेश्यावृत्ति में लिप्त स्त्री की कथा है। आधुनिक परिवेश के महानगरीय संस्कृति में वेश्यावृत्ति के अड्डा होटलों , डांस बार, क्लबों तथा अन्य सुरक्षित गोपनीय स्थानों पर होता है। इन्ही स्थानों में लड़की पसन्द आने पर उसका सौदा भी होता है। महानगरीय परिवेश में वेश्यावृत्ति का चित्रण प्रियदर्शी प्रकाश की श वर्किंग गर्ल्सश कहानी में है जहाँ लड़कियां मात्र मौज के लिए धंधा करती हैं।

इसी प्रकार गोविंद मिश्र की कहानी 'अव्यवस्थित' भी इसी विषय पर लिखी गई है। दूधनाथ सिंह की कहानी 'सब ठीक हो जाएगा' में मिसेज मित्रा 'कॉलगर्ल' के रूप में धंधा करती हैं, पर कभी– कभी ग्राहक को घर भी ले आती हैं। महानगरीय परिवेश के अपेक्षाकृत कस्बाई परिवेश पर कम कहानियां लिखी गयी हैं। वेश्यावृत्ति के पेशे में गाँव व छोटे शहरों की भोली– भाली लड़कियों को काम दिलाने के नाम पर धोखे से कोठे पर बिठा दिया जाता है। साथ ही उन्हें वहाँ बने रहने के लिए भी मजबुर किया जाता है। बेशक बदले परिवेश और मनःस्थिति के कारण स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग उभर रहा है जो स्वेच्छा से इस तरफ प्रवृत्त हो रही हैं। एक वेश्या स्त्री के हृदय में भी एक गृहणी के भाव होते हैं। पर समाज उन्हें इसका अवसर प्रदान नहीं करता। सुरेंद्र अरोड़ा की कहानी 'आबनूस' में एक वेश्या का कथन उसकी दमित इच्छा को प्रकट करता है –'तुमने क्या समझ रखा है मुझे। एक बाजारू औरत। हाँ बाजारू हूँ, पर बाजारू औरत के मन में भी कभी ऐसी हुक उठती है कि उसका कोई हो, कोई अपना जिसे वह बहुत निकट से महसूस कर सके। '–[5]

यशपाल ने अपनी अनेक कहानियों में रोटी और सेक्स की समस्या पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार गृहस्थ स्त्री वेश्या से भी बदतर स्थिति में है। 'हलाल का टुकड़ा' कहानी की नायिका फुलिया वेश्या होकर भी ईमानदारी से सौदा करती है तथा दो रुपये के लिए शरीर बेचने वाली कांग्रेसी नेता रावत के दो हजार रूपये ठुकराती है –'वाह रे, हम कोई फकीर हैं क्या? जो हाथ फैलाकर खैरात की खिदमत करेंगे तो हलाल के टुकड़े पर हमारा हक होगा, ऐसे गए गुजरे थोड़े ही हैं कि भीख मांग लें। ' –[6] वेश्यावृत्ति पर स्वतंत्रतापूर्व कहानीकारों की दृष्टि स्वतंत्रयोत्तर कथाकारों से भिन्न दिखाई देता है। वे इनका मार्मिक सामाजिक चित्रण कर देवदासी प्रथा को वेश्यावृति का मूल कारण मानते हैं। सम्वेदना व्यक्त करते हुए उन्हें हेयदृष्टि से देखते हैं।

हिंदी साहित्यकारों ने वेश्यावृत्ति पर खुलकर लिखा है और सम्वेदना के स्तर पर उनके समर्थन में खड़े दिखते हैं। इस मामले में कोरे नारेबाजी से अधिक जमीनी स्तर पर कार्य की जरूरत है। समाज के बुद्धिजीवी और सशक्तजनों के द्वारा इन्हें मुख्यधारा में लाने का ईमानदार प्रयास करना होगा। साथ ही उनके जीवन– यापन का अवसर प्रदान करना होगा। समस्त विश्व में फल– फूल रहा वेश्यावृत्ति अत्यंत निन्दनीय है। समाज में वर्ग– वर्ण भेद व पाप – पुण्य की भ्रामक परिभाषाओं को त्यागना होगा। यह कितना बड़ा व्यापक भरम है कि भगवान के नाम पर देवदासी का मुफ्त में शोषण पुण्य है और पैसा लेकर यही काम करना पाप है। समाज में इन स्त्रियों को घृणित दृष्टि से देखने के बजाय वेश्यावृत्ति करवाने वाले सभी शोषक तत्वों– फाइव स्टार होटलों व झोपड़पट्टियों तक पहुँचने वाले इन अय्याश पुरुषों का विरोध और बहिष्कार करना चाहिए। साथ लोगों को भी अपना सोच विकसित कर वेश्याओं को भी मनुष्य मान समाज में स्वीकृत करना होगा।

हिंदी उपन्यास में प्रेमचंद ने वेश्यावृत्ति को गम्भीर समस्या के रूप में देखा है। देवदासी प्रथा की गम्भीर समस्या

को किशोरीलाल गोस्वामी ने 'स्वर्गीय कुसुम' में उठाया है। देवकीनन्दन खत्री का 'काजर की कोठरी', पंडित गिरीजानन्दन तिवारी का 'विद्याधरी', देवीदत्त द्विवेदी का 'वेश्या चरित्र दर्पण', लज्जाराम मेहता का 'आदर्श हिन्दू', चंद्रशेखर पाठक का 'वारांगना रहस्य' आदि कई शुरुआती उपन्यासों में वेश्याओं तथा वेश्यावृति के काफी प्रसंग आये हैं। 'सेवासदन' में प्रेमचंद ने यथार्थ के साथ आदर्श को भी पिरोया है। इसके बाद चंडी प्रसाद हृदयेश का श्मनोरमाश प्रसाद का श्कंकालश विश्वम्भरनाथ कौशिक का 'मां' ऋषभचरण जैन के 'वेश्यापुत्र', 'चम्पाकली' निराला का 'अप्सरा' भगवती प्रसाद बाजपेयी का 'पतिता की साधना' आदि उपन्यासों में वेश्याओं के चित्रण हुआ है। ' –[7] समकालीन उपन्यास मोहनदास नैमिषराय ने श्आज बाजार बंद हैश में वेश्यावृति की गम्भीर समस्या पर प्रकाश डाला है।

आबिद सुरती के 'आदमखोर' 1996 में प्रकाशित उपन्यास में नायक शिक्षक संतोष रोमा को जो छल से बलत्कृत कर वेश्यावृति के दलदल में फंसाई गयी है, उसे वहाँ से निकलता है। 'काला गुलाब' में लेखक ने वेश्याओं को काले गुलाब के समान माना है जिसका माला न तो इंसान और न ही भगवान को अर्पित किया जाता है। समाज से इस कलंकित व्यवसाय को मिटाने के लिए साहसी , संयमी, दृढ़ निश्चयी पवित्र हृदय के नायक कुणाल जैसे युवकों की आवश्यकता होगी। वेश्यावृत्ति की उपज बेरोजगारी एवं अनियंत्रित इच्छाओं की कोख से होता है। पर प्रश्न यह है कि इन तीनों समस्याओं के खत्म होने से वेश्यावृत्ति के अंत सम्भव है ? इसका सबसे विद्रूप पक्ष है पुरुषों के द्वारा कम उम्र की लड़कियों की भावनात्मक– आर्थिक मजबूरियों का फायदा उठाकर इस नरक में झोंक डालना।

इसी विषय पर प्रसिद्ध लेखिका मधु कांकरिया ने यथार्थपरक उपन्यास 'सलाम आखिरी' लिखा है जिसमें प्रसिद्ध रूसी लेखक कुप्रिंन के उपन्यास का हिंदी अनुवाद (चंद्रभान जौहरी) – गाड़ीवालों का कटरा के संदर्भ में कहा है– '. ...मैं इस बात पर जोर देकर कहना चाहूँगी कि भारत में लालबत्ती इलाकों (रेड लाइट एरिया) की स्थितियां कुप्रिंन के चित्रण से न केवल भिन्न है वरन कहीं ज्यादा यांत्रिक, भयावह , कुत्सित और कुरूप है। ' इस उपन्यास में उन्होंने कलकत्ता के खतरनाक ढंग से बढ़ते रेड लाइट एरिया के विषय में लिखा है। राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा 95– 96 के सर्वेनुसार भारतीय महानगरों में दस लाख से भी अधिक वेश्यायें हैं। वर्षों पहले इन जगहों पर पुरुष केवल कामभावना से वशीभूत होकर नहीं आते थे बल्कि इसलिये भी जाते थे कि वहाँ कई कलावती वेश्यायें वासना के साथ कला, शेरो– शायरी, दोहे, कवित्त, मुहावरों व कहावतों के अक्षय कोष के साथ उनका मनोरंजन भी करती थीं। वहाँ खुलेआम शौकीन, सुसंस्कृत, कला– मर्मज्ञ, युवकों, प्रौढ़ों तथा रईस लोग उनकी संभाषण कला, हाजिरजवाबी, रसिक मिजाजी और नृत्य– संगीत का आनंद उठाने जाते थे। किंतु अब आधुनिक युग में अदाकारी , कलाकारी सिमटकर देह में कैद हो गयी है और बच गया है कला के बाजार में बिकता कलाहीन, रुग्ण स्थूल शरीर।

उपसंहार : हिंदी साहित्यकारों ने वेश्यावृत्ति पर खुलकर लिखा है और सम्वेदना के स्तर पर उनके समर्थन में खड़े दिखते हैं। इस मामले में कोरे नारेबाजी से अधिक जमीनी स्तर पर कार्य की जरूरत है। समाज के बुद्धिजीवी और सशक्तजनों के द्वारा इन्हें मुख्यधारा में लाने का ईमानदार प्रयास करना होगा। साथ ही उनके जीवन– यापन का अवसर प्रदान करना होगा। समस्त विश्व में फल– फूल रहा वेश्यावृत्ति अत्यंत निन्दनीय है। समाज में वर्ग– वर्ण भेद व पाप – पुण्य की भ्रामक परिभाषाओं को त्यागना होगा। यह कितना बड़ा व्यापक भरम है कि भगवान के नाम पर देवदासी का मुफ्त में शोषण पुण्य है और पैसा लेकर यही काम करना पाप है। समाज में इन स्त्रियों को घृणित दृष्टि से देखने के बजाय वेश्यावृत्ति करवाने वाले सभी शोषक तत्वों– फाइव स्टार होटलों व झोपड़पट्टियों तक पहुँचने वाले इन अय्याश पुरुषों का विरोध और बहिष्कार करना चाहिए। साथ लोगों को भी अपना सोच विकसित कर वेश्याओं को भी मनुष्य मान समाज में स्वीकृत करना होगा।

सन्दर्भ संकेत

1– गणिका वृत्त संग्रह, पृ०– 12, लुडविल स्टर्नबैक।
2– अमृतलाल नागर, ये कोठेवलियाँ, पृ०–170
3– दीप्ति खंडेलवाल, भूख ('वह तीसरा'), पृ०–91
4– यशपाल, आबरू ('तुमने क्यों कहा कि मैं सुंदर हूँ'), पृ०– 97
5– सुरेंद्र अरोड़ा, 'आबनूस', पृ०– 84
6– यशपाल, हलाल का टुकड़ा ('ज्ञानदीप') पृ0 –102
7– हिंदी दलित सहित्य : एक मूल्यांकन, सम्पादक– डॉ प्रमोद कोवप्रत (आज बाजार बंद है) पृ०– 64

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 71-76

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर जीवन : एक दर्द भरी दास्तान

पूजा सचिन धारगलकर
इ.डब्ल्यू.एस 247, हनुमान मंदिर के पास,
हाउसिंग बोर्ड रुंमदामोल दवर्लिम सालसेत (गोवा) –403707
संपर्क : 9356437855
Email : pujadhargalkar7@gmail.com

'किन्नर' नाम सुनते ही आपके दिमाग में अवश्य लज्जा का भाव आया होगा। लेखन तो दूर, नाम लेने मात्र से लोग कतराते हैं। शायद आपने भी यह भाव महसूस किया हो। 'किन्नर' शब्द सुनते ही हमारे मस्तिष्क में एक मनोग्रन्थि बन जाती है। 'किन्नर' शब्द पर मैंने इसलिए विशेष जोर दिया ताकि आपका ध्यान आकर्षित हो सके और आप इस शब्द से परे जाकर सोचने और समझने की दृष्टि उत्पन्न कर सके। किन्नर समाज जिसके साथ बिल्कुल उपेक्षित सा व्यवहार किया जाता है, उपहास उड़ाया जाता है, उसको आज सम्मान की दरकार है। वे आम आदमी की तरह जीने का अधिकार रखते हैं। आक उनकी व्यथा–कथा, समस्याएँ, उपेक्षा और तकलीफ से हमारे समाज को रूबरू होने की अवश्यकता है। उनको भी समाज की मुख्य धारा, मुख्य समाज में रहने, जीने का अधिकार है। आज साहित्य उनकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए तरस रहा है, किंतु उसको उचित अभिव्यक्ति नहीं मिल पा रही है।

सामाजिक पूर्वाग्रह से युक्त हमारा तथा–कथित समाज इस प्रजाति को हेय और गृणित दृष्टि से देखता है। ऐसे कई अवसर आते हैं, जब उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। चाहे विद्यालय हो, प्रशिक्षण संस्थान हो या फिर नौकरी देने की बात हो, उनके साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। हमारे गरिमामय भारतीय संविधान में इस बात का साफ–साफ उल्लेख है कि जाति, धर्म, लिंग के आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा। लेकिन फिर भी इन लोगों के साथ यह भेदभाव क्यों किया जाता है।

इस संसार में नर–नारी के अलावा और भी एक अन्य वर्ग है जो न पूरी तरह नर होता है और न नारी होते है, जिसे लोग 'हिजड़ा','किन्नर' या फिर 'थर्ड जेंडर' के नाम से भी जानते है। 'हिजड़ा' जिनके बारे में जानने की उत्सुकता हमेशा लोगों के अंदर होती है। शास्त्र की बात करे तो ऐसा माना जाता है की किन्नर की पैदाइश अपने पूर्व जन्म के गुनाहों की वजह से होती है।

वैसे देखा जाए तो सभी नाम एक दूसरे के पृथक है या कहे की समानांतर है। फिर भी अध्ययन करने पर उसमें भेद किया जा सकता है। किन्नर एक जाति का भी नाम है जो हिमालय के कनौर प्रदेश (हिमवत और हेमकूटी) में रहते हैं। उनकी भाषा 'कनौरी' है।"हिजड़ा उर्दू शब्द है और किन्नर हिन्दी शब्द है। आज के समय में सरकार एवं सामाजिक संगठन ने इसे 'ट्रांसजेंडर' नाम दिया है यानि की तीसरा लिंग अर्थात तृतीय प्रकृति के लोग। हर राज्य में उन्हें अलग–अलग नाम से पुकारा जाता है जैसे 'तेलगु–नपुंसकुडु, कोज्जा या मादा, तमिल–थिरु नंगई, अरावनी, अंग्रेजी में–`Eunuch / Hermaphrodite /LGBT, गुजरती–पवैय्या, पंजाबी–खुसरा, कन्नड–जोगप्पा भारत के अन्य जगह पर हिजरा, छक्का, किन्नर, खोजा, नपुंसक, थर्डजेंडर आदि" ।[1]

वैसे इनका इतिहास काफी पुराना है रामायण महाभारत के समय से हिजड़ों का इतिहास चला आ रहा है। रामचरितमानस में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। वनवास जाते समय श्री राम अपने पीछे आए छोटे भाइयों सहित सभी स्त्री एवं पुरुष वापस लौट जाने के लिए कहते हैं। आदेश का पालन करते हुए सभी स्त्री एवं पुरुष वापस अयोध्या लौट आने को कहते हैं, किन्तु मध्य लिंगी अर्थात हिजड़े वापस नहीं लौटते। 14 वर्षों के बाद वनवास से वापस लौटते

समय श्रीराम ने उनसे वहाँ रुके रहने का कारण पूछा, तन श्रीराम के कथन को किन्नरों ने स्पष्ट किया कि प्रभु आपने नर और नारी को वापस जाने की अनुमति दी थी, किनती हमारे संबंध में कोई आदेश नहीं किया था। इस प्रसंग का उल्लेख रामचरितमानस में तुलसीदासजी करते हैं–

"जथा जोगु करि विनय प्रनामा, बिदा किए सब सानुज रामा।
नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे, सब सनमानि कृपानिधि फेरे।।

इसका उल्लेख 'किन्नर कथा' उपन्यास में महेंद्र भीष्म ने भी किया है। कहा जाता है कि हिजड़ों की इस निश्चल एवं निस्वार्थ भक्ति भावना को देखकर श्रीराम ने उन्हें वरदान किया कि कलयुग में तुम्हारा ही राज होगा और तुम लोग जिसको भी आशीर्वाद दोगे, उसका अनिष्ट नहीं होगा। रामचरितमानस में ही श्रीराम की भक्ति के संबंध में पात्रता का उल्लेख करते हुए लिखा कि–

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोई।
सर्व भाव भज कपत तजि, मोहि परम प्रिय सोई।।

अर्थात चराचर जगत में कोई भी जीव हो, चाहे वह स्त्री, पुरुष, नपुंसक, देव, दानव, मानव तिर्यक इत्यादि हो। अगर वह सम्पूर्ण कपट को त्यागकर मुझे भजता है, वह मुझे प्रिय है। रामायण काल में किन्नर वर्ग की विशेष उपस्थिती थी।

महाभारत में किन्नर के रूप में शिखंडी तथा बृहन्नला (अर्जुन) का उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने शिखंडी को ढाल बनाकर ही भीष्म पितामह का वध करने में सफलता पायी थी। शिखंडी को सामने देखकर भीष्म पितामह ने कहा कि वह एक नपुंसक से युद्ध नहीं कर सकते और अपने शस्त्र नीचे डाल दिए थे"।[2]

मुगल काल में राजा युद्ध जाने पर रानियों की देखभाल किन्नर करते थे। पहले कभी उनका अनादर नहीं हुआ। पौराणिक ग्रन्थों, वेदों, पुराणों और साहित्य तक भी किन्नर हिमालय के क्षेत्र में बसने वाली अति प्रतिष्ठित व महत्त्वपूर्ण आदिम जाति हैं।

किन्नर की शव यात्रा रात्री के समय निकलती है, किन्नर मुर्दों को जलाया नहीं जाता बल्कि उन्हें दफनाया जाता है। चौका देने वाली बात यह है कि वह किसी दूसरे किन्नर से नहीं बल्कि वह अपने भगवान से शादी करते हैं। जिन्हें अरावन के नाम से भी जाना जाता हैं। उन्हें शव पर किसी कि भी नजर न पड़े यह मान्यता है। उनके शव पर चप्पलों से मारा जाता है क्यों पिछले जन्म के जो भी पाप है वह सब मीट जाए। उनके गुरु ही उनका परवर है। गुरु से ही वह शिक्षा पाते है।

किन्नर कहलाना किसी मर्द को अच्छा नहीं लगता,वह शब्द पिघला शीशा सा कानों में उतरना है और किन्नर को हिजड़ा कहने से उन्हें गाली लगती क्योंकि यह अपमान करने वाला शब्द है, पर कहीं अंतस तक उसके मन में कचोट जरूर होती है। आखिर ईश्वर ने उसके साथ अन्याय क्यों किया? क्यों हम उन्हें अपने से दूर सामाजिक दायरे से बाहर हाशिए पर रखतेचले आ रहे हैं, उनके प्रति हमारी सोच में अश्लीलता का चश्मा क्यों चढ़ा रहता है, किसी हत्यारोपी के साथ बेहिचक घूमने, टहलने या उसे अपने ड्राईग रूम में बैठकर उसके साथ जलपान करने से हम नहीं हिचकते हैं, फिर किन्नर तो ऐसा कोई काम नहीं करता, जो कि एक हत्यारोपी करता है तो हम किन्नरों से क्यों हिचकते हैं। वे हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्मे अपने पिता की संतान हैं। वे ज्यादा नहीं मांग रहे हैं। 'हमें किन्नर नहीं, इंसान समझा जाए। बस इतनी से मांग है।

स्त्री पुरुष की संरचना प्रकृति प्रदत्त है। जैविक आधार ने स्त्री–पुरुष और तृतीय लिंगी को शारीरिक–मानसिक भिन्नता प्रदान की है। मानव समाज में परस्पर भिन्न लिंगी मनुष्य एक–दूसरे के पूरक और सहयोगी रहे हैं, किन्तु मानव सभ्यता के विकास से ही लिंग भेद के कारण दमन, अन्याय, शोषण और असमानता का लंबा इतिहास भी है, विशेषकर तृतीय लिंगी समुदायों को एक समान नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। उन्हें समाज या परिवार से वंचित नहीं रहना पड़ता है, क्योंकि सार्वजनिक और सरकारी कार्यों में उन्हें दोयम दर्जे से नहीं देखा जाता। पुरुष सत्तात्मक भारतीय समाज में लिंगविहीन लोगों को बहिष्कृत किया जाता है तथा उसके साथ मनुष्य कि तरह व्यवहार भी नहीं किया जाता, बल्कि उन्हें क्रूरता, मर्मात्मक पीड़ा और दर्दनाक स्थितियों का सामन करना पड़ता है। नयी सदी की कहानियों में तृतीय लिंगी समुदाय का ध्यान आकर्षक होना तथा उनकी अस्मिता को उद्घाटित करना नए यथार्थ की शरुआत है। हम भी इंसान है किन्नरों पर आधारित कहानियों का विशिष्ट संग्रह है। किन्नर समुदाय का परंपरागत पेशा अपनाना उनकी विवशता है। उनके पास शिक्षा के साधन नहीं है और न रोजगार प्राप्त करने के अवसर मिल पाते हैं। उन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित रखा जाता था। अपमान और अलिंगी देह को लेकर उनका संघर्ष जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता है। उन्हें

स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार ही नहीं है बचपन में जब उन्हें किन्नर होने का पता चल जाता है तब उन्हें किन्नर समुदाय में भेजा जाता है। सबसे बड़ा गुन्हा उनके साथ होता है।

इस प्रकार का भेद भाव पशु–प्राणियों में नहीं है मनुष्य एक घातक प्राणी है, मौका देखकर वार करता है किसी को ऊपर उठने नहीं देता बल्कि और नीचे दफनाने की कौशिश करता है। अपने ही अपनों के द्वारा घिराये जाते है। किसी के प्रति कोई संवेदना नहीं है। हम किसी के दुख का सहारा नहीं बनते बल्कि किसी के दुख को और कैसे बढ़ाया जाए बस इसी का मौका हम तलाशते रहते है। हर किसी को अपने हिसाब से जीने का अधिकार है किसी का दूसरों पर कोई अधिकार नहीं है, लेकिन अपने अहं के कारण हम दूसरों पर वर्चस्व करते है। अपना अधिकार जताते है। आज हम फॉर्म भरते है उसमें स्त्री, पुरुष तथा अन्य ऐसे लिखा होता है हमने अन्य में उन्हें जगह दी लेकिन हमने अपने साथ स्वीकार नहीं किया।

'किन्नर' शब्द को पढ़ा जाए तो मुश्किल से एक या दो सेकंड लगेंगे और समझने की कोशिश की जाए तो पंद्रह–बीस मिनट में कोई जानकार यह आसानी से समझा देगा कि किन्नर कौन होते हैं? वही किन्नर जिन्हें हम हिजड़ा या छक्का कहते है। मगर शायद ही हम इस दर्द को जानते हो। इसी दर्द को किन्नर को अपने सीने में दबाकर आम लोगों के सामने हथेली पीटने हुए नाचते हैं, दूसरों का मनोरंजन करते है। दूसरों को आशीर्वाद देते है और उसके बदले अपने हिस्से में दर्द दुख बटोरते है। लोगों से नफरत प्रताड्ना सुनते है लेकिन चेहरे पर हमेशा हँसी होती है। दो वक्त की रोटी के लिए ठुमका लगाते और ताली पीटते। समाज से बहिष्कृत कर दिया गया, अपना एक ही धर्म मान लिया गया नाचना, गाना, ताली पीटना।

'नाला सोपारा' उपन्यास के माध्यम से हिजड़ों के जीवन से संबन्धित व्यक्तिगत एवं सामाजिक सरोकारों को पाठक के सामने परत खोलते हुए प्रस्तुत करने का प्रयास हैं। इस उपन्यास के लेखन के संदर्भ में 'चित्रा मुद्गल' कहती है "लंबे समय से मेरे मन में पीड़ा थी। एक छटपटाहट थी, आखिर क्यों हमारे इस अहम हिस्से को अलग–थलग किया जा रहा है। हमारे बच्चों को क्यों हमसे दूर किया जा रहा है। आजादी से लेकर अभी तक कई रूढ़ियाँ टूटी लेकिन किन्नरों के जिंदगी में कोई बदलाव नहीं आया। उपन्यास एक बड़ा प्रश्न उठता है कि लिंग–पूजक समाज लिंगविहीनों को कैसे बर्दाश्त करेगा? उपन्यास इस प्रश पर गंभीरता से सोचने को विवश करता है कि आखिर एक मनुष्य को सिर्फ इसलिए समाज बहिष्कृत क्यों होना पड़े कि वह लिंग दोषी है?

समाज में मनुष्यता आज हाशिये पर है और हाशियाकरण की यह प्रक्रिया लंबे समय से मानवाधिकारों के हनन के रूप में सामने आती है। गुलाम मंडी उपन्यास में समाज ऐसा है जिसे अक्सर हम देखना पसंद नहीं करते। परंतु क्या यह समस्या का समाधान है क्या कबूतर के आँख बंद कर लेने से बिल्ली उसे नहीं खाएगी। उसी तरह हमारा आँखों को बंद कर लेना भर मानव तस्करी, यौन शोषण और यौन कर्मियों की समस्या का समाधान नहीं होगा। अक्सर लड़कियां इसमें फँसने के बाद बाहर आने का प्रयास नहीं करती और करती भी है तो इस डर से आगे नहीं आती, कि समाज उन्हें स्वीकार नहीं करेगा। उपन्यास में जानकी के माध्यम से लेखिका इस समस्या पर रोशनी डालती हैं और समाज की मानसिकता में बदलाव की बात करती है ताकि यह लड़कियां वापस आ सके और सम्मानपूर्वक जीवन जी सके।

1974 में जे. बी लेखिका उस व्यक्ति से मिली और उन्होंने अपने जीवन की व्यथा बताई लूले, लंगड़े बहरे होते है उन्हें घर से कोई बाहर नहीं निकालता लेकिन किन्नर जब लिंग से विकलांग पैदा होते ही उन्हें घर से बाहर निकाल दिया जाता है बिना कोई दोष के। किन्नर समाज के लोग अपनी अलिंगी देह को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित, तिरस्कृत और संघर्षमयी जीवन व्यतीत करते है तथा आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में ठोकरे खाते हैं। असीम यतनाओं की सजा उन्हें क्यों दी जाती है। यह लोग परिवार और समाज के साथ नहीं रह सकते इनके लिए शिक्षा, स्वास्थ सेवाओं और सार्वजनिक स्थानों पर पहुँच प्रतिबंधित है। अभी तक उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में प्रभावी ढंग से भाग लेने से बाहर रखा गया है। राजनीति और निर्णय लेने की प्रक्रिया उनकी पहुँच से बाहर है।

2014 में एक ऐतिहासिक फैसले में सर्वोच न्यायालय में उन्हें अधिकार देने कि बात कही,लेकिन कहा उन्हें उनका अधिकार मिला। शरीर एक पुरुष का, भावनाएँ एक नारी की अपनी असल पहचान स्थापित करने के लिए सहसपूर्ण संघर्ष की अद्भुत जीवन यात्रा जो 23 सितंबर, 1964 में शुरू होती है। जब दो बेटियों के बाद चित्तरंजन बंद्योपाध्याय के घर बेटा पैदा हुआ। बेटे सोमनाथ के जन्म के साथ ही पिता के भाग्य ने बेहतरी की ओर तेजी से ऐसा कदम बढ़ाया की लोग हँसते हुए कहते कि अक्सर बेटियाँ पिता के लिए सौभाग्य लाती हैं,लेकिन इस बार तो बेटा किस्मत वाला साबित हुआ। वे कहते हे चित्त! यह पुत्र तो देवी लक्ष्मी है। सोमनाथ जैसे–जैसे बड़ा होता गया उसमें लड़कियों जैसे हरकते, भावनाएँ पैदा होने लगी और लाख कोशिश करने के बाद दबा नहीं सकीं। बिना माता–पिता को बताए घर से बाहर

निकल पड़ी।

बेशक, भारत में कानूनन तौर पर थर्ड जेंडर को मान्यता मिल गयी हो मगर भारतीय समाज ने अभी भी तीसरे लिंग वर्ग को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया है। आज भी समाज में तिरस्कार, हिन भावना और अपमान की नजरों से देखा जाता है। देश की पहली ट्रान्सजेंडर महिला प्रिन्सिपल बनी जिन्होंने विपरीत सामाजिक परिस्थितियों में अपने संघर्ष के बूते पर मुकाम हासिल किया। वर्तमान में मनोबी पश्चिम बंगाल के कृष्ण महिला कॉलेज में बतौर प्रिन्सिपल कार्यरत है।

5–6 साल की उम्र में लड़कियों के कपड़े पहनना अच्छा लगता था। वह कपड़े पहनने से माँ डाँटती लेकिन वह कपड़े पहनकर तृप्त सी हो जाती। जब स्कूल में पढ़ती थी तब तो उनसे कोई दोस्ती नहीं करता था यदि स्कूल नहीं जाती तो बीते दिन की पढ़ाई के बारे में नहीं बताता। ग्रेजुएशन में दाखिला लेने पर भी मजाक बनाया गया। 1995 में उन्होंने पढ़ाना शुरू किया। बच्चों ने नहीं सताया उतना अन्य शिक्षकों ने उन्हें दुख दिया। ट्रांसजेंडरों के लिए पहली पत्रिका निकली थी 'ओब–मानब'जिसका हिन्दी में अर्थ है 'उप–मानव'। 2003 साल में उन्होंने सेक्स बदल दिया। 2006 में पी.एच.डी की। तिरस्कार का घूंट पल–पल पिती रही। उनकी मदद कोई नहीं करता। उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर से बहुत कुछ सीखा है। ट्रांसजेंडर सामाजिक भेदभाव के कारण पढ़ाई से दूर हो जाते है और पूरी जिंदगी नाचकर ही गुजारा करते है। लेकिन कभी भी जीवन में हार नहीं मानी एक बच्चे को गोद लिया 'देबाशीश'नाम है। उन्हें जीवन दिया एक माँ को बच्चा मिला और एक बच्चे को उसकी माँ। अपना जीवन एक कैद की तरह जीने के लिए मजबूर है। रोज आँसू के घूंट पीते है। क्या क्या नाम नहीं दिया उन्हें कोई कहता हिजड़ा, किन्नर छक्का, थर्ड जेंडर, आदि।

"अधूरी देह क्यों मुझको बनाया
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुहाया
किसी का प्यार हूँ न वास्ता हूँ
न तो मंजिल हूँ मैं न रास्ता हूँ
अनुभव पूर्णता का न हो पाया
अजब खेल यह रह–रह धूप छाया"[3]

हिजड़ों का न आवाज है, न नाम है ना परिवार, इतिहास, प्यार, सोच, ना खुशी, ना गम, ना हक ना व्यक्तित्व। किन्नर अदृश्य है न केवल हमारे मुख्यधारा के समाज में बल्कि समाज के मन–मस्तिष्क के भीतर भी।

जीवन में मनुष्य आदमी बनकर जन्म लेता है इसमें स्त्री और पुरुष दोनों आते है लेकिन मनुष्य के कर्म चाहे वह अच्छाई हो या बुराई लेकिन अपने कर्मों से मनुष्य से इंसानबनते है और यही से इंसानियत शुरू होती है। एक स्त्री को हमेशा से उपेक्षित किया गया है और हम आधुनिक समाज में इस बात को भले बदलने की कोशिश करे अगर हम ऐसा सोचते है तो हम गलत है।

कुछ समाज में ऐसे भी लोग है जिनकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया वह है 'किन्नर समाज'। देवता को भी जन्म लेने के लिए स्त्री का गर्भ चाहिए ईश्वर भी स्त्री का ऋणी होता है, लेकिन हम स्त्री के अस्तित्व को बार–बार भूलते है क्यों? यह प्रश्न पूरे मानव समाज से है।

किन्नर नाम सुनते ही लोग हँसते है, मुँह फेरते है देखकर भागते है उन्हें अपशब्द कहते है लेकिन हम यह क्यों भूल जाते है कि यह हमारे ही तरह साधारण इंसान है उन्हें भी जीने का और एक सम्मान का अधिकार है, लेकिन सम्मान की तो बात दूर हम आज भी उन्हें मनुष्य के रूप में अपना नहीं सके हम दूसरे ग्रह से कोई अजनबी की तरह बुरी नजर से देखते है। लेकिन हम बार–बार क्यों भूल जाते है हम किसी को सुख दे नहीं सकते तो दुख देने का भी हमे अधिकार नहीं है किसी को अच्छे शब्द बोल नहीं सकते तो बुरा भी बोलने का हमें अधिकार नहीं है।

जानवर स्वावलंबी होते है लेकिन मनुष्य ऐसा प्राणी है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक परस्वावलंबी होता है,लेकिन फिर भी अपने आप को महान समझते है। अक्सर हम कहते है इस संसार की रचना ईश्वर ने की है हम ईश्वर के संतान है लेकिन हम ईश्वर की रचना पर संदेश कर रहे है।

'y- cromosones' से 'पुरुष' और '.x. cromosones' से 'स्त्री' का जन्म होता है, लेकिन '...,yy' यह 'cromosone disorder' है। इससे किन्नर का जन्म होता है क्या इस तरह जन्म होना उनकी गलती है फिर घृणा दुख पीड़ा उन्हें क्यों? विज्ञान चिकित्सकों ने बताया है कि रक्त स्त्राव और cromones की मात्र समान होने पर किन्नर का जन्म होता है।

हमने अपने बच्चियों को मार दिया कूडे दान में फेक दिया भ्रूण हत्या की। लेकिन उन्होंने बच्चियों को कूड़े दान

से उठाकर उन्हें सुरक्षा प्रदान की। उन्हंब पनाह दी उन्हें पढ़ाया, लिखाया समाज में रहने के काबिल बनाया। अपने पराए हो गए लेकिन अजनबी ने उन्हें नाम दिया। सिर्फ जन्म देने वाली माँ नहीं होती। पुरुष को भी उतना ही अधिकार है वह भी बच्चों को पाल सकते है।

हम शादी, बच्चे के जन्म पर उन्हें घर बुलाते है,क्योंकि वह आशीर्वाद देते है नाचते है लेकिन इनका जन्म सिर्फ इसी लिए हुआ है। यहाँ तक भीख मांगने के मार्ग तक पहुँचा दिया क्यों हम भील जाते है ऊँठा जन्म सिर्फ इसी के लिए नहीं हुआ। उन्हें भी स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार है। कोई उन्हें नौकरी घर नहीं देता, अपना घर परिवार होते हुए भी अपने उन्हें नहीं अपनाते। कोई किराए का घर भी नहीं देता झोपड़ियों में रहने के लिए विवश है। स्टेशन, घर–घर रास्ते पर भिख मांगते है लेकिन,लोग वहाँ पर भी धिक्कारते है। डरते कहते है "ताई मला बघून तुम्ही नाराज तर झाले नहीं नाआ" और लोग भागते है गालियाँ देते है मुह पर दरवाजा बंद करते हैं। हमारे समाज में रहने वाले भाई, पिता, चाचा, मामा उनके पास जाते है लेकिन 'sex worker's का BIik उनपर क्यों? वह अभिशप्त जीवन जीने के पीछे जिम्मेदार कौन है?

किसी भी तरह का आवेदन फार्म भरते समय एक कॉलम आता है जेंडर यानि लिंग का, जिसमें विकल्प होता है महिला, पुरुष और अन्य। 'अन्य' के रूप में जगह मिल गयी लेकिन समाज में उन्हें जगह नहीं मिली। किन्नरों की यह शोचनीय स्थिति, आधुनिकता, समानता और मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता का दम भरने वाले समाज के मुँह पर जोरदार तमाचा है।

भले हम आज अपने आप को मॉडर्न आधुनिक कहे लेकिन सोच विचारों से हम आज भी पिछड़े है। कोई खिलाड़ी जब गेंद को बेट से हिट करता तब सब छक्का मारा कहते है लेकिन इस बात को सकारात्मकता से देखते है लेकिन हमे छक्का यह शब्द गाली की तरह नकारात्मक दृष्टि से क्यों देखा जाता हैं। मनोबी ने बचपन में यह प्रश्न अपनी माँ से पूछा था, तब माँ ने उत्तर दिया था उनका बॉल बाउंड्री से बाहर जाना सकारात्मक है लेकिन यह शब्द तुम्हारे लिए mainstream boundary से बाहर कर दिया जाना हैं। उनके साथ कितने शोषण होते है लेकिन कोई उनके दुख को नहीं समझता। अपने जीवन को अभिशाप की तरह जीने के लिए मजबूर है। दर–दर भटकने के लिए मजबूर है। हम अपने देह को लेकर बहुत इतराते है लेकिन समझ, संवेदना, दुखकातरता नहीं है। हमने अपने बेटियों जन्म के बात कूड़ेदान में फेंक दिया। वही वे लोग बच्चे को पाने के लिए तरसते है। उन्हें घर, परिवार देते है, प्यार देते है नयी जिंदगी देते है शिक्षा देते है। सुभ अवसर पर उनकी जरुरत होती है उनका आशीर्वाद हमारे लिए मूल्यवान है लेकिन वह नहीं। अगर देखा जाए तो बुराई उनमें नहीं हम में है हमारे दृष्टिकोण विचारों में है हमने उनके प्रति हमारे मस्तिष्क में गलत विचारधारा बनाई है।

किन्नरों ने दिया शाप लगता है ऐसे लोग कहते है लेकिन यह सही है जिनको हमने जन्म से दुख दिया दुखी आत्मा के ह्रदय से निकला शाप तो जरूर लगेगा। वह एक दुखी आत्मा है। ईश्वर अर्धनारीश्वर शिव को हम पूजते है लेकिन उनको नहीं अपनाते। जितनी प्रताड़ना उनको पहले नहीं हुई उतना दुख हम आज उन्हें दे रहे है। कोई ठीक से नहीं बोलता, साथ में कोई नहीं बैठता जब किसी आम व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है तब कितना बुरा लगता है। किसी ने कुछ कहा हम सहन नहीं कर सकते फिर वह तो दिन–रात लोगों की नफरत सहते है। उनकी शव यात्रा रात में निकलती है ताकि किसी भी मनुष्य की नजर उन पर ना पड़े अन्यथा अगले जनम में फिर से किन्नर का जन्म होता है। मृत्यु के समय उन्हें चप्पल से मारा जाता है। अपने जीवन में वे कितना दर्द सहते है। मृत्यु के बाद भी। कितने होशियार होते है कितनी कलाएँ उन्हें आती है वे गाते है नाचते है और भी कई चिजे उन्हें आती है लेकिन हमने उन्हें सामने आने का कभी मौका ही नहीं दिया।

कोई भाड़े का घर भी नहीं देते आज हमने झुग्गी बस्ती में रहने के लिए विवश कर दिया है। पैसे मांगने पर लोग कहते है पैसे नहीं कमा सकता भिख मांगने की आदत पद चुकी है लेकिन इस बात पर विचार किया जाए तो मुफ्तखोरी भी हमीने उन्हें सिखायी हैं। अगर कोई काम नौकरी घर परिवार नहीं रहा तो कोई व्यक्ति क्या करगा जो दूसरों को आशीर्वाद देते है उन्हें आशीष देते है उनकी झोली भर देते है लेकिन उनके दुख को कोई नहीं समझता। कितना बुरी तरह सुलुग किया जाता है हम उन्हें मरने के कगार पर पहुँचा दिया है। उसके आँसू किसी को नहीं दिख रहे कि वह किस परिस्थिति से गुजर रहे है। स्त्री विमर्श,आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श, बाल विमर्श लेकिन किन्नर विमर्श यह ज्वलंत विषय ही और इसी विषय के जरिए हम उनके दुख को काम तो नहीं कर सकते लेकिन हम इससे रूबरू अवश्य होंगे।

संदर्भ सूची

1. http://hi-m-wikipedia-org/wiki/किन्नर
2 पुरुष तन में फंसा मेरा नारि मन, – मनोबि बंदोपाद्याय राजपाल एंड सन्ज 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली –110006 प्रथम संस्करण–2018
3 थर्डजेंडर विमर्श : संपादक शरद सिंह, सामयिक प्रकाशन 3320–21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली–110002, संस्करण–2019
4 चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं नलसोपारा, सामयिक पेपरबॉक्स, नई दिल्ली, 2017

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 77-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कॉलगर्ल्स समस्या और मानसिकता

डॉ. कुमार पुष्कर सिंह
सहा. प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
जे.एन.कॉलेज, धुर्वा, राँची–834004
राँची विश्वविद्यालय, राँची

देश के लगभग हर राज्य के किसी न किसी इलाके में देह व्यापार का धंधा अपने पैर पसारे हुए है, जहाँ लाखों महिलाएँ दुनिया से कटकर बेबस जिंदगी जी रही हैं। ऐसी बहुत ही कम महिलाएँ होती हैं जो अपनी मर्जी से देह व्यापार के धंधे में आती हैं। ज्यादातर महिलाएँ ऐसी ही होती हैं जिनके सामने या तो कोई मजबूरी होती है या अनजाने ही इन्हें इन बदनाम बाजारों में बेच दिया जाता है। भारत में वेश्यायवृत्ति का चलन आज का नहीं बल्कि सदियों से चला आ रहा है। प्राचीन भारत में 'नगरवधू' हुआ करती थीं। दूसरीं सदी में ईसापूर्व में लिखी गई संस्कृत की कहानी मृच्छकटिकम में वैशाली की नगरवधू इसी काम के लिये जानी जाती है।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार देश में 30 लाख कॉल गर्ल्स हैं। वहीं ह्यूमन राइट्स वॉच की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में करीब 2 करोड़कॉल गर्ल्स ६ सेक्स वर्कर है, जो इस पेशे से जुड़ी हुई हैं। ज्यादातर कॉल गर्ल्स का कहना है कि लॉक डाउन ने हमें परिवार समेत भुखमरी की कगार पर ला दिया है। सरकार ने रातों रात लॉकडाउन कर दिया। हमें इतना भी समय नहीं मिला की हम आने वाले दिनों की तैयारी कर सकें।

कॉल गर्ल्स देश की एक वो बड़ी आबादी है जो देश में मौजूद होने के बाद भी सरकार की मदद की तमाम योजनाओं में शामिल नहीं हैं। हजारों कॉल गर्ल्स/सेक्स वर्कर्स को सरकारी राशन इसलिए नहीं मिल पाता क्योंकि इनके पास राशन कार्ड नहीं हैं। इनके कमाने का जरिया ऐसा है जो इस लॉकडाउन की स्थिति में बिल्कुल भी संभव नहीं हैं। इन गलियों में काम करने वाली कितनी ही सेक्स वर्कर्स एचआईवी पॉजिटिव भी हैं और दूसरी बीमारियों से पीड़ित हैं पर इनके पास अस्पताल जाने तक के पैसे नहीं रह गए है।

ऑल इंडिया नेटवर्क ऑफ सेक्स वर्कर संगठन से जुड़े रहने वाले लोग सेक्स वर्करों के हक और अधिकारों को लिए काम करते है। उन्होंने पाया है कि होम बेस्ड सेक्स वर्कर्स को बहुत परेशानिया हैं। जीबी रोड पर कुछ सेक्स वर्कर के पास स्वयं सेवी संस्थाएँ पहुँचकर मदद भी कर रही हैं, लेकिन इन सेक्स वर्कर के बारे में तो कोई कुछ जानता भी नहीं है। इनकी तो गिनती करना भी मुश्किल है। अगर सिर्फ एक कॉलोनी की बात करें तो लगभग 500 महिलाएँ होम बेस्ड सेक्स वर्कर्स हैं।

सेक्स वर्कर का कारोबार भी तीन हिस्सों में बंटा है। पहला है ब्रोथल, दूसरा होम बेस्ड जहाँ महिलाएँ घर पर ही अपने ग्राहक खुद तय करती हैं। तीसरा है स्ट्रीट बेस्ड और ब्रोकर बेस्ड– यानी की वो जो दलालों के सहारे काम करती हैं। ऑल इंडिया नेटवर्क ऑफ सेक्स वर्कर संगठन इन्हीं सेक्स वर्कर की आवाज उठाता है। स्वयंसेवी संस्थाओं से जितना हो सकता है उतना राशन इन सेक्स वर्करों तक पहुँचता है, लेकिन ये राशन भी कितने दिन तक चलेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ सेक्स वर्कर किराए के कमरों में रहती हैं। उनके लिए किराया देना भी मुश्किल हो रहा है। देशभर की लगभग पांच लाख सेक्स वर्कर जुड़ी एक संगठन से जुड़ी हैं। ये संगठन 16 राज्यों में काम करता है इस संगठन में कई राज्यों से 108 कम्यूनिटी बेस्ड संगठन जुड़े हैं। इस संगठन की संयुक्त सचिव सुल्ताना बेगम राजस्थान के अजमेर जिले में 580 रजिस्टर्ड सेक्स वर्कर के लिए आवाज उठाती हैं। उनका कहना है कि जितनी भी महिलाएँ इस पेशे से जुड़ी है उनमें 60–70 प्रतिशत लोगों के परिवार को पता ही नहीं है कि वो क्या काम करती हैं।

परिवारों को बस इतना पता है की वो जहाँ काम करती हैं उन्हें वहाँ पैसा तो मिलेगा ही। इस समय इनकी परेशानी बढ़ गई है क्योंकि खर्चा चलाने का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

आगे सुल्ताना कहती हैं कि इन सेक्स वर्करों को लोग बहुत अमीर समझते हैं, पर उनकी तकलीफ बस वहीं जान सकती है। इनके काम को काम का दर्जा नहीं मिला इसलिए सरकार की किसी योजना का फायदा भी इन्हें नहीं मिलता। लॉकडाउन के दौरान तो सरकारी मदद के बिना तो भूखे मरने की नौबत है हालांकि अब अन लॉकडाउन 2 भी शुरू हो चुका है पर सहमे हुए ग्राहकों के चलते लंबे समय तक सरकारी, गैरसरकारी संस्थाओं की मदद पर ही हमारी आस टिकी हुई है।

ऑल इंडिया नेटवर्क सेक्स वर्कर संगठन के को ऑर्डिनेट अमित कुमार के मुताबिक देश में कोरोना जब शुरु हुआ तो जीबी रोड दिल्ली में रहने वाली करीब 60 फिसदी सेक्स वर्कर्स अपने घर जा चुकी थीं। अब वहाँ 40 फिसदी औरतें ही बची हैं। जिनकी कोठा मालकिन खाने का इंतजाम तो कर रही है, लेकिन किराए में कोई छूट नहीं दी है। अभी ये महिलाएँ दोगुने कीमत पर ब्याज लेकर अपना काम चला रही हैं।

अमित ने लॉकडाउन हटने के 5–6 महीने के बाद की स्थिति का भी अनुमान लगा लिया है। उनका मानना है की जब सामान्य होने के बाद भी उनके किराए, राशन और पलायन की समस्या बनी रहेगी। जो घर जा चुकी हैं वो कोरोना के डर से वापस नहीं आने वाली। जो यहाँ रह गईं हैं उन्हें जल्दी ग्राहक नहीं मिलेंगे। लॉकडाउन के चलते इनकी स्थिति बहुत खराब हो गई है और इनका पेट भरने वाला भी कोई नहीं है।

दुनिया के तमाम दूसरे रिश्तों से दूर ये महिलाएँ न किसी की मां होती हैं, न बहन, न बेटी और न पत्नी, इन्हें सिर्फ वेश्याओं के नाम से जाना जाता है। अपनी इज्ज्जत को दांव पर लगाकर समाज के जाने कितने रसूखदार लोगों का सम्मान बचाए रखने का काम करती हैं ये। लेकिन तंग गलियों और स्टोररूम नुमा ऐसे कमरों में रहने वाली ये वेश्याएँ, जहाँ सूरज भी अपनी किरणों को भेजने से गुरेज करता है का भारत में बहुत बुरा हाल है।

लॉकडाउन के बाद यौनकर्मियों पर रोजगार का संकट गहराया। ऑल इंडिया नेटवर्क ऑफ सेक्सवर्कर्स (A INSW) की अध्यक्ष कुसुम कहती हैं कि NA CO उन यौनकर्मियों की संख्या बता रहा है जिनके साथ वो कार्यक्रम संचालित कर रहा है. लेकिन ऐसी बड़ी संख्या उन यौनकर्मियों की है जो नाको के कार्यक्रम में खुद को रजिस्टर नहीं करवाती हैं. या अपने सीमित संसाधनों की वजह से नाको उन तक पहुँच नहीं पाता।

कुसुम का मानना है कि देश में यौनकर्मियों की संख्या 30 लाख से भी ज्यादा है. सामान्य नजरें यौनकर्मियों को सिर्फ रेड लाइट इलाकों के कमरों तक देख पाती हैं मगर यौनकर्मियों की एक बहुत बड़ी संख्या घरेलू महिलाओं, घरेलू कामगारों, प्रवासी महिलाओं, दिहाड़ी मजदूर, कॉलेज में जाने वाली लड़कियों, कॉलगर्ल्स वगैरह की है. जिन पर आम समाज ज्यादा ध्यान नहीं देता. असंगठित मजदूरों की तरह काम करने वाली सैकडों महिलाएँ, काम ना मिल पाने या शोषण को ना सहन करने की स्थिति में यौनकार्य को चुनती हैं. इन महिलाओं को भी कई बार गिनती में शामिल नही किया जाता।

लॉकडाउन के साथ अंसगठित क्षेत्रों में काम करने वाले तकरीबन 14 करोड़ लोगों पर नौकरी जाने का खतरा मंडरा रहा है. सवाल ये है कि जब भारत को मिलाकर दुनिया के कई देशों में यौनकार्य को काम का दर्जा ही नही दिया गया, तो यौनकर्मियों की इस 30 लाख की संख्या को बेरोजगारों में शामिल करना भी छूट ही गया होगा? सवाल सिर्फ यौनकर्मियों की संख्या का नही, सवाल उनके परिवार के सदस्यों का भी है, जिनको जोड़ा जाए तो प्रभावित लोगों की संख्या करोड़ों में पहुँच जाती है. अब बात लाखों की नही, बल्कि करोड़ों की होनी चाहिए।

महिला और बाल विकास मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 30 लाख से ज्ध्यादा महिलाएँ देह व्यापार में लिप्त हैं। जिसमें लगभग 36 प्रतिशत महिलाएँ ऐसी हैं जो 18 साल की उम्र के पहले ही इस व्यापार में शामिल हो गईं। जबिक ह्यूमन राइट्स वॉच की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में लगभग 2 करोड़ सेक्स वर्कर हैं, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस धंधे में शामिल हैं।

देश के पूर्वी भाग के सबसे बड़े महानगर सोनागाछी (कोलकाता) को एशिया का सबसे बड़ा रेडलाइट एरिया माना जाता है। यहाँ लगभग 3 लाख महिलाएँ देह व्यापार से जुड़ी हैं। दूसरे नंबर पर मुंबई का कमाठीपुरा है जहाँ 2 लाख से अधिक सेक्स वर्कर हैं। फिर दिल्लीए की जीबी रोड, आगरा का कश्मी री मार्केट, ग्वालियर का रेशमपुरा, पुणे का बुधवर पेठ हैं। छोटे शहरों की बात करें तो वाराणसी का मडुआडिया, मुजफ्फरपुर का चतुर्भुज स्थाीन(आंध्र प्रदेश के पेड्डापुरम व गुडिवडा, सहारनपुर का नक्काकसा बाजार इलाहाबाद का मीरागंज, नागपुर का गंगा जुमना और मेरठ का कबाड़ी बाजार भी इसी बात के लिए प्रसिद्ध है।

आंकड़ों के मुताबिक, देश में रोजाना लगभग 2000 लाख रुपये का देह व्यापार होता है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के एक अध्ययन के मुताबिक भारत में 68 प्रतिशत लड़कियों को रोजगार के झांसे में फंसाकर वेश्यालयों तक पहुँचाया जाता है जबकि 17 प्रतिशत लड़कियों को शादी का वादा करके इस धंधे में ढकेल दिया जाता है। मुम्बई पुलिस के दस्तावेजों के मुताबिक बाहर से आकर यहाँ वेश्यावृत्ति में लिप्त युवतियों में उज्बेकिस्तान की युवतियां सबसे ज्यादा हैं।

भारत में वेश्यावृत्ति या देहव्यापार अभी भी अनैतिक देहव्यापार कानून के तहत आते हैं। हालांकि देश में समय–समय पर इस बात को लेकर उच्चस्तरीय बहसें चलती रहीं हैं कि क्यों न वेश्यावृत्ति को कानूनन वैध बना दिया जाए। यानी यह कानून व्यर्थ रहा, यह स्वीकार करने के बाद उसकी व्यर्थता के कारणों को जांचने के बजाय इस पूरे धंधे से दंड व्यवस्था अपनी जिम्मेदारी ही समेट ले? राज्य व्यवस्था स्त्रियों के हिंसक उत्पीड़न, शोषण और खरीदे बेचे जाने की पाशविक परंपरा को अपनी मूक असहाय सहमति दे दे?

'भारतीय दंडविधान' 1860 से 'वेश्यावृत्ति उन्मूलन विधेयक' 1956 तक सभी कानून सामान्यतया वेश्यालयों के कार्यव्यापार को संयत एवं नियंत्रित रखने तक ही प्रभावी रहे हैं। इस कानून के अनुसार, वेश्याएँ अपने व्यापार का निजी तौर पर यह काम कर सकती हैं लेकिन कानूनी तौर पर जनता में ग्राहकों की मांग नहीं कर सकती हैं। इस कानून का उद्देश्य भारत में यौन कार्यों के विभिन्न कारणों को रोकना और धीरे–धीरे वेश्यावृत्ति को खत्म करना है। बीबीसी की एक रिपोर्ट के मुताबिक भी भारत में वेश्यावृत्ति अवैध है। अगर कोई व्यक्ति किसी सार्वजनिक स्थान पर अश्लील हरकत करते पाया जाता है तो भी उसके खिलाफ सजा का प्रावधान है।

अनैतिक आवागमन (रोकथाम) अधिनियम – आईटीपीए 1986 वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए बनाया गया है। इस कानून के अनुसार,

सेक्स वर्कर के लिए – जो महिला किसी व्यक्ति को शारीरिक संबंध बनाने के लिए उकसाएगी उसको दंड दिया जाएगा। इसके अलावा कॉल गर्ल्स अपने फोन नंबर को सार्वजनिक रूप से पब्लिश नहीं कर सकतीं, ऐसा करने पर उनको 6 महीने के कारावास व जुर्माने का प्रावधान है। किसी सार्वजनिक स्थान के पास देह व्यापार करने पर सेक्स वर्कर को 3 महीने की सजा और जुर्माने का प्रावधान है।

ग्राहक के लिए – एक ग्राहक अगर किसी वेश्या के साथ सार्वजनिक स्थान के 200 गज के दायरे में संबंध बनाते पाया जाता है या उस पर यौन संबंधों में सलंग्न होने का आरोप लगता है तो उसे तीन महीने के कारावास के साथ जुर्माना देना होगा। अगर सेक्स वर्कर 18 साल से कम उम्र की है तो ग्राहक को कम उम्र के हैं तो ग्राहक को 7 से 10 साल की सजा का प्रावधान है।

वेश्यालय चलाने पर – कोई व्यक्ति अगर वेश्यालय चलाता है या किसी से चलवाता है या वेश्यालय चलाने में मदद करता है तो उसे 3 साल का सश्रम कारावास व 2000 रुपये का जुर्माना होगा। यदि वह व्यक्ति दोबारा इस अपराध का दोषी पाया गया तो उसको कम से कम 2 साल व अधिक से अधिक 5 साल का कठोर कारावास व 2000 रुपये जुर्माना देना होगा।

वेश्याओं की स्वास्थ्य दशा को लेकर हमेशा से ही बहस होती रही है। भारत में एचआईवी संक्रमण के बढ़ने का कारण इन्हें ही माना जाता है। हालांकि पिछले दशक में एचआईवी संक्रमित वेश्याओं की संख्या में गिरावट आई है। एशिया के सबसे बड़े रेड लाइट एरिया सोनागाछकी में इनके स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर एक रोकथाम कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत 5,000 वेश्याओं को जागरूक किया गया है।

दो लोगों की टीम यहाँ की वेश्याओं को उनको बीमारियों के बारे में, कंडोम के इस्तेमाल के सही तरीके और इसके फायदे के बारे में बता रही है। इस कार्यक्रम को 1992 में शुरू किया गया था तब सिर्फ 27 प्रतिशत वेश्याएँ कंडोम का इस्तेमाल करती थीं लेकिन 2001 तक 86 प्रतिशत वेश्याएँ कंडोम का इस्तेमाल करने लगीं। मुंबई व पुणे सहित देश के बाकी हिस्सों में चल रहे रेड लाइट एरिया में भी इस तरह के जागरूकता कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

भारत में वेश्यावृत्ति को कानूनी मान्यता नहीं प्राप्त है इसलिए इन्हें किसी भी तरह के विशेष अधिकार भी नहीं दिए गए हैं। वेश्याओं के भी सिर्फ वही अधिकार हैं जो आम नागिरकों को मिलते हैं। हालांकि अगर यहाँ वेश्यावृत्ति को कघनूनी मान्यता प्रदान कर दी गई तो वेश्याएँ भी श्रमिक कघनून के अंदर आ जाएँगी और उन्हें भी बाकी मजदूरों को मिलने वाले विशेषाधिकार मिल जाएँगे। समय–समय पर यहाँ वेश्यालयों को कघनूनी मान्यता देने की मांग उठती रहती है।

10 मार्च 2014 को ऑल इंडिया नेटवर्क ऑफ सेक्स वर्कर्स ने एक संगठन बनाकर देश के 16 राज्यों में एक कैंपेन चलाई थी, इस कैंपेन में 90 सेक्स वर्कर्स शामिल थीं। वह इस बात की ओर सरकार और देश का ध्यान आकर्षित करना चाहती थीं कि उन्हें समाज में सुरक्षा प्राप्त नहीं है। उनका कहना था कि समाज के बाकी लोग जिस तरह से कोई त्योहार या अवसर में शामिल होते हैं हमें उस तरह से भी शामिल नहीं किया जाता। हम बाकी दूसरों कामों की ही तरह देह व्यापार करते हैं इसलिए हमें भी दूसरे कर्मचारियों की तरह पेंशन मिलनी चाहिए और यौन कार्य को भी सार्वभौमिक पेंशन योजना के तहत लाया जाना चाहिए। हालांकि इनकी किसी भी मांग को अभी तक पूरा नहीं किया गया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कॉल गर्ल्स की समस्याएँ भी आमलोगों के जितनी ही हैं परंतु समाज मदद करने से गुरेज करता है स वह उनका लाभ उठाने को कोई भी जोखिम मोल लेने को तैयार हो जाता है पर मदद को हाथ बढ़ाने पर ठिठक जाता है स जबतक सोच की 'hipoocracy' खत्म नहीं होगी कॉल गर्ल्स की समस्याएँ समाप्त होने के आसार कम ही दीख पड़ते हैं स

संदर्भ

1. सरिता , जनवरी, 2020
2. वेबदुनियाडॉटकॉम
3. बीबीसीहिन्दीडॉटकॉम, 2014
4. इंडियाडॉटकॉम, 2018
5. सत्यकेतन समाचारों

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 81-86

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दक्षिणी राजस्थान की जनजातीय लोक संस्कृति : एक अध्ययन

शांति लाल खराडी
शोधार्थी (हिंदी विभाग) सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) पिन कोड नंबर : 313001
ई–मेल : kharadi0011@gmail.com
मोबाइल नंबर : 7742120858

प्रस्तावना

राजस्थान का लोक–जीवन अपनी पारंपरिक जीवनधर्मिता, सामाजिक सरोकार एवं सांस्कृतिक रंग–वैभव की दृष्टि से बेजोड़ रहा है। संस्कृति का निर्माण संस्कारों से होता है। संस्कारों की दृष्टि से भारतीय समाज आदिकाल से ही अत्यंत समृद्ध रहा है। वैदिक काल तो सांस्कृतिक उत्कर्ष का काल था। सामाजिक रीति–रिवाज, परंपराओं, प्रथाओं लोक संस्कृति जिसमें इतनी अधिक विविधताएँ समायी हुई हैं कि सबका ज्ञान होना कठिन है। किसी देश, समाज या समुदाय के जनजीवन में व्याप्त गुणों एवं विशिष्टताओं के समग्र रूप का नाम ही संस्कृति है, जो उनके व्यवहार, रहन–सहन, नृत्य, गायन, साहित्य एवं कला आदि में स्पष्टतरू दिगदर्शित होती है। संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की देन नहीं है, इसके निर्माण में यथाशक्ति सभी का योगदान रहता है। इसी संस्कृति के बारे में कहा गया है कि––– ''मनुष्य अलग–अलग क्षेत्रों में रहते हुए अपनी पृथक भाषा, लिपि और दर्शन बनाकर एक नई जीवन–पद्धति का निर्माण कर लेते हैं जो उनकी लोक संस्कृति कहलाती है।''[1]

आदिवासी समाज एवं उनकी लोक संस्कृति के बारे में अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि आदिवासी से अभिप्राय देश के मूल एवं प्राचीनतम निवासियों से है। भारतीय संस्कृति कोश में आदिवासी शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है–– ''ऐसे निवासी जो किसी क्षेत्र के मूल निवासी हो और प्राचीनतम निवासी हो। दूसरी कोटि के व्यक्तियों के लिए किसी क्षेत्र का मूल निवासी होना आवश्यक नहीं है। वस्तुतः आदिवासी जल, जंगल और जमीन से जुड़ा आदमी है। आमतौर पर देश की सामान्य धारा से संबद्ध होते हुए भी इनके सामाजिक रीति–रिवाज व संस्कृति आज भी भिन्न हैं।''[2] ये प्रारंभ से ही दूरस्थ एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते रहे हैं, परिणाम स्वरूप आदिवासियों पर शहरी सभ्यता एवं विकास के साधनों का बहुत कम प्रभाव पड़ा है। इसी कारण ये सदैव ही प्रगति के नवीन साधनों के अभाव से ग्रस्त रहे हैं। आदिवासी लोक संस्कृति में इस समुदाय के लोगों की कोई व्यक्तिगत पहचान नहीं होती अपितु सामूहिक व्यवहार वांछनीय होता है।

इस समाज के दीनहीन, दलित, पिछड़े वनवासी भीलों की एक अलग ही संस्कृति है। इन जातियों की अलग–अलग जीवन–शैली, जाति–समुदायों के नृत्य, गीत, भाषा, कला आदि की अलग ही विशिष्टता है। इस समाज की लोक संस्कृति की झलक इनके लोकगीतों, लोकनृत्यों, लोकनाट्यों, लोकवाद्य, और लोक कलाओं में झलकती है। लोकगीत किसी भी समुदाय विशेष में गाए जाने वाले उन गेय पदों को कहते हैं जो प्रचलित रागों से बंधकर धीरे–धीरे आमतौर पर समस्त समुदाय द्वारा ग्रहण कर लिए जाते हैं। लोकगीतों की एक लंबी सामाजिक सांस्कृतिक परंपरा होती हैं जो सदियों से अविरल धारा के रूप में उन समुदायों और समूहों में बहती आ रही है। इस समाज की सामाजिक सांस्कृतिक परंपरा में लोकगीतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

लोक संस्कृति के नाम पर जो कुछ है वह इन्हीं समुदायों के पास हैं और इन्हीं समुदायों ने आज तक लोक संस्कृति

की विरासत को सहेज कर रखा है। बिना किसी दबाव के ये सांस्कृतिक परंपराएँ आज तक जीवित बची हुई हैं। जिसका एक कारण यह है कि इस समाज के लोगों की सांस्कृतिक परंपराओं में एक आस्था रही है। दमित, शोषित और वंचित समुदायों के पास लोकगीतों के रूप में अभिव्यक्ति की एक ऐसी सामाजिक सांस्कृतिक परंपरा रही है जो इन समुदाय की एक थाती है। लोक साहित्य की समस्त विधाओं में लोक संगीत, नाटकों तथा नृत्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन विधाओं में लोकजीवन, मनोरंजन और संस्कृति का अनुपम रूप निहारने को मिलता है। इन विधाओं के लिए न कोई शास्त्र रचे गए हैं, न इनके प्रणेता कोई ऋषि–मुनि हैं। इनके अंतर्गत जो गीत या नाच हैं, उनके रचयिता भी अज्ञात हैं। सामुदायिक सौहार्द और परंपरागत अभ्यास ने इन कलाओं को जीवित बनाए रखा है। इसी लोक संस्कृति के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय ने अधिक दिग्दर्शित किया है कि–– ''लोक संस्कृति किसी भी देश का वास्तविक चेहरा होती है। भले ही वह अलिखित हो लेकिन कई बार लिखित साहित्य से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण और शाश्वत होती है। भारत इसी दृष्टि से बहुत समृद्ध है कि उसमें जाने कितनी लोक परंपराएँ जीवंत हैं।''[3]

आदिवासियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा के विकास में लोकगीतों, लोकनृत्यों, ख्यालों व नाट्यों का प्रमुख स्थान है। पर्वों व धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में ऐसे अनेक गीत तथा नृत्य उनके मनोरंजन के साधन हैं। सामाजिक जीवन और संस्कृति के प्रतीकों के बीच कोई सीमारेखा नहीं खींची जा सकती। इनकी अभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों में सर्वत्र मिलती है। लोक का व्यक्त रूप मानव है, अतएव लोक संस्कृति व्यावहारिक जीवन का परिष्कृत रूप है। आदिवासी गीतों में कला व अनुभूति दोनों होती है। भावनाओं के प्रबल आवेग में हृदय में दबी पीड़ा इनके गीतों में पिघलकर फूट पड़ती है। इनके गीतों में कहीं कोयल की कुहू–कुहू की ध्वनि सुनाई देती है, तो कहीं मयूरों की कूक, कहीं नदी–नालों की कलकल ध्वनि सुनाई देती हैं, तो कहीं सावन की वर्षा भिगोती हैं तो कहीं प्रचंड मार्तंड की भीषण ऊष्मा महसूस होती है।

जनजातीय लोक संस्कृति का पहला और प्रमुख स्तंभ 'लोकगीत' है। इनके जीवन की संभावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ये लोकगीत इस समाज की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा, जीवन–शैली और उनकी उत्सवधर्मिता को अभिव्यक्त करते है। इन आदिवासी समुदायों से जुड़े तमाम विषय इनके गीतों में देखे जा सकते हैं। ये गीत समय और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं और देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार इन गीतों के विषय में भी बदलाव होता रहता है। आदिवासी समाज में गाये जाने वाले गीतों में पूरा समाज दर्शन अभिव्यक्त होता है। जैसे–– आदिवासी महिला इस गीत में अपना सगा भाई नहीं होने की आत्म–संवेदना की भावाभिव्यक्ति को इस प्रकार प्रकट करती है–

मोए परणावी वागड़ धरती मोए कोण लेवा आवे हे / भगवानों के घर में टोटो भाइडो कोइने लखियो हे
माडी जणियो भाइडो वे तो मोए लेवा आवे हे / काका रे बाबा वालो भाइडा डोडा डोडा जावे हे।[4]

इस समाज में एक लड़की का बाल–विवाह हो गया है और वह अपना दुरूख अभिव्यक्त करती हुई अपने पिता से कहती है कि मुझे रिश्ते कैसे निभाने हैं, यह मुझे मालूम नहीं है–

''औ घेर ना धणी नो खोज जाजे मई नानी परणावी रे / पाणी लावता नई आवे मई नानी परणावी रे / हामले घाटे हगवाडो मई नानी परणावी रे / रोटला करता नई आवे मई नानी परणावी रे / औ मई ननदी कहता नई आवे मई नानी परणावी रे / बुहारो काड़ता नई आवे मई नानी परणावी रे / औ वाइदो दड़ता नई आवे मई नानी परणावी रे।''[5]

गवरी नृत्य का लोकगीत जिसमें कहा जा रहा है कि वह मेवाड़ से चली है और आ रही है। मांदल (मृदंग) बज रही है धीरे–धीरे, उसके हाथ में डोरा है, कंघा है और पूछ रही है कि कोई काम हो तो बताओ मैं बाजार जा रही हूँ, वह उदयपुर की पोल पर झूम रही है और धीरे–धीरे मांदल बज रही है–––

''मेवाड़ी हूँ चालीए आवे रे आवे आवे ओड़ा मोड़ लो / वदल पिमली रे वाजे जांजर वाजे हे / हाथ में दोरो ने कांगसी रे आवे / थारे पूछे कई काम रे कामे जऊ बडे / बजार ओ वदल पिमली वाजे रे / उदेपुर नी पोल जोला खाए वदल पिमली रे जांजर वाजे।''[6]

होली के त्योहार पर गाये जाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ–

''आई रे सोदरणी रात, होलीयो कुण जाई रे / रेमणा सरकी रात, धोरी रमणा आवो रे।''[7]

जनजातीय लोक संस्कृति का दूसरा प्रमुख स्तंभ 'लोकनृत्य' है।''यह मानव मन की वह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके हर्षोल्लास का अतिरेक हो जाता है तो वह अवश्य ही उछलता–कुदता व नाचता है। लहलहाती फसलों को हवा में झूमती देखकर किसान का मन नृत्य नहीं करना चाहेगा। ढोल, चंग, नगाड़ों आदि की ताल पर कदम स्वतः ही थिरकने लगते हैं। मयूरों का मस्ती में नाचना सदैव सभी की आँखों में चमक भरता है। ऐसी अनुकूल स्थितियों में लोकनृत्यों

का आविर्भाव हुआ है, ऐसा विद्वानों का मानना है।''[8]

आदिवासियों की सांस्कृतिक परंपरा में लोकनृत्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। राजस्थान के आदिवासी क्षेत्र का 'गैर' नृत्य अत्यधिक लोकप्रिय है। भील, मीणा, गरासिया आदि जातियाँ 'थाकना शैली' में ढोल नृत्य का आयोजन करते हैं। आदिवासी भीलों में विवाह के अवसर पर हाथिमना, बूढ़िया देवता की आराधना में गवरी, होली के अवसर पर गैर, नेजा आदि नृत्यों का आयोजन होता है। आज भी हम इनके नृत्यों को विभिन्न अवसरों पर देख सकते हैं।

जिस प्रकार आदिवासी समुदाय से जुड़े तमाम विषय उनके गीतों में देखे जा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार यहाँ का लोक रंगमंच बड़ा समृद्ध और वैविध्यपूर्ण थाती लिए हुए हैं जिसका जीवंत उदाहरण यहाँ के लोकनृत्य हैं। लोकनृत्यों को जो बहुविध रूप यहाँ प्रचलित हैं, उनका सामाजिक, शास्त्रीय, वैज्ञानिक और लोकतात्विक पक्ष भी मौजूद है। राजा–महाराजाओं के संरक्षण और जजमानी प्रथा के कारण यहाँ बहुत से नृत्य फले–फुले और अपनी पहचान बनाए रह सके। राजस्थान के लोकनृत्य अपने में क्षेत्रीय और आँचलिक विशेषता समेटे हुए है। लोकनृत्य मुख्यतः समूह की रचना है। समूह की भागीदारी ही इनका अभीष्ट है। लोकनृत्य सामुदायिक रूप में ही फलते–फूलते एवं फलित होते हैं। आदिवासी लोकनृत्य अपनी परंपरा की पैठ लिए अति सरल और सहजभावी होते हैं। आदिवासी लोकनृत्यों में सामुदायिक गायन और नृत्य का अद्‌भुत संयोजन होता है। मेवाड़ में मुख्य रूप से भील, मीणा और गरासिया जातियाँ पाई जाती हैं। इन जातियों द्वारा प्रमुख पर्वों और शादी के मौकों पर विभिन्न नृत्य किए जाते हैं। इन लोकनृत्यों की विरासत इन जातियों के मध्य मौजूद हैं जिनकी झलक इन नृत्यों के प्रदर्शन के समय देखने को मिलती हैं। मेवाड़ क्षेत्र के आदिवासियों द्वारा अनेक लोकनृत्य किए जाते हैं जिनमें से कुछ प्रसिद्ध है और कुछ इन जातियों के बीच ही प्रचलित हैं। आदिवासियों के प्रमुख नृत्य निम्न प्रकार है–

नेजा– होली के तीसरे दिन खेरवाड़ा तथा डूंगरपुर की मीणा जाति में नेजा नाम की संगीतमयी नृत्य क्रीड़ा प्रचलित है। इस नृत्य शैली में खुली जगह पर एक खंभा रोपकर उसके ऊपर नारियल बाँध दिया जाता है। महिलाएँ अपने हाथ में लकड़ियाँ लेकर इसकी सुरक्षा करती हैं जबकि पुरुष उस नारियल को लेने की कोशिश करते हैं। स्त्री नर्तकियाँ उनकी पीठ पर छड़ी या कौड़े मारकर उन्हें भगाने का प्रयास करती हैं। इस अवसर पर ढोल बजाकर थाप दी जाती है। इस खेल–नृत्य के माध्यम से महिलाओं की बहादुरी और शक्ति संपन्नता देखने को मिलती है। [9]

गैर– गैर मेवाड़ के वागड़ क्षेत्र में प्रमुखता से किया जाने वाला नृत्य है। [10] होली पर्व पर मीणा जाति के पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य अत्यंत ही आकर्षक होता है। फाल्गुन मास के प्रारंभ होते ही ढाणियों में उल्लास का वातावरण छा जाता है और मस्ती में डूबे हुए युवक पूरे उत्साह के साथ गैर नृत्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं। प्रत्येक मीणा युवक के पास एक लट्ठ होता है जिसे 'खांडा' भी कहा जाता है और जिसके ऊपरी सिरे पर रेशमी रुमाल और घुंघरू बाँध दिये जाते हैं। गैर खेलते समय इन घुंघरों की झनझनाहट नृत्य को और संगीतमयी बनाती है। इस नृत्य में वृत्त बनाकर एक–दूसरे पर खांडे का प्रहार करते हुए गीत गाए जाते हैं। [11] इन गीतों को 'फाग' कहा जाता है। ढोल, थाली और मांदल इसके प्रमुख वाद्य यंत्र है जो नृत्य को लय और गति देने का काम करते हैं।

राड़– वागड़ अंचल में होली पर राड़ खेलने की परंपरा है जो पत्थरों, कंडों या जलती लकडियों से खेला जाता है। इस खेल में दो दलों के बीच एक फूट गड्ढा खोदकर नारियल गाड़ दिया जाता है और फिर दोनों ओर के खिलाड़ी अपने हाथों में कंडे लेकर एक–दूसरे पर टूट पड़ते हैं, जो दल नारियल निकालने में कामयाब हो जाता है वह विजयी घोषित होता है। इस खेल के अंत में विजयी होने पर जो नृत्य किया जाता है, वह राड़ नृत्य कहलाता है।

चोगोला– होली जलने पर उसके चारों ओर वृत्त बनाकर आकर्षक परिधानों में सुसज्जित पुरुष और महिलाएँ जब नृत्य करते हैं उसकी छटा ही निराली होती है। चार प्रमुख वृत्त बनाए जाते हैं जिसमें पहले वृत्त में पुरुष, दूसरे वृत्त में नवविवाहिता युगल, तीसरा वृत्त वादकों का और अंतिम वृत्त महिलाओं का होता है। ढोल, कुंडी और डोणे की ताल पर आदिवासी समूहबद्ध होकर थिरकते हैं। [12]

वेरीहाल– खेरवाड़ा क्षेत्र में लगने वाले विशाल मेले का मुख्य आकर्षण वेरीहाल नृत्य है। वेरीहाल प्रमुख ढोल है जिसे मध्य में रखकर चारों ओर नृत्य किया जाता है। इस ढोल में देवीय शक्ति का वास माना जाता है इसीलिए नृतकों की भाव–भंगिमाएँ शूरवीर योद्धा के समान और शौर्य–भावों से परिपूर्ण होती हैं। [13]

लूर–घूमरा– बांसवाड़ा क्षेत्र के आदिवासी अंचल में यह नृत्य अपनी अलग ही पहचान बनाए हुए है। इसमें युवक–युवतियों के अलग–अलग दल आमने–सामने होते हैं। नृत्यांगनाएँ लयबद्ध कदम उठाकर ठहरती हैं जबकि नृतक एक कदम उठाकर रुकते हैं। बीच में खड़ा युवक गीत गाता है और इसका उत्तर नृतकियाँ थिरकते हुए देती हैं। अकाल, आदिवासी वीर–पुरुष, ऐतिहासिक घटनाओं और प्रेम–प्रसंगों से युक्त गीत गाए जाते हैं। यह नृत्य एक प्रकार से

आदिवासी युवक–युवतियों के मध्य व्यंग्य और विनोद की मीठी नोंक–झोंक हैं। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है– किसी परिस्थिति का जिक्र होने पर कैसे संवाद आगे बढ़ता है, यह सुनने और देखने योग्य होता है। गीत कुछ इस तरह होता हैं–

'डूंगरपुरनी सोरी माडेघ मसकावे अर आंखा फरादअ' (अर्थात् डूंगरपुर की छोकरी मुस्कराती है और नयन चलाती है।)

इस पर तत्काल दूसरा दल जिज्ञासु प्रश्न देता है–

'नयन चलाती हैं तो नयन कोई गाड़ी है क्या ? '

पहला दल 'हाँ' कहता है तब दूसरा दल फिर प्रश्न उठाता है–

'गाड़ी है तो फिर बैल कहाँ है ?'

पहला दल उन दर्शक छैले बने युवाओं की ओर इशारा कर उत्तर में कहता है–

'ये छैले लोग हैं जो खड़े–खड़े हमारा नृत्य देख रहे हैं। '

इस प्रकार प्रश्न उत्तर का क्रम नृत्य के साथ–साथ चलता रहता है। [14]

रायन– गरासिया पुरुषों द्वारा महिलाओं का वेश धारण करके किया जाने वाला नृत्य है। इन नर्तकों के हाथ में तलवारे होती हैं जो इनका शौर्य दिखाने के लिए प्रयुक्त होती है। नृत्य की गति धीरे से तीव्र होती जाती है जिससे नृत्य लयबद्ध और आकर्षक हो जाते हैं।

चांग नृत्य– गरासिया लोगों द्वारा होली के अवसर पर किया जाने वाला नृत्य है। इस नृत्य में एक व्यक्ति चंग बजाता है और हाथ में छड़ी लेकर अन्य नर्तक भीड़ में भागते कूदते हैं। नृतकों की इस लयबद्ध कूद–फाँद को ही चांग नृत्य कहते हैं। यह पुरुष प्रधान नृत्य है जिसमें औरतें नृत्य तो नहीं करती लेकिन गीत गाती हैं।

मोहिली– आदिवासियों द्वारा यह नृत्य विवाह के समय किया जाता है। यह स्त्रियों द्वारा मुख्य रूप से किया जाने वाला धीमी गति का गोलाकार नृत्य है। इसमें चार कदम आगे लेकर पाँचवाँ कदम पीछे लिया जाता है और यही क्रम आगे चलता रहता है।

मोरिया– गरासिया जाति द्वारा विवाह के अवसर पर किया जाने वाला नृत्य है। रात्रि में वर या वधू को चारपाई पर बिठाकर ऊँचा उठाया जाता है और स्त्री–पुरुष रंग–बिरंगे परिधानों में सजकर नृत्य करते हैं। इस नृत्य का गीत इस प्रकार हैं–

'रेम रे लीला मोरिया, गेम घूघरी बाजे/रेम रे लीला मोरिया/थारे बापे पूरिया लाड़, गेम घूघरी बाजे/रेम रे लीला मोरिया हेलदी रे मोम, गेम घूघरी बाजे/रेम रे लीला मोरिया।'[15]

इस गीत में घर के सभी रिश्तेदारों का नाम ले–लेकर गीत को बढ़ाया जाता है और ढोल बजाकर संगत की जाती है।

गवरी– वादन, संवाद, प्रस्तुतीकरण और लोक संस्कृति के प्रतीकों में मेवाड़ की 'गवरी' निराली है। इसमें कई तरह की नृत्य नाटिकाएँ होती हैं जो पौराणिक कथाओं, लोक गाथाओं और लोक जीवन की विभिन्न झाँकियों पर आधारित होती है। यह पर्व आदिवासी जाति पर पौराणिक तथा सामाजिक प्रभाव की अभिव्यक्ति है। इसकी लोकप्रियता सभी जातियों के लोगों की इसमें रुचि लेने से सुस्पष्ट है।

मेवाड़ के आदिवासी शिव के परम भक्त हैं। गवरी नृत्य–नाट्य की पहली नाटिका शिव, पार्वती, भस्मासुर और मोहिनी (विष्णु का छद्म रूप) को लेकर है, पार्वती को गौरी भी कहते हैं, गौरी ही इस क्षेत्र की गवरी बन गया है। हर साल भादों से कार्तिक वदी नवमी तक लगातार 40 दिनों तक गवरी नृत्य नाटिकाएँ पूरे क्षेत्र में जगह–जगह आयोजित होती हैं। इसे यह लोग अपनी बोली में गवरी खेलना कहते हैं। गवरी दल में लगभग 30 पात्र भिन्न–भिन्न भूमिकाओं में अभिनय करते हैं। इनमें 10 स्त्री पात्र होते हैं, जिन्हें पुरुष ही स्त्री वेश धारण कर अभिनीत करते हैं, सब पात्र अपनी भूमिका के अनुसार वेशभूषा पहनते हैं और बदलते रहते हैं। एक व्यक्ति को कई पात्रों का अभिनय करना होता है। गवरी खेलने की अवधि में सारे पात्र संयम और पवित्रता का पूरा ध्यान रखते हैं। इन 40 दिनों में मांस–मदिरा का सेवन की सख्त मनाही है। इनमें चार अभिनयकर्ता प्रारंभ से अंत तक स्थाई होते हैं। राई, बूढ़िया, भोपा और पुजारी इन्हें अपनी पोशाक व आभूषण आदि से अंत तक नहीं बदलने पड़ते, खुले आकाश तले चलने वाले इस नृत्य नाट्य प्रमुख पात्र होते हैं– बूढ़िया (शिव), राई (पार्वती), राई (मोहिनी), कुटकड़िया (सूत्रधार) और भोपा। इनमें राई वह बूढ़िया क्रमशः शिव व पार्वती के प्रतीक माने जाते हैं, भोपा जादू टोने का अधिशाषी और पुजारी अस्थायी देवरा का सेवक और सफाईकर्ता होता है। अस्थाई देवरा पर रात–दिन 24 घंटे घी की अखंड ज्योति जलती रहती है। वैसे तो गवरी में 10

मुख्य प्रसंग या अभिनय इकाइयाँ होती हैं, अन्य पात्र अभिनीत प्रसंग की माँग के अनुसार बढ़ते रहते हैं। कहीं–कहीं इनकी संख्या 12 भी होती है, जो इस प्रकार हैं– शिव–भस्मासुर प्रसंग के अलावा अन्य नाटिकाएँ भी नृत्य सहित अभिनीत होती है, उनमें–

1. भंवरिया–भंवरी
2. भियावड़ और अंबामाता
3. बाबा भस्मासुर
4. गोमा मीणा
5. कालू कीर और अंबाव
6. खड़लिया भूत और कालू कीर
7. नाहर और कालका माता
8. बादशाह और भीलू राजा
9. नटनी और जमाई
10. बंजारा और दाणी
11. बंजारा और कांडी
12. शिव–पर्वती आदि प्रमुख प्रसंग है। [16]

इस प्रकार बिना किसी रंगमंच के खुले प्राकृतिक वातावरण में मैदान या चौराहे पर आदिवासियों की यह गवरी उत्सव संपन्न होता है। इसमें समय की माँग के अनुसार नृत्य–गान होता है। शिव का अभिनय बूढ़िया करता है और पार्वती का अभिनय राई करती है, ये दोनों संपूर्ण नृत्य–नाट्य के नायक–नायिका है।

गरबा नृत्य– महिला नृत्यों में गरबा भक्तिपूर्ण नृत्य–कला का अच्छा उदाहरण है। यह नृत्य शक्ति की आराधना का दिव्य रूप है जिसे गुजरात से जुड़े डूंगरपुर और बांसवाड़ा में भी इसका प्रचलन व्यापक रूप में है। मुख्य रूप से गरबे के तीन स्वरूप देखे जाते हैं। पहले में शक्ति की आराधना एवं अर्चना है एवं दूसरे में कृष्ण–राधा, गोप–गोपियों का प्रणय चित्रण और रास नामक नृत्य में प्रस्तुतीकरण है तथा तीसरी विद्या के अंतर्गत लोक जीवन का सौंदर्य पक्ष प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें पणिहारी, नव–वधू की भावुकता और ग्रहकार्य में रत स्त्रियों का चित्रण रहता है। नवरात्रि की समाप्ति पर इसका विसर्जन होता है। गरबा नृत्य लोक जीवन और देवी शक्ति की अप्रतिमता प्रस्तुत करता है। इसमें मानव संस्कृति और पारलौकिक भावनाओं का अनुपम सम्मिश्रण है। विशिष्ट वर्ग अथवा जाति से संबंधित होते हुए भी गरबा लोक जीवन के आदर्श और कला का अंग बन गया है। गुजरात और राजस्थान की संस्कृति के समन्वय का सुंदर रूप हमें 'गरबा' नृत्य में देखने को मिलता है। गरबा में गाए जाने वाले पदों में सौभाग्य, कल्याण, प्रेम और उल्लास प्रतिध्वनित होते हैं। हास्य रस का समावेश देवर, भोजाई, ननद, सौत, सास आदि को लेकर गरबा में गीतों में किया जाता है। राधा–कृष्ण के प्रेम और मीराँ की भक्ति से संबंधित गीतों की लय गरबा में रहती है। इनके माध्यम से लोक संस्कृति के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन के पक्ष उजागर होते हैं। इन गीतों की भाषा स्थानीय रहती है और कई स्थलों को संवाद द्वारा भी प्रस्तुत किया जाता है।

लोक संस्कृति के माध्यम से ही लोक कलाओं का प्रस्फुटन होता है। इनके पल्लवन में लोक आस्था एवं विश्वास की बराबर भूमिका रहती है। आदिवासी संस्कृति में भी इन लोक कलाओं का एक भव्य संसार है। प्रायः सभी मांगलिक पर्वों व त्योहारों एवं उत्सवों के अवसरों पर 'मांडणा' लोक कला की प्रथा बड़ी ही आकर्षक है। इस अल्पना चित्रण शैली में इनके लोक जीवन के सुनहरे पक्ष की अभिव्यक्ति होती है।

दक्षिण राजस्थान में आदिवासियों द्वारा अनेक लोकनृत्य किए जाते हैं। यह लोकनृत्य हमें आदिवासियों के सामाजिक जीवन की झलक दिखलाने का काम करते हैं। इन नृत्यों से इन जातियों के मनोरंजन के पैमाने का पता चलता है कि किस प्रकार वह अपनी जाति के लोगों के साथ मिलकर किसी पर्व या त्योहार को मनाते हैं। इन लोकनृत्यों से इन जातियों की एकजुटता का भी पता चलता है। शहरी चकाचौंध से बचाते हुए यह आदिवासी अपनी संस्कृति और कला की विरासत को अपनी आने वाली पीढ़ी को प्रदान करते हैं। सरल एवं सहज स्वभाव के यह लोग न सिर्फ लोकनृत्य को अपने मनोरंजन का साधन बनाते हैं वरन नृत्य करके अपनी खुशियों को भी उजागर करते हैं। लेकिन विगत वर्षों में आए शैक्षिक तथा आर्थिक बदलाव के कारण आदिवासियों की सांस्कृतिक विरासत लुप्त होने के कगार पर आ गई है। कभी लोकानुरंजन का साधन रही गवरी को शहरी जनता द्वारा समय निरर्थक नृत्य माना जाता है। इसके साथ ही आदिवासियों की भी नई पीढ़ी इन लोकनृत्यों से अनजान नजर आती है। आज इन लोकनृत्यों से जन–जुड़ाव और जन संरक्षण खत्म होता जा रहा है और यह केवल बड़े महोत्सवों की शोभा बनकर रह गए हैं। आज यह कलाएँ निरंतर पतन की ओर अग्रसर हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में सरकार को इन जनजातियों के लोकनृत्यों के संरक्षण हेतु प्रयासरत हो जाना चाहिए तथा विभिन्न जनजाति विकास के कार्यक्रमों को इन लोककलाओं से जोड़कर इन्हें संरक्षित करने की पहल करनी चाहिए।

निष्कर्ष– इस प्रकार सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि आदिवासी समाज की लोक संस्कृति में लोकगीत, लोकनाट्य एवं विभिन्न लोक कलाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। लोकगीत इनकी सामाजिक–सांस्कृतिक परंपरा के प्रमुख

अंग रहे हैं। आदिकाल से लेकर आज तक इन लोकगीतों के विविध रूप इनकी सामाजिक–सांस्कृतिक परंपरा से जुड़े हुए हैं। इन लोकगीतों के विकास में भक्ति, प्रेम, उल्लास और मनोरंजन का प्रमुख स्थान रहा है। इनके पल्लवन में लोक–आस्था की भी प्रमुख भूमिका रही है। बिना आस्था और विश्वास के इन लोक कलाओं के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इनकी विभिन्न लोक कलाएँ, लोक कथाएँ, लोकगीत, लोकनृत्य एवं लोकनाट्य आदि एक–दूसरे को जोड़ने के साथ–साथ उनके बीच की दूरियों को पाटने का काम भी करती है, जिससे इस समाज की लोक संस्कृति की पहचान निरंतर बनी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ

1. पुरुषोत्तम छंगाणी, संस्कृति सभ्यता और हमारी लोक संस्कृति, मधुमती, अक्टूबर–नवम्बर, 2014, पृ. 09
2. धर्मनारायण माथुर, आदिवासी अस्तित्व हेतु संघर्ष का प्रणेता : आदिवासी साहित्य, अरावली उद्घोष, अंक–10–105, जुलाई–दिसम्बर, 2014, पृ. 08
3. रामेश्वर प्रसाद पांडेय, बुंदेलखंड संस्कृति और साहित्य, समकालीन साहित्य समाचार, अंक–11, नवम्बर, 2015, पृ. 13
4. भँवरलाल मीणा, आदिवासी लोकगीत, अलख प्रकाशन, जयपुर, 2013, पृ. 16
5. वही, पृ. 52
6. पुरुषोत्तम छंगाणी, संस्कृति सभ्यता और हमारी लोक संस्कृति, मधुमती, अक्टूबर–नवम्बर, 2014, पृ. 11
7. अर्जुनसिंह शेखावत, आदिवासी साहित्य का उद्भव, विकास तथा स्वरूप, अरावली उद्घोष, अंक–10–105, जुलाई–दिसम्बर, 2014, पृ. 31
8. भँवरलाल मीणा, आदिवासी लोकगीत, अलख प्रकाशन, जयपुर, 2013, पृ. 44
9. महेन्द्र भाणावत, उदयपुर के आदिवासी, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, 1993, पृ. 204
10. शकुंतला बापना, राजस्थान के लोकनृत्य, उत्तर–मध्य क्षेत्र, सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद, पृ. 36
11. कृष्ण कुमार द्विवेदी, भीलों के लोकनृत्य, रंगयोग, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, जनवरी–मार्च, 1974, पृ. 45
12. महेन्द्र भाणावत, राजस्थान के लोकनृत्य, पश्चिम क्षेत्र, सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर, पृ. 27
13. वही, पृ. 27–28
14. देवीलाल सामर, राजस्थानी लोकनृत्य, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, पृ. 43
15. महेन्द्र भाणावत, राजस्थान के लोकनृत्य, पश्चिम क्षेत्र, सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर, पृ. 06
16. महेन्द्र भाणावत, लोकनाट्य गवरी : उद्भव और विकास, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, 1970

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 87-92

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी उपन्यासों के संदर्भ में वेश्या जीवन : समस्या और समाधान

डॉ. प्रभा शर्मा
सह आचार्य– हिन्दी
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा
ईमेल– prabha2364@gmail.com
मोबाईल – 7976740636

साहित्य की आधुनिक विधाओं में उपन्यास का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इसे हम साहित्य का प्राण कह सकते हैं। जीवन की जटिलता का जैसा सजीव चित्रण उपन्यास में सम्भव हुआ है वैसा काव्य, नाटक, निबन्ध और कहानी आदि में न तो किया जाता है और न इसके लिए उनके विधान में कोई स्थान ही होता है। अपनी इसी विशिष्टता के कारण उपन्यास साहित्य के अन्य अंगों से आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ रहा है। डॉ. श्री कृष्णलाल की दृष्टि में – "**इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि आधुनिक युग की विविध समस्याओं का सम्यक् विश्लेषण, विवेचन और समाधान यदि कहीं सम्भव है तो वह केवल उपन्यास में ही, और इस दृष्टि से उपन्यास ही आधुनिक युग का प्रतिनिधि साहित्य रूप है।**"[1]

उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी होता है वह जीवन की विविध समस्याओं और परिस्थितियों से प्रभावित होता है और तभी अपनी रचनाओं में वह उस प्रभाव को प्रदर्शित करता है। आज का युग विषम समस्याओं का युग है। जैसे–जैसे परिस्थितियाँ बदल रही हैं वैसे–वैसे ही अनेक नई–नई समस्याएँ मनुष्य के सामने आ रही हैं। मनुष्य का मन अभिव्यक्ति के साधन ढूँढता रहता है। और इन साधनों के मिल जाने पर अनुभूतियाँ प्रकाश में आती जाती हैं। साधारण मनुष्य परिस्थितियों से प्रभावित होता है। समस्यायें उसे भी उलझाती हैं किन्तु वह इन समस्याओं को झेलता हुआ स्वयं तक ही सीमित रह जाता है जबकि साहित्यकार अपनी उलझनों को साहित्य में सजीव कर देता है। साधारण मनुष्य और साहित्यकार में यही अन्तर है। "**जीवन की नाना समस्याओं का उद्घाटन तथा उनका हल, यद्यपि हल सदैव अपेक्षित नहीं होता, आज के उपन्यास का प्रधान काम है।**"[2]

पहले जीवन इतना जटिल नहीं था और समस्यायें भी कम थीं। अतः उपन्यास लेखकों की दृष्टि भी केवल घटनाओं के वर्णन तक सीमित थी। बाह्य घटनाओं के घटाटोप में लेखकों का ध्यान परिस्थितियों और समस्याओं की ओर नहीं जाता था किन्तु धीरे–धीरे लेखकों का दृष्टिकोण व्यापक हुआ। जटिलताओं ने उनको अपनी ओर खींचा। प्रेमचन्द जी ने हिन्दी उपन्यास के परिवर्तित होते रूप पर प्रकाश डालते हुये लिखा है – "**अब यह केवल नायक–नायिका के संयोग–वियोग की कहानी नहीं सुनाता किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।**"[3]

इस प्रकार आधुनिक उपन्यासों में युगीन समस्याओं का सम्यक् विश्लेषण हो रहा है। समस्यायें अधिकांशतः समाजिक क्षेत्र में जन्म लेती हैं और उनका सम्बन्ध अधिकतर नारी जाति से ही होता है। विविध समस्याओं और कुप्रथाओं ने नारी जाति को बड़ी हीनावस्था में पहुँचा दिया है। पर्दा प्रथा के कारण नारी जाति घर में बंदिनी बना दी गई। दहेज की समस्या ने पुत्री के जन्म को ही अभिशाप बना दिया। बाल विवाह से विधवा–समस्या और वेश्या समस्याओं का जन्म हुआ। पुरुष की स्थिति पर इन समस्याओं का उतना भीषण प्रभाव नहीं पड़ा जितना स्त्री पर। स्त्री की समाज में दयनीय स्थिति का कारण जहाँ उसका स्त्री होना है वहाँ इन समस्याओं के अभिशापों का उस पर लदना भी है।

डॉ. रामरतन भटनागर की दृष्टि में **"हिन्दी का उपन्यास नारी–समाज के महत्वपूर्ण प्रश्नों को लेकर ही क्षेत्र में आया। समाज–सुधार की भावना उसका मेरूदण्ड थी। वृद्ध–विवाह, बालविवाह, दहेज, वेश्यागमन और हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य आरम्भ से ही हिन्दी उपन्यासकारों के विषय बन गये।"**[4]

वेश्या - जीवन

वेश्या–जीवन की समस्या समाज की चिर–परिचित एक ज्वलंत समस्या है। समाज का वह दलित और उपेक्षित वर्ग लोगों के हृदय की सहानुभूति पाने से सदा ही वंचित रहा है। प्राचीन काल में भी ऐसी स्त्रियों को निरादर की दृष्टि से देखा जाता था। वात्सायन ने अपने **"कामसूत्र"** में ऐसी स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा था कि **"निम्न कोटि की औरत से प्रेम करना या किसी विधवा से प्रेम करना जो संयम का जीवन न निर्वाह कर सके, न तो शिश्ट ही समझा जाता था और न वर्जित ही था क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य काम–आनन्द था। इस प्रकार की स्त्रियाँ पत्नी के पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकती थीं। धार्मिक उत्सवों में भाग लेने का उनको अधिकार नहीं था और न उनकी संतान को ही समाज में सम्मानित समझा जाता था।"**[5] महात्मा गाँधी ने इन पतिता और अभागिन बहनों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा था – **"यह बड़े दुख और अपमान की बात है कि मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिए स्त्रियों को अपनी इज्जत बेचनी पड़े। पुरुष ने (जो नियामक है) स्त्रियों का जो अपमान किया है उसके लिए उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा। जब स्त्री अपनी पूरी शक्ति से पुरुष के जाल से बचकर उसके नियमों और संस्थाओं के विरुद्ध आन्दोलन करती है तो वह हिंसात्मक ही क्यों न हो, कम प्रभावशाली नहीं होता। भारतवर्ष के पुरुषों को चाहिए इन हजारों स्त्रियों के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार करे जो इनकी नियम–विरुद्ध अनैतिक वासना के लिए अपनी इज्जत बेचती हैं।"**[6]

हिन्दी उपन्यासकारों ने वेश्या समस्या को अपनी रचनाओं में बड़ी विशदता के साथ उठाया है। प्रेमचन्द के पहले के उपन्यासों में वेश्या नारी को बड़े घृणित रूप में प्रकट करके, समाज में उसके प्रति तत्कालीन भावनाओं को प्रकट किया गया है। 'स्वर्गीय कुसुम' या 'कुसुमकुमारी' का भैरोसिंह वेश्याओं के बारे में कहता है – **"वे लोग उल्लू ही नहीं बल्कि उल्लू के इत्र हैं जो रंडियों या सुरैतिनों पर विश्वास करते हैं।"**[7] प्रेमचन्द ने अपने महत्वपूर्ण उपन्यासों **'सेवा–सदन'** और **'गबन'** में वेश्या समस्या को उठाया है। **'गबन'** उपन्यास में वेश्या के स्वभाव, आचरण पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचन्द कहते हैं कि – **"जोहरा वेश्या थी, उसको अच्छे–बुरे सभी तरह के आदमियों से साबि़का पड़ चुका था। उसकी आँखों में आदमियों की परख थी। उसको इस परदेशी युवक में और अन्य व्यक्तियों में एक बड़ा फर्क दिखायी देता था। पहले वह यहाँ भी पैसे की गुलाम बनकर आयी थी, लेकिन दो–चार दिन के बाद ही उसका मन रमा की ओर आकर्षित होने लगा। प्रौढ़ा स्त्रियाँ अनुराग की अवहेलना नहीं कर सकतीं। रमा में और सब दोष हों, पर अनुराग था। इस जीवन में जोहरा को यह पहला आदमी ऐसा मिला था जिसने उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया जिसने उससे कोई परदा न रखा। ऐसे अनुराग रत्न को वह खोना न चाहती थी। उसकी बात सुनकर उसे जरा भी ईर्श्या न हुई, बल्कि उसके मन में एक स्वार्थमय सहानुभूति उत्पन्न हुई।"**[8]

व्यक्तिगत रूप से वेश्याओं के प्रति प्रेमचन्द जी बड़े उदार हैं। उन्होंने कभी भी इस वर्ग की निन्दा नहीं की है, कहीं भी घृणा के भाव व्यक्त नहीं किये हैं, समाज के इस उपेक्षित, बहिष्कृत और शोषित वर्गों के प्रति प्रेमचन्द के हृदय में अपार सहानुभूति है। वे किसी व्यक्ति–विशेष के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न नहीं करते वरन् दूषित प्रथा के विरुद्ध सशक्त ढंग से लिखते हैं। वेश्यावर्षति के विरुद्ध प्रेमचन्द ने बड़ी कठोरता से लिखा है लेकिन वेश्याओं को बुरा–भला नहीं कहा। **'सेवासदन'** उपन्यास में प्रेमचन्द ने जन्मजात वेश्या और अपने घरवालों, रिश्तेदारों, सगे–सम्बन्धियों के अन्याय या दुर्जनों के बहकाने से पतित हुई स्त्रियों में अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि – **"मेरे विचार में उनमें उतना ही अन्तर है जितना साध्य और असाध्य रोग में है। जो आग अभी लगी हैं और अन्दर तक नहीं पहुँचने पायी, उसे आप शान्त कर सकते हैं लेकिन ज्वालामुखी पर्वत को शान्त करने की चेश्टा पागल करे तो करे, बुद्धिमान कभी नहीं कर सकता।"**[9] आगे चलकर प्रेमचन्द वेश्याओं के जीवन की सादगी, पवित्रता और निर्मलता की बात करते हैं– **"आप अगर एक घन्टे के लिए मेरे साथ दालमण्डी चलें तो आपको मालूम हो जायेगा कि जिसे आप ज्वालामुखी पर्वत समझ बैठे हैं वह केवल बुझी हुई आग का ढेर है। अच्छे और बुरे आदमी सब जगह होते हैं, वेश्याएँ भी इस नियम के बाहर नहीं हैं। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि उनमें कितनी धार्मिक श्रद्धा, पाप–जीवन से कितनी घृणा और अपने जीवनोद्धार की कितनी**

अभिलाषा है। मुंझे स्वयं इस पर आश्चर्य होता है उन्हें केवल एक सहारे की आवश्यकता है जिसे पकड़कर वे बाहर निकल आयें।"[10]

वेश्यावृत्ति के मूल में हमारे समाज की आर्थिक व्यवस्था है। कोई भी नारी आसानी से वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए तैयार नहीं होती। जीविका के साधन जब समाज उसे नहीं देता तो वह विवश हो जाती है ऐसा करने के लिए। **'सेवासदन'** की सुमन भी वेश्यावृत्ति अपनाने के पूर्व जीविका के दूसरे साधन ढूँढने की चेष्टा करती है लेकिन जीविका पाने में असमर्थ रहती है तब अनैतिकता के इस द्वार पर जाकर वह रूकती है। वेश्या सम्बन्धी समस्या पर प्रकाश डालने वाले उपन्यासों में **'तितली'** (प्रसाद), **'मंच'** (राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी), **'वेश्यापुत्र'** (ऋषभ चरण जैन), **'पाप और पुण्य'** (प्रफुल्ल चन्द ओझा 'मुक्त'), **'पतिता की साधना'** (भगवती प्रसाद वाजपेयी), **'अप्सरा'** (निराला) और **'वेश्या का हृदय'** (धनीराम प्रेम) आदि उपन्यास उल्लेखनीय है।

प्रेमचन्द युग के बाद शरत् के उपन्यासों का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर पड़ा। शरत् का दृष्टिकोण इन पतिता नारियों के प्रति बाह्य ही सहानुभूति था। उनकी वेश्या नारियों का चरित्र बड़ा गरिमामय था। प्रेमचन्द के बाद भी हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में वेश्या नारी की समस्याओं को उठाया है। मनुष्य परिस्थितियों का दास है। अमृतलाल नागर **'सुहाग के नुपुर'** में वेश्या के प्रति घृणा का भाव न रखकर सहानुभूति की भावना प्रदर्शित करते हैं। जब माधवी कन्नगी से क्रोध में भरकर कहती है कि – **"तुम अपने को उच्च और मुझे नीच समझती हो? तुम मुझसे घृण करती होगी, है न?"**[11] तब कन्नगी बड़ी विनम्रता से उत्तर देती है– **"मैं तुससे घृणा क्यों करूँ बहन! तुम अपनी परिस्थितियों के कारण ऐसी हो उसमें तुम्हारा क्या दोष।"**[12] इस जगत में कुछ भी स्थायी नहीं, सब कुछ क्षणभंगुर है। कब, कौनसी घटना जीवन को किस दिशा में ले जाये यह कोई नहीं जानता। चेलम्मा वेश्या अपने पतित जीवन को त्यागकर साध्वी बन जाती है और कन्नगी की सेवा में आ जाती है उस पर कोवलन व्यंग्य करता है – **"आजकल माधवी से चिटक गई है तो कन्नगी को उभारने आई हो? गैरिक पहनकर प्रवचन छाँटने लगी, पर अपनी कुट्टनी धन्धा न छोड़ा।"**[13] इस पर चेलम्मा संगति की महिमा पर प्रकाश डालती हुई कोवलन से कहती है – **"कोयला जब जीवन की उश्मा पा जाता है तो हीरा बन जाता है। मेरा कुट्टनीशास्त्र वैसे ही अब दर्शनशास्त्र बन गया है।"**[14] नागर जी के **'कोठेवालियाँ'** उपन्यास में वेश्यावृत्ति का दूसरा ही रूप सामने आता है। "घटना अंग्रेजी जमाने की है, एक सरकारी दफ्तर का सर्वोच्च भारतीय अफसर था, इसलिए दूसरे छोटे–बड़े भारतीय अफसरों, मातहतों पर उसका बड़ा दबदबा था। उन हजरत को औरतबाजी की हेकड़ी भरी आदत थी। अपने मातहत अफसरों को वे अक्सर सपत्नीक बुलाया करते थे। जो बुलावे पर न आये वह उनसे दुश्मनी मोल ले और जो जाये वह मानों अपने हाथों अपनी पत्नी का पतिव्रत धर्म खंडित करने के लिए ही ले जाये। अफसर महोदय को दूसरे धर्मावलम्बी मातहत अफसरों की पत्नियों का शयन–सुख प्राप्त करने का जोश धर्म की अटारी पर चढ़कर आता था, वैसे वे स्वधर्मावलम्बियों को भी स्वदेह धर्म की वेदी पर बलि देने से चूकते न थे।"

जैनेन्द्र के उपन्यास **'त्यागपत्र'** की मृणाल यौवन की प्रकृत उमंगों को दबाकर रखने एवं उनकी सहज अभिव्यक्ति न कर पाने से उसका जीवन अतिशय दुःखमय हो जाता है। स्वभाव से सरल होने के कारण एक दिन अपने प्रेमी के एक पत्र का पति से उल्लेख कर देती है जिससे वह अत्यधिक विक्षुब्ध हो जाता है और उस पर चरित्रहीनता का अरोप लगाकर उसे घर से बाहर निकाल देता है। वह उसी शहर के कोने में पड़ी रहती है। जहाँ से एक कोयले का व्यापारी उस पर आसक्त होकर उसे कहीं और भगा ले जाता है। वासना के शान्त होने पर वह बनिया भी उसे छोड़कर चला जाता है। मृणाल अस्पताल में एक बच्ची को जन्म देती है जो दस महीने की होकर मर जाती है। एक डॉक्टर के यहाँ कुछ दिन नौकरी करने के बाद वह भटकती हुई जा पड़ती है समाज के निम्नतम स्तर के लोगों के बीच जहाँ उसे घातक रोग जकड़ लेता है। उसकी ऐसी शोचनीय दशा देखकर उसका भतीजा प्रमोद उसे घर ले जाने का आग्रह करता है लेकिन मृणाल उसके पास न जाकर उससे बहुत सी धनराशि की सहायता चाहती है जिसके द्वारा वह अपने आसपास के पतित लोगों का कुछ उद्धार कर सके।

चतुरसेन शास्त्री ने **'वैशाली की नगरवधू'** उपन्यास में नारी की गरिमा को पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से गणिका अम्बपाली के चरित्र को उपन्यास का केन्द्र निर्णीत किया है और उसके व्यक्तित्व को दिव्यता प्रदान कर उस प्राचीन अधिकृत नियम का विरोध किया है जिसके आधार पर गणतन्त्र राज्य में नगर की सर्वाधिक रूपसी कन्या को नगरवधू का गौरव देकर उसे गणिका का जीवन व्यतीत करने के लिए बाधित किया जाता था। इस नियम के अनुसार उस पर गण के नागरिकों का समान अधिकार रहता था। इस विकृत मान्यता को उच्छिन्न करने के लिए लेखक ने विलासलिप्त वैशाली नगरी का पतन उपन्यास के अन्त में प्रदर्शित किया है। अम्बपाली जैसे चरित्र को भव्य रूप में अंकित

कर लेखक ने अपनी आदर्शवादिता एवं सुधारवादिता का परिचय दिया है। इनके अपने शब्दों में – **"धीरे–धीरे अम्बपाली की एक लोकोत्तर मूर्ति मेरे मानस पर अंकित हो गई। तथाकथित उस प्राचीन कानून ने मुझे अम्बपाली का हिमायती बना दिया।"**[15]

भगवती चरण वर्मा के उपन्यास **'तीन वर्श'** में रमेश प्रेम में चोट खाकर 'देवदासीय' दृष्टिकोण को अपनाकर आत्मविस्मरण के लिए पीने लगता है और वेश्या के यहाँ जाना आरम्भ कर देता है। सरोज जो परिस्थितियों से विवश होकर वेश्यावृत्ति करती है रमेश से प्रेम करने लगती है। परन्तु रमेश उसके पावन प्रेम को न पहचान उसे छोड़ कर नौकरी करने के लिए चला जाता है। उपन्यास में अकस्मात् रोग्रस्त हो जाना, समाचारपत्र में रमेश को बुलाने के लिए विज्ञापन देना, रमेश का लौटना, सरोज की मष्त्य, ये सभी घटनाएँ रोमांचक हैं। इन घटनाओं का समावेश यह सिद्ध करने के उद्देश्य से किया गया है कि वेश्या भी प्रेम करने की क्षमता रखती है। सरोज वेश्या होते हुए भी प्रभा से ऊँची थी। उसने अपने आपको रमेश के लिए मिटा दिया। अपना तन, मन, धन उस पर न्यौछावर कर दिया। रमेश प्रभा से कहता है – **"तुम पुरुष का धन लेती हो, पुरुष को अपना शरीर देने के बदले में और यह वेश्यावृत्ति है।"**[16] वेश्यावृत्ति करने वाली नारी वेश्या नहीं है अपितु वह नारी वेश्या है जो प्रेम को खिलौना समझकर विविध मनुष्यों से प्रेम करने का स्वांग करती है। विवाह उससे नहीं करना चाहती जिससे प्रेम करती है। वह नारी है – पिशाचिनी प्रभा। हम वेश्याओं को तो कलंकित समझते हैं किन्तु वे पढ़ी–लिखी नारियाँ तो वेश्याओं से भी गई बीती हैं। इस प्रकार भगवती चरण शर्मा अपने **'तीन वर्श'** उपन्यास में वेश्या नारियों को सम्मान देते हैं।

रांगेय राघव के उपन्यास **'घरोंदा'** की 'नादानी' वेश्या है। कामेश्वर से वह सच्चे हृदय से प्रेम करती है। वह उसके बीज को हर हाल में संभाल कर रखना चाहती है। उसके लिए चाहे उसे कितने भी कष्ट उठाने पड़े। कामेश्वर नादानी के बारे में सोचना है – **"इस नारी ने मेरा बीज पकड़ लिया है और वह मुझसे घृणा होते हुए भी इतने सहज स्नेह से उसे सहेजे हुये है। वेश्या बच्चों का गर्भपात नहीं करातीं, कुलीन वर्गों की स्त्रियों का ही यह भूषण हैं।"**[17] कामेश्वर के सामने जब नादानी को अपनाने का प्रश्न आता है तो वह दुविधा में पड़ जाता है। नादानी कामेश्वर से कहती हैं – **"यह तुम्हारी लड़की नहीं होगी। यह सिर्फ माँ को जान सकेगी। पन्द्रह साल की ही तो बात है। आना फिर। तुम्हारी लड़की भी जवान हो जायेगी।"**[18] नादानी की बात सुनकर कामेश्वर बौखला उठता है पर नादानी को अपनाने का कोई रास्ता उसके पास नहीं है। उग्र जी ने **'शराबी'** में बड़ा ही साहसपूर्ण कदम उठाया है – वेश्या नारी से विवाह का। 'शराबी' की नायिका है जवाहर जो एक भले परिवार की बालिका होते हुये भी परिस्थितियों की विषमता के कारण वेश्या बनने को बाध्य होती है। मानिक जवाहर से प्रेम करता है और अन्त में उससे विवाह कर लेता है। समाज में चर्चा होती है तो मानिक इसकी चिन्ता नहीं करता। उसकी माँ भी सन्तोष कर लेती है। "**मानिक की माँ को अब कुछ दुःख होता है तो यही कि कभी–कभी मुहल्ले वाले और सगे–सम्बन्धी जवाहर के पूर्व जीवन और पन्नालाल के अच्छे खानदान को लेकर बड़ा मार्मिक ताना देते हैं। नहीं तो परिवार में अब पूर्ण भाान्ति है।"**[19]

समाधान

वेश्या–समस्या को दूर करने के विविध समाधान विविध उपन्यासों में प्रस्तुत किये गये हैं। **'सेवासदन'** में प्रेमचन्द सुधारक के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं उन्होंने व्यक्ति के आन्तरिक सुधार अथवा हृदय परिवर्तन के रूप में इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। **'सेवासदन'** के पद्मसिंह म्यूनिसिपल बोर्ड में इस विषय में जो अपना प्रस्ताव उपस्थित करते हैं उसको डॉ. भटनागर ने तीन भागो में विभक्त किया है–

1. वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटाकर बस्ती से दूर रखा जाए।
2. उन्हें शहर के मुख्य सैर करने के स्थानों और पार्कों में जाने का निषेध किया जाये।
3. वेश्याओं का नाच कराने के लिए एक भारी टैक्स लगाया जाये और ऐसे जलसे किसी हालत में खुले स्थानों पर न हों।

पद्मसिंह 'सेवासदन' में एक स्थान पर कहते हैं – **"हमने वेश्याओं को शहर के बाहर रखने का प्रस्ताव इसलिए नहीं किया कि हमें घृणा है। हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनायें, हमारे सामाजिक अनाचार, हमारी ही कुप्रथायें हैं जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया है।"**[20]

'सेवा सदन' में सुमन के रूप में वेश्या की समस्या का समाधान करने के लिए अन्त में 'सेवा सदन' की स्थापना

की गई। **".....परन्तु समाज के सामने सर्वग्राह्य समाधान अब तक प्रस्तुत नहीं हो सका है। प्रेमचन्द जी की सुधारवादी, दृष्टियों ने तो 'सेवा सदन' की स्थापना करके एक ठोस हल समाज के सामने उपस्थित अवश्य कर दिया परन्तु यह उनकी ही कल्पना की शक्ति एवं उसकी अद्भुत करामात थी जो समर्थ हो सकी है। व्यावहारिक जगत् में उसे छोड़कर न तो दूसरे सेवा–सदनों की स्थापना की जा सकी और न ही व्यापक रूप से वेश्यालय ही खाली कराये जा सके। इससे समाज को प्रेरणा अवश्य मिली परन्तु मनुष्य अपनी कुत्साओं का इतना दास है कि उससे घृणा करते हुए भी उसे छोड़ नहीं पाता।"**[21]

भगवती चरण वर्मा और उग्र जी ने भी वेश्या–समस्या को दूर करने के लिए सुन्दर समाधान दिये हैं। वेश्या के ह्रदय की पवित्रता को समझकर उसे अपनाने का या विवाह करने का यह समाधान निःसन्देह प्रशंसनीय है किन्तु हमारे समाज की रूढ़िग्रस्त परम्परायें इन समाधानों को कहाँ तक कार्यान्वित कर सकती है? यह प्रश्न विचारणीय है। वेश्या नारी को घृणा की दृष्टि से देखने वाला समाज उसको कहाँ तक अपना सकेगा? यह विशेष चिन्तनीय बात है। डॉ. त्रिभुवन सिंह जी वेश्या–समस्या के लिए एक समाधान प्रस्तुत करते हुये लिखते हैं – **"यदि हम वेश्याओं के प्रति यह भाव रख सके कि वे अपनी ही भूलों के कारण पतित हुई हमारी ही मातायें और बहनें हैं जो वेश्या बन गई हैं तो कभी भी समाज का यह कोढ़ जिन्दा रह ही नहीं सकता।"**[22] महात्मा गाँधी जी ने इस दिशा में जो समाधान प्रस्तुत किये हैं वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। वे कहते हैं – **"इसके पहले कि उन्हें इससे छुटकारा मिले, दो शर्तें पूरी करनी होगी; हम पुरुषों को अपनी वासना पर नियन्त्रण करना चाहिए और इन स्त्रियों को ऐसा रोजगार दिया जाये कि ये सम्मानपूर्वक अपनी रोटी कमा सकें। यदि असहयोग आन्दोलन हमारी वासनाओं को नहीं रोकता और हमें पवित्र नहीं बनाता तो यह कुछ भी नहीं है और कातने–बुनने के अलावा ऐसा कोई पेशा नहीं जिसे ..सब अपना सकें। इन बहनों में से बहुतों को विवाह की न सोचनी चाहिए।"**[23] गाँधीजी के समाधान सचमुच में बड़े तथ्यपूर्ण हैं। उन्होंने समस्या के समाधान के लिए आदर्शवादी दृष्टिकोणों का सहारा न लेकर समस्या के मूल में ही उतरने की चेष्टा की है। उन्होंने वेश्यावृत्ति के मूल कारण आर्थिक पराधीनता और पुरुष की वासनामय दृष्टि के उन्मूलन पर ही विशेष जोर दिया है जो बड़ा ही उचित है। श्यामकुमारी नेहरू ने भी वेश्यावृत्ति का मुख्य कारण आर्थिक पराधीनता को ही माना है। संसार के अन्य देशों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ पर स्त्रियों ने पुरुषों के साथ–साथ आर्थिक समस्याओं की पूर्ति के लिए कदम उठाया है वहाँ उनको समाज में अच्छा स्थान मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के उपन्यासकारों ने समस्या का तो चित्रण किया किन्तु समाधान देते समय वे यथार्थवाद से दूर चले गये। आदर्शवादी भावभूमि पर ही उनके पाँव टिके रहे। यदि गाँधीजी के समाधानों को हिन्दी उपन्यासों के द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है तो समस्या का उन्मूलन तो होता है साथ ही हिन्दी उपन्यासकारों के समाधान भी माननीय होते।

सन्दर्भ

1. भूमिका – हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ 7
2. उपन्यास–सन्देश – निबंध, समस्यामूलक उपन्यास, लेखक प्रो. महेन्द्र भटनागर, उपन्यास अंक, 1956 जुलाई–अगस्त
3. कुछ विचार – प्रेमचन्द, पृष्ठ 8
4. आलोचना (उपन्यास अंक 13) निबन्ध प्रेमचन्द युगः आदर्शोन्मुख यथार्थ, पृष्ठ 81
5. कामसूत्र – वात्स्यायन, पृष्ठ 60
6. महिलाओं से – महात्मा गाँधी, पृष्ठ 215
7. कुसुम कुमारी या स्वर्गीय कुसुम – किशोरीलाल गोस्वामी, पृष्ठ 91
8. गबन – प्रेमचन्द, पृष्ठ 203–204
9. सेवा सदन – प्रेमचन्द, पृष्ठ 192
10. सेवा सदन – प्रेमचन्द, पृष्ठ 193
11. सुहाग के नुपुर – अमृतलाल नागर, पृष्ठ 70
12. वही
13. सुहाग के नुपुर – अमृतलाल नागर, पृष्ठ 158
14. वही

15. वैशाली की नगरवधू– चतुरसेन शास्त्री, पृष्ठ 414
16. तीन वर्ष – भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ 204
17. घरौंदा – रांगेय राघव, पृष्ठ 193
18. घरौंदा – रांगेय राघव, पृष्ठ 194
19. शराबी – उग्र – पृष्ठ 179
20. सेवासदन – प्रेमचन्द, पृष्ठ 215
21. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ 108
22. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ 109
23. महिलाओं से – गाँधी जी, पृष्ठ 213

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 93-96
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'ये कोठेवालियाँ' में चित्रित समाज

डॉ. यशोदा मेहरा
सहायक आचार्य–हिन्दी
राज. कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.)
मोबा. : 8387928901
email : yashodamehra.alw.ym@gmail.com

भारतीय सभ्यता एवं संस्कषति में नारी को सदैव महनीय व पूजनीय स्थान प्रदान किया जाता रहा है। नारी समाज की वह धुरी है जिस पर सम्पूर्ण समाज रूपी चक्र घूमता है। नारी के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। **''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''**[1] कहकर भारतीय संस्कृति में नारी के गौरव की महिमा का बखान किया गया है। नारी ही वह स्रोतस्विनी है जिससे अमृत की धाराएँ प्रवाहित होती हैं–

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास–रजत–नग पगतल में।
पीयूष स्रोत–सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।[2]

इस प्रकार नारी भारतीय संस्कृति में सदैव ही अतीव गौरव की अधिकारिणी रही है परन्तु बदलते परिवेश के साथ ही नारी की स्थिति में भी परिवर्तन होते रहे हैं। नारी सम्मान के सन्दर्भ में जहाँ एक ओर भारतीय नारी को 'देवी' की पदवी से विभूषित किया गया है वहीं दूसरी ओर नारी के प्रति कुत्सित मनोवषति से युक्त घटनाएँ एवं दुर्व्यवहार के साक्ष्य भी दिन प्रतिदिन देखने को मिलते हैं। इतना ही नहीं अपितु नारी को केवल बाज़ार से खरीदी हुई वस्तु के समान उपभोग करने की प्रवृत्ति भी समाज में देखने को मिलती है। नारी के प्रति इसी दोहरे व्यवहार या दोहरे मानदण्ड के कारण वेश्यावृत्ति जैसी घृणित एवं निन्दनीय बाज़ारू प्रवृत्ति समाज में देखने को मिलती है।

वेश्यावृत्ति या नारी के प्रति बाज़ारू प्रवृत्ति का यह दृष्टिकोण अत्यन्त प्राचीन है। वेश्या या गणिका शब्द का अर्थ स्पष्ट है कि जो नारी सम्पूर्ण गण या जन की पत्नी हो वह गणिका (वेश्या) है। पितृसतात्मक समाज में यह केवल हमारे देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव सभ्यता के प्राचीन इतिहास के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वेश्यावृत्ति की यह प्रवृत्ति लगभग सभी देशों एवं तथाकथित पवित्र धर्मग्रन्थों में भी देखने को मिलती है। ''बाइबिल में केडेशोथ (Kedeshoth) वेश्याओं का वर्णन आता है। ये लोग (Canaanite) मन्दिरों से सम्बद्ध थीं। मोआबाइट और असीरियन मन्दिरों में भी इनका बड़ा आदर होता था। अर्मीनिया देश में पुराने समय में यह आम प्रथा थी कि लोग अपनी बेटियों को देवदासी बना देते थे। प्राचीन वेबीलोनिया में इन देवदासियों का बड़ा रूतबा था। प्राचीन एथेंस और रोम में भी वेश्याओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।''[3] इसी प्रकार सालवती, मथुरा की वसन्तसेना तथा वैशाली की नगर वधू, अम्बपाली के वष्तान्त भी भारतीय साहित्य में वेश्यावृत्ति की प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। ऋग्वेद में भी शैलूषों को 'जायाजीवी' अर्थात् औरतों की कमाई पर जीने वाला बतलाया गया है। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी कतिपय जातियों की स्त्रियों को रसिकों की भोग सामग्री बतलाया गया है।

इस प्रकार विभिन्न देशों के धर्मग्रन्थों में धर्म की आड़ लेकर देवदासी परम्परा के नाम पर किये जाने वाले व्यभिचार की पुरातन परम्परा देखने को मिलती है। देश के कुछ गाँवों या समाज में नयी ब्याहकर आने वाली किसी भी जाति की वधू के साथ पहली रात बिताने का अधिकार प्रजा, मुखिया या पुरोहित का हुआ करता था और तथाकथित

हीन मानी जाने वाली इन जातियों की स्त्रियों का भोग करना ऊँची जाति के पुरुषों का नैतिक अधिकार माना जाता था। इस प्रकार धर्म, सामन्ती प्रथा व राजशाही के नाम पर खुले में चलने वाली ये प्रथाएँ भी वेश्यावृत्ति के छद्म रूप हैं। धर्म के नाम पर लोगों की श्रद्धा व आस्था के साथ खिलवाड़ कर वेश्यावृत्ति का यह गोरखधन्धा वर्षों से चलाया जाता रहा है। वेश्यावृत्ति मूलतः सामन्तशाही और पूँजीवादी समाज की देन है।

देवदासी प्रथा भी धर्म के नाम पर चलाई जाने वाली वेश्यावृत्ति का ही एक प्रच्छन्न रूप है। देवदासी बनाने के लिए लड़की को धूमधाम से मन्दिर में लाया जाता है तथा देवमूर्ति के साथ उसका विवाह सम्पन्न कराया जाता है तत्पश्चात् पंडे–पुरोहितों, धर्माधिकारियों द्वारा उस देवदासी का धर्म के नाम पर देह–शोषण किया जाता है। पूर्व में पहले नम्बूद्री ब्राह्मणों में केवल ज्येष्ठ पुत्र का विवाह होता था अन्य पुत्रों का नहीं। अन्य पुत्र किसी नायर कन्या के साथ रात बिताते थे। जिस नायर के यहाँ नम्बूद्री ब्राह्मण रात में जाता है वह उसका श्रद्धा–भक्ति से स्वागत करता है और यह नम्बूद्री ब्राह्मण न तो उस नायर कन्या को पत्नी रूप में स्वीकार करता है और न ही उससे उत्पन्न संतानों को स्वीकार करता है। इस प्रकार धर्म के नाम चलाई जाने वाली वेश्यावृत्ति या देह–शोषण की यह चरम पराकष्ठा है। ''इन विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण इस देश के काम–जीवन में उच्छष्खंलता अनिवार्य रूप से आ गई। गणिका अथवा वेश्या इन्हीं काम परिस्थितियों की कलात्मक सषष्टि है।''[4] इसी प्रकार बहुपत्नी प्रथा भी वेश्यावृत्ति का ही एक रूप है जिसमें पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रखने के लिए स्वतंत्र होता है। यह भी एक प्रकार का नारी–शोषण ही है।

अमृतलाल नागर द्वारा रचित 'ये कोठेवालियाँ' वेश्याओं के जीवन पर केन्द्रित एक यथार्थवादी उपन्यास है। यथार्थवादी इस अर्थ में कि अमृतलाल नागर जी ने इसमें अपने निजी–जीवन के अनुभवों को दस्तावेजित किया है। उन्होंने अपने इस उपन्यास में वेश्यावृत्ति के गोरखधन्धे की परतों को उघाड़ने का सफल प्रयास किया है। इसमें वेश्यावृत्ति के इतिहास, परम्परा, वेश्यावृत्ति के विभिन्न प्रकार, वेश्यावृत्ति के कारणों और वेश्याओं के जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का सटीक व यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है।

नारी चाहे किसी भी देश या समाज से सम्बद्ध क्यों न हो पर उसे अपना आत्म–सम्मान अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है। कोई भी स्त्री स्वेच्छा या खुशी से वेश्या बनना नहीं चाहती परन्तु जीवन में अनेक ऐसे मोड़ और विकट परिस्थितियाँ आकर उन्हें घेर लेती हैं कि या तो वे स्वयं यह मार्ग अख्तियार कर लेती हैं या उन्हें जबरन इस मार्ग पर धकेल दिया जाता है। कोई भी स्त्री एक पुरुष (पति) को छोड़कर अन्य पुरुष का छाया–स्पर्श करना भी पसन्द नहीं कर सकती। यह बात उसके आत्मसम्मान से जुड़ी होती है। ''मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकती थी कि उस आदमी को अपना तन–मन सौंपू जो उसकी रक्षा नहीं कर सकता।''[5] ऐसी स्त्री यदि अपने पति से ही वेश्या बनने का प्रस्ताव सुने तो फिर उसका आत्मविश्वास चूर–चूर हो जाता है। ऐसी स्थिति में या तो वह आत्महत्या करने हेतु प्रस्तुत हो जाती है अथवा अपनी आर्थिक तंगी और गरीबी के आगे हार मान बैठती है।

'ये कोठेवालियाँ' की लूलू की माँ आर्थिक तंगी व गरीबी के कारण पति के कहने पर वेश्यावृत्ति अपना लेती है। उपन्यासकार के शब्दों में ''दूसरे दिन से हमारे पड़ोस का वेश्या–व्यापार विधिवत् आरम्भ हो गया।''[6] इस प्रकार पति के विवश करने पर जब एक पत्नी वेश्यावृत्ति जैसे घृणित कार्य को अपना लेती है तो वह अपने पति के प्रति आक्रोश से भर उठती है– ''तेरे बोलने से क्या होता है। मैं रंडी हूँ..सब लोग कू मालूम। मैं खुद बोलती...मैं रंडी हूँ....और तू.... मेरा मरद होके मेरे से अइसा काम करवाता...मेरी कमाई खाता..मैं।''[7]

आर्थिक तंगी के अतिरिक्त धार्मिक कुरीतियाँ, धार्मिक अंधविश्वास व अंधभक्ति, महिला शिक्षा का अभाव, महिलाओं में आत्मविश्वास की कमी, उच्च महत्त्वाकांक्षाएँ, दहेज–प्रथा, स्त्री–विवाह से जुड़ी समस्याएँ, पाश्चात्य संस्कषति का प्रभाव, आधुनिक सिने जगत का प्रभाव, अपरिपक्व प्रेम–सम्बन्ध आदि अनेक कारण भी वेश्यावृत्ति के पीछे दिखाई पड़ते हैं।

''दोषी कौन? वह रंडी–दलाल, वह बेकार पति, जीविका के लिए विवश होकर वेश्या बनने वाली वह सदगष्हस्था–कौन दोषी है?''[8] दोषी चाहे कोई भी क्यों न हो परन्तु इस वेश्या जीवन के दुष्प्रभाव अन्ततः वेश्या को ही भोगने पड़ते हैं क्योंकि वेश्या रिझाने की दुकान ही लगाती हैं। सदियों से इनका पेशा निश्चित है। जो वेश्याएँ दैहिक व्यवसाय करती हैं, गत–यौवना होने पर उनकी आमदनी के रास्ते बन्द हो जाते हैं और उन्हें अत्यन्त गरीबी में जीवन बिताना पड़ता है क्योंकि आय का अन्य कोई साधन उनके पास नहीं होता है। वेश्याओं का जीवन सामाजिक उपेक्षा व तिरस्कार से भरा होता है क्योंकि समाज वेश्या को हेय व घृणित दृष्टि से देखता है। उन्हें जीवन भर सामाजिक अलगाव का दंश झेलना पड़ता है।

वेश्या न केवल शारीरिक पीड़ा व यातना को झेलती हैं अपितु निरन्तर मानसिक कष्ट व पीड़ा को भी झेलती

हैं क्योंकि उन्हें मां, बहिन, पत्नी, प्रेमिका या अन्य किसी भी रूप में सम्मान प्राप्त नहीं होता है। वेश्या से उत्पन्न संतान या तो हीन–भावना से भरकर उपेक्षित जीवन जीती है या उन्हें शिक्षा–दीक्षा का अवसर मिलता है तो वे अपनी माँ का भी परित्याग कर देते हैं क्योंकि ''जाहिरा तौर न वे हमें अपनी मां कह सकते हैं और न हम उन्हें अपने बेटे–बेटी कह सकते हैं, तवायफ़ की औलाद कहते ही आपकी नज़रे उनकी ओर से बदल जाएँगी।''[9] इतना ही नहीं वेश्या संतान अपनी पहचान छिपाने के लिए वेश्या को खुले रूप में अपनी माँ स्वीकार नहीं करते क्योंकि ''तवायाफ़ की औलाद कहलाकर वे बेआबरू हो जाएँगी।''[10] इस प्रकार वेश्या आदि से अन्त तक अकेलेपन एवं अलगाव की शिकार होती हैं। उनका 'अपना' कोई नहीं होता है।

वेश्या जीवन सामाजिक अलगाव, सामाजिक उपेक्षा, शारीरिक व मानसिक कष्ट, हीन–भावना, संतानों का उपेक्षापूर्ण व्यवहार आदि समस्याओं से ही ग्रसित नहीं होता अपितु वेश्या अनेक पुरुषों के सम्पर्क में आने के कारण कई बार गम्भीर बीमारियों से घिर जाती है। 'ये कोठेवालियाँ' की बद्रेमुनीर भी इसी प्रकार गम्भीर बीमारी का शिकार हो जाती है– ''इधर एक सप्ताह पूर्व एक ही दिन में दो व्यक्तियों से यह रोग पाया और देखते ही देखते इतनी तेजी से बढ़ा कि चार दिन में सारे बदन में दाने भर गए। कमर से लेकर नाभी के ऊपर तक तो पकी फुन्सियों और उनके घावों के छत्ते के छत्ते दिखलाई देते थे।''[11] इस प्रकार दोषी चाहे व्यक्ति हो या समाज पर उसका अन्तिम परिणाम लूलू की माँ या बद्रेमुनीर जैसी वेश्याओं को ही देखना पड़ता है।

यद्यपि सरकारी कानूनों एवं सरकारी हस्तक्षेप के कारण खुले रूप में चलने वाले ये 'कोठे' आज कहीं दिखाई नहीं देते फिर भी ये वेश्यालय एक नये रूप व कलेवर में कहीं न कहीं दिखाई पड़ ही जाते हैं। कैबरे डांस, होटलों–क्लबों, नष्त्यघरों, ब्यूटी सलून तथा अन्य सुरक्षित स्थानों का कई बार गैर–कानूनी रूप से जिस्मफ़रोशी हेतु प्रयोग किया जाता है।

वेश्यावृत्ति की इस समस्या के निराकरण हेतु सरकारी स्तर एवं संस्थागत स्तर, सभी पर प्रयास करने की आवश्यकता है। वेश्यावृत्ति की इस जटिल समस्या के समाधान हेतु सरकारी स्तर व संस्थागत स्तर पर कठोर प्रयास किये जाने चाहिए। नारी–सुरक्षा से सम्बन्धित कानूनों का कठोरता से पालन किया जाए। समाज में जो नारी किसी भी प्रकार से कमजोर व पीड़ित है उसे आत्मनिर्भर बनाने हेतु घरेलू उद्योग–धन्धों का प्रशिक्षण दिया जाए। इस हेतु सरकार विभिन्न प्रकार के स्वयंसेवी संगठनों की सहायता ले सकती है। महिलाएँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर व सशक्त होंगी तो वे जीविकार्जन हेतु वेश्यावृत्ति जैसे गलत व अनैतिक कार्य करने से बच जाएँगी। वेश्यावृत्ति–उन्मूलन हेतु सर्वाधिक आवश्यकता है– व्यक्तिगत स्तर पर सुधार की। यदि व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति नारी के प्रति सम्मान व आदर का दृष्टिकोण रखेगा तो यह समस्या उत्पन्न ही नहीं हो पाएगी। व्यक्तिगत स्तर पर इस घृणित सामाजिक कुप्रवृत्ति को तभी बदला जा सकता है जब नारी के प्रति पुरुष मानसिकता को स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान किया जाए। इस हेतु आवश्यकता है कि अपनी भावी पीढ़ी को संस्कारवान् बनाया जाए व स्त्री–सम्मान की शिक्षा दी जाए। इसके साथ ही घर की बालिकाओं को स्वस्थ व प्रेमभावपूर्ण पारिवारिक वातावरण उपलब्ध कराया जाए क्योंकि अधिकांशतः यह देखने में आता है कि भारतीय परिवारों में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक स्नेह व सम्मान दिया जाता है। इसके विपरीत घर की बेटी को 'परायाधन' कहकर दुत्कार व उपेक्षा दी जाती है जिसके कारण उनमें हीन–भावना घर कर जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि ''घर में निरादर पाने वाली लड़कियाँ जब कामीजनों के चापलूसी–भरे फुसलावे सुनती हैं तो उन्हें यह समझ में आता है कि वह उनकी इज्जत कर रहा है। यह इज्जत का नशा ही उनमें काम–समर्पण करवाने का मुख्य कारण होता है।''[12] आधुनिकता का प्रभाव, सिनेमा जगत की चकाचौंध, उच्च महत्त्वाकांक्षाएँ, सोशल मीडिया का प्रभाव आदि अनेकानेक कारणों से युवा पीढ़ी भटक जाती है अतः आज आवश्यकता है युवा पीढ़ी को संस्कारवान् बनाने की जिससे कि वेश्यावृत्ति व महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध समूल नष्ट किये जा सकें।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति–3/56।।
2. कामायनी–जयशंकर प्रसाद (लज्जा सर्ग से उद्धृत)
3. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2011, पृ.सं.–54
4. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2011, पृ.सं.–53

5. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कारण–2011, पृ.सं.–42
6. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कारण–2011, पृ.सं.–24
7. मुर्दाघर–जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, पृ.सं.–64
8. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कारण–2011, पृ.सं.–27
9. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कारण–2011, पृ.सं.–76
10. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कारण–2011, पृ.सं.–72
11. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कारण–2011, पृ.सं.–31
12. ये कोठेवालियाँ, अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्कारण–2011, पृ.सं.–191

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 97-104

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

HOUSEHOLD AIR POLLUTION IN A COHORT OF PREGNANT WOMEN FROM KANPUR CITY U.P.

Bhuwan Diwakai Dixit Kuwar
Low Maha Vidyalay Unnao Kanpur (CPSJM University Kanpur)

Introduction An estimated 40% of the world's population relies on solid biomass fuels (wood, charcoal, crop residues) for cooking or heating (Bonjour et al. 2013). The smoke generated from the combustion of these fuels is a complex mixture of gases and fine particles including many known harmful pollutants, such as carbon monoxide (CO), suspended fine particulate matter (2.5 μ m; PM2.5), nitrogen oxide, and polycyclic aromatic hydrocarbons. Household air pollution from biomass burning is now acknowledged as a major contributor to the global disease burden (Lim et al. 2012). During pregnancy, exposure to biomass cooking smoke has been linked with a reduction in birth weight, an increase in stillbirth, and a rise in preterm births in a number of epidemiologic investigations (Amegah et al. 2014). Despite a growing evidence base of reproductive harm from household air pollution, methodological shortcomings remain, including challenges in exposure assessment and the potential for uncontrolled confounding. Pathological examination of placentas from pregnant women exposed to biomass cook smoke may identify lesions that are known to be associated with adverse pregnancy outcomes. Furthermore, specific lesions may shed light on the underlying pathophysiology and suggest targets for amelioration of risk. For these reasons, we aimed to characterize placental pathology associated with household air pollution among women cooking with biomass fuels in an African population. We hypothesized that the placenta would demonstrate inflammatory lesions in the setting of high household air pollutant exposure, and specifically when levels of PM2.5 exposure are high. Cardiopulmonary researchers have demonstrated both that inhaled ultrafine particles can enter the circulation and that systemic measures of inflammation increase following exposure to air pollution (Donaldson et al. 2005; Scapellato and Lotti 2007). We posited that damage to the placenta may occur directly from exposure to circulating particles or secondary to systemic inflammation, either of which may result in any of the well-defined histologic placental chronic inflammatory lesions—chronic villitis (Figure 1), chronic chorioamnionitis, or intervillositis. Second, we hypothesized that biomass smoke exposed placentas would demonstrate hypoxic lesions, particularly as CO levels increase. CO impairs placental oxygen transport by increasing levels of carboxyhemoglobin, thereby displacing oxygen from hemoglobin and reducing its availability to the fetus (Soothill et al. 1996). The placental response in the setting of hypoxia is an increase in the surface area and vascularity of the villi (Altshuler 1984). This adaptive angio genesis is manifest as chorangiosis (Figure 2), a common feature of tobacco-exposed placentas (Pfarrer et al. 1999).

Methods ***Overview*** Between January 2011 and May 2013, personal exposures to PM2.5 and CO were measured during the second or third trimester for a subset of pregnant women enrolled in the

Prenatal Iron Supplements study (NCT01119612; http://clinicaltrials. gov/show/NCT01119612). This parent trial recruited only HIV-negative women in their first or second pregnancies living in an urban/ periurban setting in and around Dar es Salaam, Tanzania (Etheredge et al. 2015). For our substudy on household air pollution, we approached only nonsmoking pregnant women who were the primary cooks in their household and were e" 15 years of age to participate in exposure measurement. Study subjects answered a number of questions specific to their cooking practices, including types of fuel used, hours spent cooking, stove design, cooking area ventilation, smoking habits of other household members, as well as exposure to other sources of pollution such as traffic, tobacco, incense, and the burning of rubbish. As part of the parent trial, standard operating procedures for gestational age assessment, birth measurements, and collection of the placenta were followed by trained research staff. Placental malaria was the primary outcome of the Prenatal Iron Supplements study, so trial procedures were optimized to encourage delivery at one of the study-affiliated facilities to enable collection of the placenta. Furthermore, the placentas were processed for histopathologic examination regardless of whether pregnancy complications occurred and therefore are more representative of the general population in this study. Subjects were eligible for the analysis presented in this manuscript if a personal exposure measure of either PM2.5 or CO was successfully obtained during pregnancy and placental histopathology was available. The study protocol was approved by the institutional review boards of Muhimbili University of Health and Allied Sciences, the Harvard T.H. Chan School of Public Health, and Partners Healthcare (for Massachusetts General Hospital). Informed consent was obtained from all participants.

Exposure Monitoring CO was measured over 72 hr using passive diffusion tubes (Draeger Carbon Monoxide 50/a-D; Draeger USA) clipped to the woman's clothing, and measurements of the length of color change were used to calculate an average concentration in parts per million (ppm). PM2.5 exposure was measured during the first and third 24 hr of the 72-hr sampling period using a portable pump worn by the subject. Filters were weighed on a Mettler Toledo MT5 microbalance after conditioning in a temperature- and humidity-controlled environment for at least 24 hr and statically discharged via a polonium source. All filter weights took into account correction for lab blanks. The two 24-hr PM2.5 mass concentra-tions were averaged to represent the personal PM2.5 exposure. Exposure measurements were conducted only once per subject during a single 72-hr period in either the second (12%) or third (88%) trimester of preg-nancy. For additional details regarding CO and PM2.5 measurements, see Supplemental Material, "Details of carbon monoxide exposure measurement" and "Details of fine particulate matter exposure measurement."

About the Air Quality Levels

Placental Sampling, Histopathologic Processing and Interpretation Before the study began,

AQI	Air Pollution Level	Health Implications	Cautionary Statement (for PM2.5)
0 - 50	Good	Air quality is considered satisfactory, and air pollution poses little or no risk	None
51 -100	Moderate	Air quality is acceptable; however, for some pollutants there may be a moderate health concern for a very small number of people who are unusually sensitive to air pollution.	Active children and adults, and people with respiratory disease, such as asthma, should limit prolonged outdoor exertion.
101-150	Unhealthy for Sensitive Groups	Members of sensitive groups may experience health effects. The general public is not likely to be affected.	Active children and adults, and people with respiratory disease, such as asthma, should limit prolonged outdoor exertion.
151-200	Unhealthy	Everyone may begin to experience health effects; members of sensitive groups may experience more serious health effects	Active children and adults, and people with respiratory disease, such as asthma, should avoid prolonged outdoor exertion; everyone else, especially children, should limit prolonged outdoor exertion
201-300	Very Unhealthy	Health warnings of emergency conditions. The entire population is more likely to be affected.	Active children and adults, and people with respiratory disease, such as asthma, should avoid all outdoor exertion; everyone else, especially children, should limit outdoor exertion.
300+	Hazardous	Health alert: everyone may experience more serious health effects	Everyone should avoid all outdoor exertion
AQI	Air Pollution Level	Health Implications	Cautionary Statement (for PM2.5)

research nurses received hands-on training and skills veri-fication in placental sampling by a U.S. perinatal pathologist (D.J.R.). Similarly, study pathology technicians were trained and supervised by a U.S. perinatal patholo-gist (D.J.R.). Following birth, portions of the umbilical cord, membranes, and three full thickness sections of a prespecified size (approximately 3 cm3) from the placental disk were obtained by study nurses. Palpable or visible abnormalities of the placental disk were preferentially targeted for sampling. The cord and membranes were subsequently excised and the placenta weighed with an elec-tronic scale to the nearest gram. All placental samples obtained were placed in 10% neutral buffered formalin and then transported to the pathology lab at Muhimbili University where they remained in fixation for at least 4 hr up to a maximum of 24 hr. Following fixation, samples were trimmed and routinely processed to produce hematoxylin/eosinstained slides. All births occurred in one of the study hospitals. Study nurses were stationed at study facilities around the clock to complete placental sampling in a timely manner. Sampling occurred within the first hour after delivery for most subjects; if this could not be accomplished, placentas were placed in a facility refrigerator until sampling occurred. Slides were shipped to Massachusetts General Hospital where they underwent histopathologic examination by an experienced perinatal pathologist (D.J.R.) who was blinded to details regarding cooking fuel and measured exposure levels. Between one and three parenchymal slides were available for review. Diagnoses were rendered using standard diagnostic criteria (Altshuler 1984; Chisholm and Heerema-McKenney 2015; Ogino and Redline 2000; Redline et al. 2003, 2004a, 2004b; Roberts 2008, 2013; Schwartz 2001) and coded using a standardized form. Diagnoses were made on the routine hematoxylin/ eosin-stained slides; no special studies were obtained. Specific lesions were assigned into the categories of hypoxic, hypertensive/ischemic, inflammatory, infectious, and thrombotic as outlined in Table 1. Thrombotic lesions were further subclassified as fetal or maternal in origin. More than one diagnosis could be rendered for a given subject. Although our specific hypothesis was that the placenta would show adaptations related to inflammation or hypoxia, all other histopathologic findings were noted and compared with exposure data. Placental weights were compared against a United States reference standard (Pinar et al. 1996) as placental weight standards for Tanzania currently do not exist. Although the relevance of this standard to Tanzanian placentas is unclear, extremes of the standard should remain relevant. Placentas were therefore characterized as small for gestational age (< 10th percentile), large for gestational age (> 90th percentile), or appropriately sized. Gestational age was assigned in the parent trial by means of a postnatal new Ballard examination conducted by facility-based research staff within 24 hr following delivery (Ballard et al. 1991). The total of both the neurologic and external features scores was translated into gestational age in weeks using the published Ballard maturity-rating tables (Ballard et al. 1991).

Data Analysis Subjects were grouped into tertiles of exposure for both PM2.5 and CO to evaluate exposure– response associations. The Cochran Armitage trend test was used to evaluate whether the prevalence of placental lesions in a given category (hypoxic, ischemic/hypertensive, inflammatory, infectious, thrombotic- maternal, thrombotic-fetal) increased across exposure tertiles and two-sided *p*-values reported. If any cell count was < 5, an exact *p*-value was reported rather than the asymp-totic approximation. Similar analyses were performed to compare the proportion of small for gestational age placental weights and large for gestational age placental weights across tertiles of PM2.5 and CO exposure. Models were also fit using multiple logistic regression with exposure represented as a continuous predictor of placental lesion or placental weight categories. Exposure measurements for both PM2.5 and CO were natural log (ln)–transformed given the skews in measurement distributions. Candidate covariates were selected *a priori* and included maternal age (18–20, 21–25, e" 26 years), body mass index (< 18.5, 18.5–24.9, 25–29.9, e" 30 kg/m2), secondhand smoke exposure, season of exposure measurement (rainy vs. dry), and a household asset index (low:

0–5, medium: 6–8, high: 9–10) constructed after tallying household ownership of 10 items (car, generator, bicycle, sofa, television, radio, refrigerator, fan, electricity, and potable water). Additional covariates were considered including maternal hypertension, antenatal treatment for malaria, and tobacco use during pregnancy but were not included in the adjusted models given the low prevalence of these conditions and the consequent destabi-lization of effect estimates. No adjustments were made for multiple comparisons. Finally, we explored associations between each of the placental lesion categories and adverse preg-nancy outcomes, specifically low birth weight (< 2,500 g) and stillbirth; unadjusted odds ratios (ORs) and 95% confidence intervals (CIs) were estimated using logistic regression for both stillbirth and low birth weight. Analyses were performed separately for PM2.5 and CO exposures. Statistical analyses were performed using SAS software version 9.4 (SAS Institute Inc.).

Air pollution on the rise in Kanpur, says latest CSE study

Kanpur, December 17, 2009: Efforts to reduce air pollution in Kanpur are in danger of being wasted, as pollution levels are once again creeping up in the city: says a latest analysis of recent air quality data done by Centre for Science and Environment (CSE), a New Delhi-based research and advocacy organisation. The analysis was released here today at a public meeting titled *Kanpur City Dialogue on Air Quality and Transportation Challenge: An Agenda for Action.* The meeting wasjointly organised by the Uttar Pradesh Pollution Control Board and CSE and was addressed by Bhure Lal, chairperson of the Supreme Court's Environment Pollution (Prevention and Control) Authority (EPCA). Kanpur-based pollution and urban governance experts, civil society representatives and media people attended the meet. Said Anumita Roychowdhury, associate director, CSE and head of its air pollution control and transportation programme: "This public meeting has been organised to find solutions to the scary air pollution and mobility challenge facing Kanpur. This is part of the effort to engage with policymakers and people of the city to strengthen policy action on air pollution and urban mobility, and also share lessons from other cities like Delhi to chart the future course of action." CSE has also carried out a stakeholders' perception survey in Kanpur to understand residents' views on air pollution and mobility problems in the city. The survey results echo its analysis: 80 per cent of the respondents have said air pollution is worsening, and incidence of respiratory diseases, asthma and eye irritation is on the rise. Addressing the gathering, Bhure Lal said, "Indian cities will have to strengthen pollution control regime, and also improve enforcement at the local level. In the absence of coordinated efforts, including stricter enforcement, pollution is likely to rise in the coming years due to the sheer increase in vehicle ownership."

Growing haze: pollution levels rising again

In the past few years, Kanpur had taken steps to reduce pollution. It tightened emission norms of vehicles; strengthened the 'pollution under control' system with new equipment and norms for in-use vehicles; introduced a CNG programme targeting autos, tempos and buses; and phased out over 1,500 old vehicles. On the industrial front, the city authorities closed down 12 polluting industries and initiated other measures to clear the air. But in spite of all these actions, pollution levels are on the rise. In the year 2000, the annual average level of respirable suspended particulate matter (RSPM, or PM10) in the city stood at 211 microgram per cubic metre (mg/cum). The level dropped to 179-189 mg/cum during 2003-05. The upward swing is now noticeable – the annual average level jumped back to 212 mg/cum in 2008, which was 3.5 times higher than the standard. The levels can go higher this winter. In a clear sign of pollution from vehicles, levels of nitrogen oxide (NOx), though still below the norm, have been increasing as well. Says Vivek Chattopadhyay, senior researcher, CSE: "The recent tightening of air quality standards by the Union ministry of environment and forests has changed the air

quality profile of Kanpur. Locations like Sharda Nagar, Deputy ka Parao, Kidwai Nagar and Fazal Ganj continue to remain critically polluted with particulates; what's more, nitrogen dioxide levels in all these locations have now moved from low to moderate levels." Studies have shown that about 60 per cent of the geographical area of the city has a pollution problem, with a highly polluted city core. This exposes a large number of people to very high pollution levels. The costs, says the CSE research, are high. Studies done by the GSVM Medical College and the Central Pollution Control Board (CPCB) show lower lung function for people living in the Vikas Nagar and Juhilal Colony areas, than those living in cleaner environment. According to UPENVIS, 0.4 million disability adjusted life years are lost every year in Uttar Pradesh due to air pollution. This costs the state about Rs 2.6 billion. Studies in the US show that an increase of only 10 mg/cum of particulate matter of less than 2.5 micron (PM2.5) can lead to significant increases in health risks. High exposure to PM2.5 is known to lead to increased hospitalisation for asthma, lung diseases, chronic bronchitis and heart damage. Long-term exposure can cause lung cancer. Rising level of nitrogen oxides can also have serious implications for respiratory diseases. But it is also clear that if we act on time and improve the air quality, we can save lives and prevent illnesses. A study by the Usha Gupta Institute of Economic Growth and the Bhimrao Ambedkar College has estimated that collectively, Kanpur can save as much as Rs 213 million if it meets the air quality standards. Bhure Lal warned, "Pollution control has to be an integral part of the urban growth process and must rest on precautionary and prevention principle to avert threat to public health."

From where is the pollution coming : Most of the air pollution in Kanpur is coming from its rapidly growing number of vehicles, high levels of industrial activities and growing use of diesel generators, informs Chattopadhaya. Recent assessments by CPCB and Kanpur IIT show that 22 per cent of the killer particles are from vehicles and 33 per cent are from industry; 47 per cent of nitrogen oxides are from vehicles and 43 per cent from industry.Vehicles are of very special concern because vehicle emissions take place within the breathing zone of the people. This increases daily exposure to deadly dose of toxins.CSE researchers point out that there are early signs of a mobility crisis building up in Kanpur. With a 2.5-million strong population, Kanpur has 6,43,245 motorised vehicles. Every year, the city is registering 40,000 new vehicles; at least 100 two-wheelers and cars and 10 commercial vehicles are registered daily. Even though the vehicle numbers are a lot less than in Delhi, smaller and densely built Kanpur is getting increasingly congested.Dependence on personal vehicles is rising steadily. Two-wheelers are 83 per cent of the fleet, while cars make up another 13 per cent. But people are now buying more cars: the annual growth rate of cars is higher (10 per cent) than that of two-wheelers (7 per cent).As a result of this growing congestion, peak hour traffic is slowing down. Against the governed maximum speed of 40 km/hour, the average speed in Kanpur has plummeted to 17-20 km/hour and even slower. According to a 2008 study commissioned by the Union ministry of urban development, traffic volumes have exceeded the designed capacity of roads in more than 26 per cent of Kanpur's road length. Some of the key roads which carry more traffic than designed include Meston Road, Canal Road, Halsey Road and the Kidwai Nagar Road near Ghantaghar.Vehicles not only pollute the air; they also threaten energy security. In Kanpur, studies have shown that cars and two-wheelers together use up about 80 per cent of the total energy consumption of 0.1 million tonne of oil equivalent per year in the transport sector. If dependence on personal vehicles continues to increase, oil consumption will go up by three times by 2030. This is ominous for a country which imports 72 per cent of its crude oil.Increasing energy use, in its turn, can hike emissions of heat-trapping carbon dioxide (CO2) leading to more global warming. According to a recent air study done by New Delhi-based air pollution research and modeling body SIM Air, personal vehicles in Kanpur account for the highest CO2 emissions — 84 per cent – in the transport sector.

What Kanpur needs to do: Kanpur's strength is that it meets nearly 60 pent of its travel needs

through the intermediate public transport system — autos, tempos, cycle rickshaws, cycles, buses and walking. The majority of the city's people still use sustainable forms of transport. Roychowdhury adds: "Kanpur must not repeat the mistakes that Delhi has made of following pro-car policies. Kanpur still has the chance to plan its future growth differently and avoid the path of pollution, congestion and energy-guzzling. More road space is not the answer. Cities need to redesign their existing space and travel pattern to provide the majority of the people affordable and efficient mode of transport that can be an alternative to personal vehicles. Kanpur must build on its strength."

Results Of the 239 primigravid or secundigravid women recruited for PM2.5 and CO exposure monitoring during pregnancy in the larger study, 116 had placental slides available for histopathologic review. All 116 had CO measurements successfully obtained. PM2.5 measurements were available for 79 of the 116 (see Figure S1). Exposure measurement occurred during 2011 and 2012 for all subjects except one who was recruited during 2013. Maternal characteristics, sociodemographics, cooking behaviors, kitchen characteristics, and other sources of household air pollution are summarized in Table 2. The women were recruited primarily from urban or periurban households in and around Dar es Salaam, Tanzania. One hundred ten of 116 (94.8%) were the primary cooks in their household, and the majority cooked three meals per day (74 of 116, 63.8%). Cooking areas were commonly shared with other families (54 of 116, 46.6%). Almost one-third of the cooking areas were located outdoors (37 of 116, 31.9%); this varied somewhat depending on the rain. Approximately half of the outdoor cooking areas were located under a roof and the remainder in the open air. For those cooking inside, a separate cooking area located in a different structure from the main house was used by about one-third of the women (34–37% depending on the season). Almost all indoor cooking spaces were ventilated by at least one window or an open door. The primary household fuel was charcoal in both the dry (93 of 116, 80.2%) and rainy seasons (62 of 116, 53.4%). Kerosene was the second most common fuel, with use increasing during the rainy season (46 of 116, 39.6%) compared with the dry season (12 of 116, 10.3%). Only two subjects cooked with gas or electricity, and < 10 households used wood as the primary fuel. When this cohort of 116 subjects was compared with the 239 subjects that constituted the larger study on exposure to household air pollutants during pregnancy, there were no significant differences identified with regard to any of the characteristics presented in Table 2 (data not shown).

Exposure Levels Among the 79 subjects with PM2.5 measure-ments, the geometric mean personal PM2.5 exposure was 40.5 ìg/m3 (geometric standard deviation: 17.3) with a range from 14.9 to 528.2 ìg/m3. The first tertile of exposure included exposures d"Å•p Å• 32.9 ìg/m3, the second tertile from 33 to 45.6 ìg/m3, and the upper tertile > 45.6 ìg/m3. The geometric mean personal CO exposure for the 116 women with these measurements was 2.21 ppm (geometric standard deviation: 1.47) and ranged from 0.34 to 25.15 ppm. The first tertile included exposures d" 1.42 ppm, the second tertile from 1.43 to 3.06 ppm, and the upper tertile > 3.06 ppm. As with baseline characteristics, exposure measurements did not differ significantly among subjects with available placental slides compared with the larger group of 239 subjects (data not shown). The strength of correlation between PM2.5 and CO measurements for an individual subject was only weakly positive (Pearson's $r = 0.30$, $p = 0.008$ after ln-transformation), so we continued with separate analyses for PM2.5 and CO.

Conclusions In summary, our results suggest that prenatal exposure to inhaled particulate matter and carbon monoxide may be associated with fetal thrombosis in a dose-dependent matter. Our findings should be verified in larger studies with populations using a variety of biomass fuels in both rural and urban settings. Attention should be paid to obtaining repeated measures of exposure over the course of gesta-tion. FTV may contribute to unfavorable perinatal outcomes such as low birth weight and stillbirth, outcomes that have been associ-ated with household air pollution exposure in pregnancy. Moreover, given a recognized link between fetal thrombosis and adverse neuro-cognitive development, our findings

suggest that additional long-term benefits should be evaluated following reductions in prenatal household air pollution exposure.

References *Altshuler G. 1984. Chorangiosis. An important placental sign of neonatal morbidity and mortality. Arch Pathol Lab Med 108:71–74. Amegah AK, Quansah R, Jaakkola JJK. 2014. Household air pollution from solid fuel use and risk of adverse pregnancy outcomes: a systematic review and meta-analysis of the empirical evidence. PloS One 9:e113920, doi: 10.1371/journal. pone.0113920. Ballard JL, Khoury JC, Wedig K, Wang L, Eilers- Walsman BL, Lipp R. 1991. New Ballard Score, expanded to include extremely premature infants. J Pediatr 119:417–423. Bonjour S, Adair-Rohani H, Wolf J, Bruce NG, Mehta S, Prüss-Ustün A, et al. 2013. Solid fuel use for household cooking: country and regional estimates for 1980–2010. Environ Health Perspect 121:784–790, doi: 10.1289/ehp.1205987. Brunekreef B, Holgate ST. 2002. Air pollution and health. Lancet 360:1233–1242, doi: 10.1016/ S0140-6736(02)11274-8. Chisholm KM, Heerema-McKenney A. 2015. Fetal thrombotic vasculopathy: significance in liveborn children using proposed society for pediatric pathology diagnostic criteria. Am J Surg Pathol 39:274–280, doi: 10.1097/PAS.0000000000000334. Dionisio KL, Howie SRC, Dominici F, Fornace KM, Spengler JD, Adegbola RA, et al. 2012. Household concentrations and exposure of children to particulate matter from biomass fuels in The Gambia. Environ Sci Technol 46:3519–3527. Dix-Cooper L, Eshkenazi B, Romero C, Balmes J, Smith KR. 2012. Neurodevelopmental performance among school age children in rural Guatemala is associated with prenatal and postnatal exposure to carbon monoxide, a marker for exposure to woodsmoke. Neurotoxicology 33(2):246–254.*

Donaldson K, Mills N, MacNee W, Robinson S, Newby D. 2005. Role of inflammation in cardio-pulmonary health effects of PM. Toxicol Appl Pharmacol 207(2 suppl):483–488, doi: 10.1016/j. taap.2005.02.020. Etheredge AJ, Premji Z, Gunaratna NS, Abioye AI, Aboud S, Duggan C, et al. 2015. Iron supplementa-tion among iron-replete and non-anemic pregnant women in Tanzania: a randomized clinical trial. JAMA Pediatr 169(10):947–955. Gilmour PS, Morrison ER, Vickers MA, Ford I, Ludlam CA, Greaves M, et al. 2005. The procoagu-lant potential of environmental particles (PM10). Occup Environ Med 62:164–171, doi: 10.1136/ oem.2004.014951. Jiang R, Bell ML. 2008. A comparison of particulate matter from biomass-burning rural and non-biomass-burning urban households in northeastern China. Environ Health Perspect 116:907–914, doi: 10.1289/ehp.10622. Kreyling WG, Semmler M, Erbe F, Mayer P, Takenaka S, Schulz H, et al. 2002. Translocation of ultrafine insoluble iridium particles from lung epithelium to extra pulmonary organs is size dependent but very low. J Toxicol Environ Health A 65:1513–1530, doi: 10.1080/00984100290071649. Lim SS, Vos T, Flaxman AD, Danaei G, Shibuya K, Adair-Rohani H, et al. 2012. A comparative risk assessment of burden of disease and injury attrib-utable to 67 risk factors and risk factor clusters in 21 regions, 1990–2010: a systematic analysis for the Global Burden of Disease Study 2010. Lancet 380:2224–2260, doi: 10.1016/S0140-6736(12)61766-8. Lippmann M, Chen LC, Gordon T, Ito K, Thurston GD. 2013. National Particle Component Toxicity (NPACT) Initiative: integrated epidemiologic and toxicologic studies of the health effects of particulate matter components. Res Rep Health Eff Inst 177:5–13. Naeher LP, Smith KR, Leadere BP, Neufeld L, Mage DT. 2001. Carbon monoxide as a tracer for assessing exposures to particulate matter in wood and gas cookstove households of highland Guatemala. Environ Sci Technol 35:575–581. Nemmar A, Hoylaerts MF, Hoet PHM, Dinsdale D, Smith T, Xu H, et al. 2002. Ultrafine particles affect experimental thrombosis in an in vivo hamster model. Am J Respir Crit Care Med 166:998–1004, doi: 10.1164/rccm.200110-026OC. Ogino S, Redline RW. 2000. Villous capillary lesions of the placenta: distinctions between

chorangioma, chorangiomatosis, and chorangiosis. Hum Pathol 31:945–954, doi: 10.1053/ hupa.2000.9036. Pfarrer C, Macara L, Leiser R, Kingdom J. 1999. Adaptive angiogenesis in placentas of heavy smokers. Lancet 354:303, doi: 10.1016/S0140-6736(99)01676-1. Pijnenborg R, Dixon G, Robertson WB, Brosens I. 1980. Trophoblastic invasion of the human decidua from 8 to 18 weeks of pregnancy. Placenta 1:3–19. Pinar H, Sung CJ, Oyer CE, Singer DB. 1996. Reference values for singleton and twin placental weights. Pediatr Pathol Lab Med 16:901–907. Redline RW, Ariel I, Baergen RN, Desa DJ, Kraus FT, Roberts DJ, et al. 2004a. Fetal vascular obstructive lesions: nosology and reproducibility of placental reaction patterns. Pediatr Dev Pathol 7:443–452, doi: 10.1007/s10024-004-2020-x. Redline RW, Boyd T, Campbell V, Hyde S, Kaplan C, Khong TY, et al. 2004b. Maternal vascular under-perfusion: nosology and reproducibility of placental reaction patterns. Pediatr Dev Pathol 7:237–249, doi: 10.1007/ s10024-003-8083-2. Redline RW, Faye-Petersen O, Heller D, Qureshi F, Savell V, Vogler C, et al. 2003. Amniotic infec-tion syndrome: nosology and reproducibility of placental reaction patterns. Pediatr Dev Pathol 6:435–448, doi: 10.1007/s10024-003-7070-y. Roberts DJ. 2008. Placental pathology, a survival guide. Arch Pathol Lab Med 132:641–651, doi: 10.1043/1543-2165(2008)132[641:PPASG]2.0.CO;2. Roberts DJ. 2013. Perinatal pathology: practice suggestions for limited-resource settings. Arch Pathol Lab Med 137:775–781, doi: 10.5858/ arpa.2011-0560-SA. Saleemuddin A, Tantbirojn P, Sirois K, Crum CP, Boyd TK, Tworoger S, et al. 2010. Obstetric and perinatal complications in placentas with fetal thrombotic vasculopathy. Pediatr Dev Pathol 13:459–464, doi: 10.2350/10-01-0774-OA.1. Scapellato ML, Lotti M. 2007. Short-term effects of particulate matter: an inflammatory mechanism? Crit Rev Toxicol 37:461–487, doi: 10.1080/10408440701385622. Schwartz DA. 2001. Chorangiosis and its precursors: underdiagnosed placental indicators of chronic fetal hypoxia. Obstet Gynecol Surv 56:523–525. Smith KR, McCracken JP, Thompson L, Edwards R, Shields KN, Canuz E, et al. 2010. Personal child and mother carbon monoxide exposures and kitchen levels: methods and results from a randomized trial of woodfired chimney cookstoves in Guatemala (RESPIRE). J Expo Sci Environ Epidemiol 20:406–416. Soothill PW, Morafa W, Ayida GA, Rodeck CH. 1996. Maternal smoking and fetal carboxyhaemoglobin and blood gas levels. Br J Obstet Gynaecol 103:78–82. Van Vliet EDS, Asante K, Jack DW, Kinney PL, Whyatt RM, Chillrud SN, et al. 2013. Personal exposure to fine particulate matter and black carbon in households cooking with biomass fuels in rural Ghana. Environ Res 127:40–48. Vern TZ, Alles AJ, Kowal-Vern A, Longtine J, Roberts DJ. 2000. Frequency of factor VLeiden and prothrombin G20210A in placentas and their relationship with placental lesions. Hum Pathol 31:1036–1043. WHO (World Health Organization). 2010. WHO Guidelines for Indoor Air Quality: Selected Pollutants. http:// www.euro.who.int/__data/ assets/pdf_file/0009/128169/e94535.pdf?ua=1 [accessed 2 June 2016].

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April 2021 Page No. : 105-108

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

THE COURTESANS OF LUCKNOW

Tabassum khan
Lecturer (AmirddullaIsalmiya Degree College)
Lucknow

From the 18 thcentury onwards ,Lucknow was famous centre of integrated culture. According to Abdul HalimShararan novelist and historian of Lucknow, courtesans and concubines played a prominent role in ancient and medieval kingdoms. Courtesans, in Indian context, can be defined as women who are paid to dance in royal courts for the entertainment of royalty. These women were financially independent, and there were many who had high status within society due to their beauty and talents.

Tawaifs were largely a North Indian institution central to Mughal court culture from the 16th century onwards and became even more prominent with the weakening of Mughal rule in the mid-18th century. The patronage of the Mughal court before and after the Mughal Dynasty in the Doab region and the artistic atmosphere of 16th century Lucknow made arts-related careers a viable prospect. Many girls were taken at a young age and trained in both performing arts (such as Kathak and Hindustani classical music) as well as literature (ghazal) to high standards. Courtesans were expert in classical form of vocal music and dance but diluted the dhrupad and khayal. More pleasing tunes like bhairvi, thumri and dadra were invented, being light classical, they were easily appreciated by common man. Once they had matured and possessed a sufficient command over dancing and singing, they became a tawaif, high-class courtesans who served the rich and noble.

The tawaif's introduction into her profession was marked by a celebration, the so-called **missîceremony**, that customarily included the inaugural blackening of her teeth. For the missi ceremony, the novice girl was adorned and clothed as a bride and her teeth were blackened for the first time with missi under the supervision of the senior courtesans. The ritual was an internal and private affair Celebrations were accompanied by dancing and singing followed by a feast. The missi ceremony did not involve the deflowering of a girl; this was a later observance.

The courtesans of Lucknow were divided into **three categories**. The first, explains Abdul HalimShararwere the **Kanachis,** women belonging to the **Kanchan** tribe whose main occupation was being prostitutes. These women began to arrive to Awadh from Delhi and the Punjab during the time of ShujaudDaula, the Nawab of Awadh, an extravagant ruler famous for his love of beautiful women. During NawabShujaudDaula's reign, Faizabad was the capital of Awadh and so, the prominent courtesans of the province lived there, as they later did in Lucknow. Most famous courtesans belonged to the Kanachi category.

The second category were the **ChunaWalis**, whose original profession was to sell lime. They later joined the other courtesans and many belonging to this group eventually became famous for their voice, such as ChunaHaidar who was responsible for collecting a "large group of courtesans from her caste."

The third category, the **Nagarnt**, came from Gujrat. During the Nawab's reign, "there was such a multitude of bazaar beauties and dancers in the town that no lane or alley was without them." Furthermore, thanks to ShujaudDaula'sfavors, courtesans were enormously wealthy. Most of them had luxurious homes and two or three opulent tents attached to them. The high-class tawaifs, literall'tramps',were called tent-dwellers, because they accompanied kings and generals on their hunting trips and wars.

The 19th century Indian society was elitist and class-based and the world of the tawaifs "was as complex and hierarchical as the society of which it was part."It is also believed that young nawabs-to-be were sent to these "tawaifs" to learn "tameez" and "tehzeeb" which included the ability to differentiate and appreciate good music and literature, perhaps even practice it, especially the art of ghazal writing. The courtesans were socially accepted as counsellors and mentors for the sons of the elite providing an education in sensuality, poetry, and the graces of courtly conversation.' According to an essay by Sarah Waheed in Modern Asian Studies, the kothas 'served as "finishing schools" for young aristocratic men'. McNeil also remarks that the wealthy "sent their sons to them in order for them to learn manners, grooming and etiquette". By the 18th century, they had become the central element of polite, refined culture in North India.

The main purpose of these courtesans was to professionally entertain their guests at mehfils. While sex was often incidental, it was not assured contractually. High-class or the most popular tawaifs could often pick and choose among the best of their suitors.

Clothes are the most visual symbol of a culture and relate very deeply to its society. The dress of the courtesans was modesty itself and nothing but their faces, feet and hands were exposed. Captain Mundy found the dress of Indian nautch girls infinitely more decent than that of French andItalians.William Crooke in his book Things Indian: Being Discursive Notes on Various Subjects Connected with India, wrote the following about the nautch: "The dress of the nautch-girl is highly decorous but arranged with little elegance or grace. They wear masses of jewellery, the anklets of silver or gold with little bells making a soft tinkling as their brown feet move."

They were religious minded and pious in their observance of rituals and generous in making donations to mosques. As the Moharram moon was sighted, the unique place of joy and fanfare used to be in blackrobes, instruments used to be covered and were not touched in this period. Tawaifs used to sit with bayaz (collection of elegies), recite soz and the audience just drowned in the ocean of tears. Their Tazias had a typical different glitter. During Muharram,However, much of the public recitation of nauha(lamentations) and soz (dirge) was done by courtesans. In Lucknow, ChunewaliHaider, Hasso, Bari Jaddan, Mughal Jan, Nanhi Begum and the Chaudharain sisters made their names in Muharram recitals in the early part of the 20th century, and male devotees always flocked to such functions.

If we talk about Celebrated courtesans such as MunsarimWaliGohar mesmerized the audiences by performing classical forms of dance, such as the batana, in the most sublime way, for over three hours. Sharar describes two courtesans by the names of Zohra and Mushtari, as "not only poetesses and accomplished vocalists, but...also incomparable dancers

During the time of NawabAsif-ud-daula, Lucknow became an independent seat of power. Music, song and dance reached their zenith. During the times of NawabWajid Ali Shah there was a profusion of thumri, dadra and ghazals in singing sessions. Among the courtesans of Awadh, the famed thumri singers included Haider Jan, JaddanBai and AchhanBai. Thumris were composed by Wajid Ali Shah as well as ShaikhNizami and Hafiz Ashraf. NawabAlamMahal, one of the wives of Wajid Ali Shah, also wrote thumris and dadras. Wajid Ali Shah was the embodiment of poetry, and romance and music. It was at his time that courtesans were elevated to thelevel of an artist, unlike other rulers of Indian states, who looked at dance as a form of sensual enjoyment.

The royal patronage of tawaifs lasted until the British annexation of Awadh in 1856. After the British took over the province of Awadh, records of "dancing and singing girls" began to appear in official documents like tax ledgers and municipal correspondence. On a twenty-page list of the spoils of war seized from a set of "female apartments" in the palace of the exiled king Wajid Ali Shah, where more than three hundred of his courtesan concubines

During the British rule this profession experienced the most traumatic time. They failed to distinguish a prostitute from a courtesan and a client from a patron. Recognized as a cultural asset by the Nawabs, the courtesans were then left to the mercy of the British, who viewed them solely as an inexpensive solution to the carnal needs of the European soldiers. The British looked upon the institution only as a medical problem.

Some of the popular tawaifs were Begum Samru (who rose to rule the principality of Sardhana in western Uttar Pradesh), Moran Sarkar (who became the wife of Maharaja Ranjit Singh), Wazeeran (patronised by Lucknow's last nawabWajid Ali Shah), Begum HazratMahal (Wajid Ali's first wife who played an important role in the First War of Independence), GauharJaan (a notable classical singer who sang for India's first-ever record),MalkaJaan, and daughter Jaddanbai– a master music composer, singer, actress, and even film maker,Begum Akhtar Padma BhushanFatma Begum and daughter Zubeida, who acted in the first Indian talkie movie AlamAra,Zareena Begum .They used to be the only source of popular music and dance and were often invited to perform on weddings and other occasions. Some of them became concubines of maharajas and wealthy individuals. With the emergence of movies and record industry, however, they lost popularity.

The image of the tawaif has had an enduring appeal, immortalized in Bollywood movies. Films with a tawaif as a central character include Devdas, Sadhna, Pakeezah, Amar Prem, Tawaif, Devdas (2002) and The classic National Award winner UmraoJaan (both in its 1981 version and 2006 remake) is based on a tale by MirzaHadiRuswa, featuring a famous Nineteenthcentury courtesan from Lucknow.

As we see during the reign of the Nawabs of Avadh, these were the women who had taken culture to its new heights. They had now only preserved the rich tradition of their dance but also developed new blends of Hindustani and Persian dance. The interaction of Persian and Hindu style brought about a glorious fusion of Hindu and Muslim arts and new forms of dance and music were evolved. Kathak was one of them.

Post-Independence Indian government passed the Immoral Traffic (Prevention) Act 1956, dealing the last and final blow to the institution of kothas and the courtesan of Lucknow.Gradually, the tawaif thus lost her relevance in the society. The institution of tawaif died anatural death long ago. It could not have survived in the hostile environment, in which it found itself after the loss of its patrons. The institution does not seem to revive back having lost its relevance. Now number of personality development centres, fluent conversation classes, dance and music classes seem to have collectively replaced this single and unique institution forever.

Bibliography

- Ali Muzaffar, The Beauty of My Beloved, The Taj Magazine, Vol. 23 No. 1 :Lucknow, A Special Issue, First Quarter 1994, p. 89.
- AbbasShirin,Courtesans of Oudh and their misrepresentation in Literature Past and Present .
- GarcíaPaola ,The Courtesans of 19th Century Lucknow: Agency and Subversion, article from Academia.
- Kidwai, R. R. Lucknow : The Lost Paradise, Lucknow : S. R. Publications,1993, p. 127
- NavilePran, The Nautch Girls of India (New Delhi ,Ravi Kumar Publishers, 1996), p. 45
- Ruswa, MirzaHadi. Umrao Jan Ada. Trans. David Mathews. New Delhi: Rupa Publications, 1996.

· Sharar, Abdul Halim. Lucknow: The Last Phase of an Oriental Culture, Trans. and ed. E.S. Harcourt and FakhirHussain, New Delhi, Oxford University Press: 1994.

· Shah, Hasan. The Dancing Girl. Trans. QurratulainHyder, New York: New Directions, 1993.

· TripathiManju,Contribution of Courtesans in the Culture of Avadh,Images of Lucknow,(New Royal Book Co. Lucknow)2002,151-154.